यूनान का राज्य-दर्शन

प्रथम भाग

माननीय डा० सम्पूर्णानन्द जी
मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश
को
सादर समर्पित

जिनकी लेखनी से प्रेरणा मिली

त्रिलोकी नाथ, एम० ए०

डा० [illegible]

प्रथम भाग

प्राची प्रकाशन गृह

४३, विधान सभा मार्ग

लखनऊ

विषय-सूची

विषय-सूची

प्राक्कथन

प्राचीन यूनान पाश्चात्य राज्य-दर्शन एवं राजनीति ही नहीं सम्पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का उद्गम कहा जा सकता है। पाश्चात्य राज्य-दर्शन के इतिहास की सुसम्बद्ध श्रृंखला के अध्ययन में तो प्राचीन यूनान के राज्य-दर्शन का आदि स्थान है। आधुनिक भारत पर पश्चिम का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इस कारण प्राचीन यूनान हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

प्राचीन यूनान तथा प्राचीन भारत के सामान्य दर्शन, राज्य-दर्शन एवं राजनीति की समानता अत्यन्त रोचक है। प्राचीन भारत पर यूनान का प्रभाव कला के क्षेत्र में तो प्रसिद्ध ह ही, अनक यूनानी क्षत्रपों ने भारत-भूमि पर शासन भी किया है। इससे यहां की राजनीति पर यूनानी प्रभाव अशक्य है।

यदि अतीत का अध्ययन वर्तमान के आंकने तथा भविष्य के निर्माण में सहायक है तो आधुनिक भारत की राजनीति के लिये प्रस्तुत विषय पर अच्छे ग्रंथों की आवश्यकता निर्विवाद होगी। हमारा शासन-तंत्र पाश्चात्य अनुभवों पर निर्मित है। हमारे राज-नीतिज्ञों तथा राज्य-नेताओं का रागात्मक लगाव चाणक्य, शुक्र तथा भीष्मादि प्राचीन भारत के राज्य-दृष्टाओं से हो सकता है, किन्तु उनके व्यवहार पाश्चात्य राज्य-दर्शन से अनुप्राणित हैं। उपयोगिता की दृष्टि से उसे वे अधिक निकट पाते हैं।

भारतीय राजनीति के लिये आज यह आवश्यक है कि पाश्चात्य राज्य-दर्शन तथा राजनीति को आत्मसात् कर उसे भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाय। इसके लिये उसे सजीव रुप से ग्रहण करना होगा। वह किस मिट्टी, पानी और हवा में जन्मा, फला-फूला, किन भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने उसे गति-

विधि दी, इन अनेक बातों को हृदयंगम करके विचार करने में अधिक सफलता की आशा की जा सकती है। प्रस्तुत ग्रंथ इस कार्य में यदि कुछ भी सहायक हुआ तो लेखक कृतार्थ होगा। इस ग्रंथ की रचना में प्रो० अर्नेस्ट बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' एवं प्रो० नेटिलशिपकृत 'लेक्चर्स आन द रिपब्लिक आव प्लेटो' से प्राप्त सहायता के लिए विद्वान आचार्यों के प्रति लेखक कृतज्ञता प्रकाश करता है।

अन्त में, त्रुटियों के लिये क्षमा-याचना। दोषों को इंगित करने तथा सुधार के लिये सुझाव देने वाले सज्जनों का बड़ा अनुग्रह होगा।

लखनऊ. त्रिलोकी नाथ

मई ३१, १९५५।

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय

वर्तमान समय में इतिहास का अपना अस्तित्व संकट में है। चिन्तन के प्रायः सभी क्षेत्र अपने प्रथक्-प्रथक् इतिहास रखने लगे हैं। किन्तु यह विभाजन-कार्य अधिक दूर तक न जा सकेगा। मानव-जीवन को भली भांति समझने के लिये सम्पूर्णता में उसका दर्शन आवश्यक है। राज्य-दर्शन का इतिहास प्रस्तुत करने से पूर्व यूनानी जीवन की सम्पूर्णता की एक झलक दे देना ही इस प्रकरण का उद्देश्य है।

किंतु दो शब्द यूनानके भूगोलके लिए भी। भूगोल के रंगमंच पर इतिहास का नाटक खेला जाता है। मनुष्य के इतिहास, संस्कृति तथा राजनैतिक जीवन पर भौगोलिक स्थिति एवं नियंत्रण का कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका यूनान एक उदाहरण है। दक्षिणी यूरप का अत्यन्त कटे-फटे समुद्र-तट वाला प्रायद्वीप जो दूर तक भूमध्य-सागर में चला जाता

है, एक ओर द्वीप-मालाओं के द्वारा पूर्वके उन्नत एशियाई देशोंसे तथा दूसरी ओर क्रीट होकर मिस्र की प्राचीन सभ्यता से मिलने के लिए लालायित दिखाई देता है। उत्तर से आनेवाली तीखी ठण्डी हवाओं अथवा पैने हथियार वाले बरबरों को रोकने के लिए यूनान के उत्तर में कोई हिमालय नहीं है; जिससे यहां के निवासियों को निश्चिन्त जीवन बिताना दुर्लभ था। धरातल भी अधिकांशत: पहाड़ी है; बीच-बीच कुछ जल-धारायें तथा घाटियां हैं। उनमें इतना अन्न नहीं हो सकता था कि यूनानी अधिक समय तक बिना विदेश-व्यापार किये अपनी कृषि का आश्रय ले सकते। जो अन्न उपजता भी वह सख्त मेहनत के बाद। जलवायु तथा जीवन की आवश्यकताओं ने यूनानी को परिश्रमशील बना दिया था।

मेहनत में भी एक नशा होता है, पर यूनान के आंचल को तो प्रकृति ने अंगूर के गुच्छों से भर दिया है। यही कारण है जो यूनान के जीवन में संघर्ष और आनन्द गले में हाथ डाले साथ-साथ दिखाई देते हैं। वहां के राष्ट्रीय जीवन में युद्ध और क्रीड़ा, दोनों को समान महत्व प्राप्त था। जीवन के गंभीर मसलों पर क्लबों में, बाजारों में और उत्सवों में विचार किया जाता था। ओलम्पिक क्रीड़ा-महोत्सव खेल-कूद के अवसर के अतिरिक्त, दार्शनिक विचार-विनिमय एवं राजनैतिक संधि-विग्रह का भी अवसर होता था।

यूनान वह भू-खण्ड है, जहां संसार की प्राचीन सभ्यताएं, पूर्व और दक्षिण से आकर, उन्मुक्त वातावरण में सांस ले सकी, मिलीजुली और नये जीवनसे प्रदीप्त हो उठीं। भौगोलिक दशाओं ने अनुकूलता प्रदान की। उत्तर के स्थलीय मार्ग तो अनवरुद्ध हैं ही, शेष तीन ओर के समुद्र से भी कोई विशेष अवरोध न हो सका। छोटे-छोटे द्वीपों की विस्तृत श्रृंखला के कारण लघुएशिया, सीरिया, फोनीशिया आदि स्थल घनिष्ठ सम्पर्क में रहे। मिस्रका सम्पर्क, अपेक्षाकृत कुछ

कठिन होते हुए भी, यूनानी के लिए कम आकर्षक न था। मिस्र की सम्पदा तथा उन्नत एवं सभ्य जीवन उसके लिए सदा परम् अभिलाष्य था। मध्यस्थ क्रीट ने मिस्र और यूनान के बीच सेतु का काम किया। इस प्रकार तीन ओर फैला हुआ सागर यूनानी के जीवन में बाधा के रूप में कभी उपस्थित नहीं हुआ।

यूनानी भू-खंड का कोई भी हिस्सा समुद्र से दूर नहीं पड़ता। कोरिन्थ की खाड़ी में होकर तो सागर धरातल के हृदय तक पहुंच जाता है। अतएव सामुद्रिक जीवन यूनानी जीवन का अविभाज्य अंग था। यूनानी अच्छे नाविक होते थे और समुद्र की साहसपूर्ण लम्बी-लम्बी यात्राएं करते थे। पड़ोस की सुसभ्य जातियों ने भी सहज ही उन्हें प्रभावित किया। चारों दिशाओं से जन-समूह आये, संघर्ष हुए, स्थापित सभ्यताएं उखड़ीं और दूसरी सभ्यताओं ने अपना नया जीवन आरम्भ किया। देश कई सभ्यताओं का क्रीड़ास्थल बना और सभी किसी न किसी नयी आक्रमणकारी जाति द्वारा रूपान्तरित होकर नये-नये कलेवर में प्रगट होती रहीं।

आदिवासी और प्राचीन यूनानियों का आगमन

उत्तर-पाषाण-काल में यूनान का प्रायद्वीप ऐसे लोगों द्वारा बसा हुआ था जो कृषि एवं पशु-चारण के आधार पर जीविका प्राप्त करते थे। धातुओं तथा उनके प्रयोग से यह लोग पूर्ण अनभिज्ञ थे। ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व, सबसे पहले, एक ऐसी जाति ने इस देश में प्रवेश किया जो कांस-धातु का प्रयोग करती थी तथा प्रोफेसर जे० बी० बूरी के मतसे यह लोग लघुएशिया से ही यूनान में आये। इन लोगों का आगमन इतिहास में, पूर्व-हेलाडिक युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस नयी जाति का प्रवेश क्रीट होकर दक्षिण तथा पूर्व से हुआ तथा अधिकांशतः प्रायद्वीप के दक्षिण में यह लोग बस गये। यूनान के उत्तरी भाग, थिसाले तथा मेसि-

डोनियां में पूर्व-पाषाण-काल के लोग ही बसते रहे। दक्षिण में आबाद हुई नवागत जाति कांसे के अतिरिक्त, तांबा, सोना और चांदी के साथ-साथ उत्कृष्ट मिट्टी के बर्तन भी प्रयोग में लाती थी जिससे विदित होता है उनका सम्पर्क समुन्नत संस्कृतियों से था; किंतु यह लोग चाक का प्रयोग नहीं जानते थे, जो कि इनके अनुगामियों के साथ यूनान में आया।

ई० पू० लगभग २००० के यूनान में उत्तर से आनेवाली एक अन्य जाति का प्रवेश हुआ। यह अपने साथ कुछ दूसरी ही जीवन-प्रणाली एवं संस्कृति लायी। यूनानी भाषा, जो डोरियाई आक्रमण के उपरान्त भी प्रायद्वीप के उत्तरी खण्ड में जीवित रही, इन्हीं लोगों के साथ आयी थी। इतिहासकारों का विश्वास है कि डोरियाइयों के आने से पहले ही यूनान की भाषा स्थिर हो चुकी थी। यही आदि यूनानी भाषा थी।

क्रीट-सभ्यता का युग

इसके उपरान्त जिस युग का प्रारम्भ होता है, उसे इतिहासकारों ने उत्तर-हेलाडिक-काल कहा है। इसे एजियन-सभ्यता का युग भी कहा जा सकता है। एजियन-सागर, जो लघुएशिया तथा यूनानी प्रायद्वीप के बीच लहराता है, उसमें स्थित द्वीप-समूह इस सभ्यता का क्रीड़ा-स्थल है। एजियन-सभ्यता का सब से बड़ा केन्द्र बेबीलोनिया के समकक्ष था। क्रीट की सभ्यता में बहुरंगे मिट्टी के पात्र, चित्रकारी की उत्कृष्ट कला, और सबसे बड़ी विशेषता यह कि लिखने के लिए लिपि भी दिखाई देती है। लोहे के अतिरिक्त तांबा, कांसा आदि धातुओं का प्रयोग किया जाता था। सिले हुए वस्त्र, केश-विन्यास आदि के देखने से प्रतीत होता है यह लोग जीवन-कला में कितने आगे बढ़ चुके थे! पूर्वी आबादियों तथा मिस्र से क्रीट का राजनैतिक एवं व्यवसायिक व्यवहार था।

किले तथा राज-भवनों के खण्डहरों से अनुमान किया जाता है कि क्रीट में राजाओं द्वारा शासित होने की प्रथा थी; किंतु राज-बल का आधार सामन्त थे, जो राजवंश के साथ घनिष्ट संबंध रखते थे।

क्रीट की सभ्यता में, धर्म और संस्कृति में मिस्र तथा लघु एशिया-वासियों का गहरा सांस्कृतिक सम्मिलन दिखाई देता है। क्रीट की दस्तकारी और वास्तुकला पर मिस्र का प्रभाव अधिक है तथा धर्म, आचार-विचार एवं भाषा आदि लघुएशिया-वासियों से अधिक साम्ययुक्त है।

माइसीन-सभ्यता का युग

यूनान के प्राचीन इतिहास में ई० पू० १६०० से ११०० तक माइसीन सभ्यता का युग है। क्रीट का प्रभाव अपने सबल समुद्री बेड़े के आधार पर दूर-दूर तक फैला हुआ था। माइसीन में पाई गई प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि माइसीन की सभ्यता और प्रभुता क्रीट की बहुत कुछ ऋणी थी। लगभग ई० पू० १४०० के क्रीट के बड़े-बड़े नगर आक्रमणकारियों द्वारा विध्वंस किये जाते हैं और दूसरी ओर यूनान के मुख्य भू-खण्ड पर, आर्गाइव के मैदान में प्रभुता जमाती हुई एक पहाड़ी पर, माइसीन नगर की प्रधानता उभर पड़ती है। कदाचित इस उत्थान का श्रेय उत्तर से आकर बसे लोगों को ही प्राप्त था। माइसीन के उदय के साथ ही, यूनान की एक राष्ट्रीय सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। माइसीन के नेतृत्व में १४०० से १२०० ई० पू० तक, २०० वर्ष, यूनान जितना एकता के सूत्र में बंधा रहा वैसा आनेवाले ५०० वर्ष तक संगठित न हो सका। माइसीन की सभ्यता उत्कृष्ट वास्तु-कला के नमूनों से, सड़कों, पुलियों, किलों आदि से, उत्कृष्ट बर्तन, जो मिट्टी तथा धातुओं के बनाये जाते थे, इन सब विकसित जीवन

के चिन्हों से युक्त था। हां, लोहा अभी विरल धातु था, जो मुख्यतः आभूषणों के लिए पूर्वी देशों से प्राप्त किया जाता था। माइसीन की लिपि क्रीट की लिपि से मिलती जुलती थी और यूनानी भाषा से उसकी कोई निकटता नहीं दिखाई देती।

इस युग में यूनान के संबंध दूर-दूर तक विस्तृत थे। मिस्र के साथ तो सघन व्यापारिक संबंध थे और इसी प्रकार एशियाई देशों के साथ भी। होमर के प्रसिद्ध काव्य, ईलियड का नायक एग-मेमनन माइसीन का ही शासक माना जाता है; जिसने अपनी बड़ी सेना लेकर लघुएशिया के नगर, ट्राय पर आक्रमण किया तथा लगातार दस वर्ष तक घेरा डाले रहने के पश्चात्, विजय प्राप्त की। दक्षिणी-द्वीपों के संबन्ध लघुएशिया की अपेक्षा सीरिया, मेसोपोटामियां तथा मिस्रसे अधिक थे और बहुत-से यूनानी वहां जा-जाकर बस भी गये थे। पूर्व की ओर यूनानियों का विस्तार राजनैतिक साहस से परिपूर्ण था तथा उन देशों के साथ मिल कर मिस्र के विरुद्ध यूनानियों ने भी युद्ध किया था।

लघुएशिया, मिस्र तथा माइसीन के पतन के बाद जो समय आता है, वह अत्यन्त अस्थिर राजनैतिक दशा का युग है। उस समय भूमध्य-सागरीय देशों में शक्ति-संतुलन पूर्णतया नष्ट हो चुका था। फोनिशिया तथा टापुओं के छोटे-छोटे राज्यों की प्रभुता बढ़ गई थी। इस अंधकार-युग के बाद यूनान-जगत में एथेंस तथा स्पार्टा की दो महान् शक्तियां उदय होती हैं, जिनका उल्लेख आगे यथास्थान किया जायगा।

डोरियाई-आक्रमण

यद्यपि माइसीन के पतन से पूर्व ही उसकी सभ्यता का ह्रास आरंभ हो गया था, किंतु विदेशी आक्रमण और संहार के चिन्ह बताते हैं कि माइसीन के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर ही यह कार्य पूरा हुआ।

डोरियाई-आक्रमण यूनान की जन-श्रुतियों में भी सुरक्षित है । यह लोग उत्तर-पश्चिम से आये हुए माने जाते हैं और माइसीन आने से पहले, हेलन के पुत्र डोरस के समय में, थियोटिस में तथा आगे चलकर मेसीडोनियां एवं डोरिस में आबाद हो चुके थे। यहीं से इन लोगों ने पेलीपोनीशिया पर आक्रमण किया तथा वहां के निवासियों द्वारा डोरियाई कहलाये । आर्केडिया का पहाड़ी इलाका छोड़ कर यह तेजी से दक्षिण की ओर फैलने लगे । इन्हीं लोगों ने, आठवीं शती ई० पू० में, ओलिम्पस पहुंच कर राष्ट्रीय ओलम्पिक-क्रीड़ा-महोत्सव का श्रीगणेश किया । आठवीं शती तक डोरियाई लोग यूनान में भलीभांति स्थापित होकर एजियन द्वीप-समूह तथा लघुएशिया की ओर फैलने लगे । यूनान में एक नई सभ्यता और नया जीवन जाग उठा ।

डोरियाई आक्रमण के फलस्वरूप पुराने यूनानी भाग-भाग कर आस-पास के देशों में आबाद होने लगे, जिससे वृहत्-यूनान का निर्माण हुआ । अन्य जाति के लोगों के सम्पर्क में आकर यूनानी राष्ट्रीय-भावना भी जाग्रत हुई । जिस प्रकार डोरियाई लोग अपने पुराने निवास-स्थान को भूल कर यूनान को ही अपना देश मान बैठे थे, उस प्रकार यूनानी विदेशों में बस कर, मातृभूमि को न भुला सके और अपने देश से बराबर संबंध बनाये रखते थे । डोरियन लोग तो यूनानी हो गये. किंतु यूनानी जहां भी गये यूनानी ही रहे और जहां भी वे बस गये वही यूनान का हिस्सा बन गया। परिणामतः लघुएशिया का सम्पूर्ण पश्चिमी तट, काले सागर के निकट का प्रदेश तथा दक्षिणी इटली-सिसली आदि वृहत्-यूनान के भाग हो गये। विदेशों में जाकर बसने वाले लोग अपनी मातृभूमि से आग तथा डेल्फी के देवता की स्वीकृति साथ ले जाते थे। जब कभी एक उपनिवेश नई शाखा स्थापित करता तो उसका नेतृत्व करने के लिए मातृभूमि से राज्य-नेता आमंत्रित किया जाता था ।

उपनिवेश कायम करने के पीछे व्यवसाय से अधिक यूनानियों का साहसिक स्वभाव था, जो उन्हें नये-नये स्थलों के भ्रमण एवं अन्वेषण के लिए लगातार प्रेरित करता रहता था। इसके अतिरिक्त भूमि-वितरण तथा राजनैतिक व्यवस्था से त्रस्त होकर भी लोग उपनिवेशों के लिए घर छोड़ देते थे। धरती का अधिकार खानदान के मुखिया के हाथ में रहता था। यद्यपि वह धरती का क्रय-विक्रय नहीं कर सकता था, किंतु उपज के उपयोग में उसकी प्रधानता रहती थी। इसके अतिरिक्त उसके पुत्र ही धरती के उत्तराधिकारी बनते थे, जिससे खानदान में जन-वृद्धि के साथ-साथ दरिद्रता और दमन की भी वृद्धि होती थी। भूमिहीन लोग उस समय वाध्य होकर जीविका के लिए विदेश-प्रस्थान करने वाले दल में सम्मिलित हो जाते।

अधिकार से उन्मत्त राज-कुल के लोगों तथा सामन्तों के अत्याचार से पीड़ित होकर भी बहुतेरे यूनानी विदेश के लिये कमर कस लेते थे। शासक-वर्ग न केवल अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए जनता की उपेक्षा करते थे, बल्कि उनसे घृणा करते और अत्याचार करने में कभी-कभी स्वाभाविक सुख अनुभव करने लगे थे। माइटिलीन में तो स्थिति यहां तक पहुंच गई कि पेंथिलिड लोग, जो वहां के सत्ताधारी थे, हाथ में गदा लेकर चलते और कहीं पर, किसी को भी मार कर गिरा देते। ऐसी परिस्थितियों से मजबूर होकर यूनानी उपनिवेश बसाने के लिए विदेश जाते थे, पर वे अपनी मातृभूमि को नहीं बिसारते थे।

अंधकार-युग

यूनानी इतिहास के वे दो सौ वर्ष, जिनमें माइसीनियन सभ्यता विलुप्त हुई तथा नई सभ्यता एवं संस्कृति ने उसका स्थान लिया, अंधकाराच्छन्न काल हैं। इस काल में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एजियन प्रदेशों का नेतृत्व रहा तथा

मुख्य यूनान में डोरियाई अपनी जड़ें जमा रहे थे। शीघ्रही उनका नेतृत्व नागरिक सभ्यता के रूप में यूनान के इतिहास में प्रगट हुआ। इस नयी सभ्यता के युग में यूनानी भाषा को लिपि प्राप्त हुई। यह लिपि उन्हें फोनिशिया के सेमिटिक जाति के लोगों से मिली, जिसे यूनानियों ने कुछ संशोधन के उपरान्त अपना लिया। भाषा के अतिरिक्त लोहा तथा हथियार बनाने आदि में उसके प्रयोग करने की विधि तथा मुर्दे जलाने की प्रथा भी यूनान को पूर्व से मिली। शिल्प एवं कलाओं के स्वरूप में भी मौलिक परिवर्तन हुआ। किंतु यह बात स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि यद्यपि डोरियाई लोग उत्तर तथा पश्चिम से आये, किंतु, जिस सभ्यता ने उनके नेतृत्व में उत्थान पाया वह पूर्व की थी। उत्तर से आनेवाले लोग भी जो सभ्यता अपने साथ लाये, वह मध्य-पूर्व की एशियाई सभ्यता का ही एक रूप थी। काकेशस के उत्तर में रूसी घास के मैदान में ताम्रयुग की जो समाधियां मिलती हैं वे सुमेरिया की बड़ी कब्रों के ही समान हैं।

डोरियाई विजेताओं का विजितों के साथ सम्बन्ध कई प्रकार का हुआ। कहीं तो दोनों आपस में मिलजुल गये, जैसे बोशिया के प्रदेश में। सिसियों, मेगारा तथा कोरिंथ में पुराने निवासियों को न तो मिलाया जा सका और न पूर्णतः दमन ही हुआ। जिससे आगे चलकर जब भी अवसर मिला, उन्होंने सर उठाया और शासकों को उखाड़ने की कोशिश की। आरगोलिड में विजितों को दास बना डाला गया। उनसे कठोर कृषि-श्रम लिया गया। किन्तु विजेताओं में सांस्कृतिक श्रेष्ठता न होने के कारण वे सहज ही रोटी-बेटी सम्बन्ध करके समानता के स्तर पर आगये। थिसाले और लेकोनिया में डोरियाई दमन अधिक तीव्र रहा, जिससे पुराने यूनानी भलीभांति कुचले गये और दरिद्र दासों के रूप में समाज के पेंदे में डाल दिये गये। किंतु प्रतीत होता है, उनमें स्वाभिमान की लौ

बिलकुल बुझ नहीं गई थी। आर्केडिया में, अपने जाति के लोगों की पूरी प्रभुता तथा अन्य स्थानों पर विद्रोह करते देख उनका रक्त-चाप अवश्य ही बढ़ जाता होगा। बहुधा हुआ यह कि यूनानी प्रायद्वीप के उत्तरी भागों, मेसिडोनियां आदि में, डोरियाई प्रभाव बढ़ा, क्योंकि उन प्रदेशों से विजित लोग भाग खड़े हुए, या जो रहे वे पूर्णतया दबकर रहे, किंतु ज्यों-ज्यों डोरियाई लोग दक्षिण की ओर बढ़े, उन्हें अधिक संघर्ष करना पड़ा। पुरानी अथवा पूर्वी संस्कृति में रंग कर पुराने यूनानियों के साथ वे घुलमिल गये। कदाचित आर्केडिया का अछूता बच जाना तथा पुरानी संस्कृति का अपने पूर्व रूप में वहां रक्षित रह जाना, इस महान सांस्कृतिक सम्मिलन में बड़ी बाधा रहा होगा।

यूनान तथा अन्य दूसरे नाम, जो इस भू-खण्ड को प्राप्त हुए, उनका थोड़ा-सा परिचय देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। यूनान का सब से प्राचीन नाम हेलास था, जो मूलतः केवल एक जन-जाति का ही नाम था। किंतु कालान्तर में इसी नामसे सम्पूर्ण देश तथा उसके निवासी अपना सम्बोधन करने लगे। यूनान और ग्रीस यह दोनों नाम हेलास को विदेशियों से प्राप्त हुए। माइसीन-सभ्यता का अन्त हो जाने पर हेलास का पूर्व के साथ जो सम्बन्ध रहा, वह लघुएशिया के उन यूनानियों के द्वारा हुआ, जो लघुएशिया-तट के मध्य भाग में, जिसे आयोनिया कहा जाता था, रहते थे। आयोनिया-वासियों के माध्यम से यूनानी सम्पर्क पूर्व की ओर आगे बढ़ा, जिसके अधिक पूर्व वालों ने सम्पूर्ण हेलास-वासियों को ही यूनानी कहना शुरू कर दिया। भारत में ये यवन कहलाये। पश्चिमी विस्तार में इटली और सिसली पहुंच कर हेलास को 'ग्रीस' नाम मिला। 'ग्राइया' एक यूनानी बस्ती का नाम था। यूरपवालों ने सम्पूर्ण यूनान को भ्रमवश, ग्रीस कहना शुरू कर दिया।

राजनैतिक विकास-क्रम : राज-तंत्र

यूनान का राज्य-दर्शन नगर-राज्यों का राज्य-दर्शन है। अतएव यूनान में नगर-राज्य किस प्रकार स्थापित हुए तथा उनके विकास एवं सामाजिक जीवन की चर्चा अनुपयुक्त न होगी। उपरोल्लिखित ऐतिहासिक वर्णन यूनान के उस संक्रांति-काल तक पहुंच चुका है, जहां ग्राम-प्रधान जीवन एवं एक-राज-तंत्र समाप्त हो चुका है, नगर-प्रधान सभ्यता के साथ-साथ कुलीन एवं जन-तन्त्र उसका स्थान ले रहे हैं। काल-क्रम में इसे ९वीं से ७वीं शती ई० पू० तक मानना चाहिए।

यूनान की प्राचीनतम राजनैतिक व्यवस्था का जो कुछ पता चलता है, वह होमर के साहित्य के आधार पर। प्राचीन रोमन, जर्मन तथा अन्य आर्य-प्रणालियों से समानता देखकर इतिहासकार प्राचीन यूनान की शासन-प्रणाली को आर्य-प्रणाली ही मानते हैं। इस में राजा का शीर्ष-स्थान था, किंतु वह अपने सभासदों की परामर्श के आधार पर ही शासन-कार्य चलाता था। पुनः सभा तथा राजा को जन-वर्ग की स्वीकृति अपेक्षित होती थी। इस प्रकार, हम देखते हैं कि यूनान की प्राचीनतम शासन-व्यवस्था में राज-तन्त्र, कुलीन-तंत्र एवं जन-तन्त्र तीनों के बीज-रूप क्रमशः 'बसीलियस' अर्थात् राजा, 'बुले' अर्थात् परिषद तथा 'अगोरा' अर्थात् जन-सभा में विद्यमान थे।

इस युग में कुटुम्ब राजनैतिक जीवन की रीढ़ था। समाज में वास्तविक सत्ता कुटुम्ब के मुखिया के हाथ में रहती थी। उसी का पुत्र घर की धरा-सम्पदा का उत्तराधिकारी था और न्याय करना तथा दण्ड देने का अपने कुटुम्ब के लोगों पर उसका पूरा अधिकार था। कुटुम्ब के सभी जनों के प्राण-देह और सम्पत्ति का वह पूरा मालिक था। कई कुटुम्बों से मिल कर ग्राम बनता था, जिसके सभी निवासी आपस में भाईचार और रिश्तेदार होते थे।

एक गांव में कई कौटुम्बिक मुखिये होते थे, किंतु इन सब में जो सब से ज्यादा पराक्रमी एवं साहसी होता था, वही उस गांव का राजा हो जाता था। राजा के आधीन जितने लोग होते थे वे सब परस्पर रक्त-सम्बन्ध तथा वंश-वृक्ष की शाखाओं से बंधे रहते थे। इस प्रकार की एक आबादी को 'फाइले' तथा जिस भू क्षेत्र में ये अधिकार रखते थे उसे 'डेमी' कहते थे। कुटुम्ब या 'जेन्स' वह इकाई थी जिससे 'फाइले' का निर्माण होता था।

सामाजिक विकास के साथ-साथ कौटुम्बिक प्रधान का बल घटने लगा। राजा की प्रभुता बढ़ने लगी। राजा प्रधान न्यायाधीश, मुख्य पुरोहित तथा प्रधान सेनापति होता था। शत्रुओंका सामना करने के लिए वह जनता की सेना का नेतृत्व करता था। सभी वयस्क लोग युद्ध-काल में हथियार उठा लेते थे, क्योंकि प्रथक् एवं स्थाई सेना रखने की प्रथा नहीं चली थी। जन-समुदाय के संरक्षक, राजा की देवताके समान पूजा होती थी। दावतों में सब से प्रथम उसका सम्मान होता था, उसका आसन भी सब से प्रथम रहता था। राज-पद वंशानुगामी होता था और राजाका सब से बड़ा पुत्र उसका उत्तराधिकारी, अर्थात् युवराज बनता था। परन्तु उसकी वैयाक्तिक उपयुक्तता का भी विचार किया जाता होगा। राजा को कुछ भूमि, निजी संपत्ति के रूप में, मिलती थी; जिसका रख-रखाव जनता के मत्थे होता था। राजा के कुछ अंग-रक्षक भी राज-कोष के खर्च से रक्खे जाते थे।

राजा के अधिकारों की सीमा स्पष्टतया निश्चित न होने के कारण, उसकी शक्ति बहुत कुछ व्यक्तित्व तथा प्रभाव पर निर्धारित थी। उसे अपने कार्यों तथा नीति का समर्थन राज्य-परिषद से करवाना पड़ता था। अनुमानतः राज्य-परिषद के सदस्य वंशोंके मुखिया या प्रतिनिधि होते होंगे। कालान्तर में राज-सत्ता, राज-वंश तथा परिषद के सदस्यों में सीमित होकर, उन्ही के वंशजों

को प्राप्त होने लगी । यद्यपि यह लोग जनसाधारण से रक्त-संबंध रखते थे और उन्हीं में से थे, फिर भी शासन-अधिकार हथियाये रखने के लिए, इन लोगों ने अपने वंशों को देवताओं से उत्पन्न घोषित करना शुरु कर दिया। आर्थिक बल के रूप में यह लोग बड़ी-बड़ी जमीनों तथा बहुसंख्यक मवेशी के स्वामी होते थे। इनकी सेवा में अनेक साधारण जन तथा दास लगे रहते थे । इस युग की राज्य-परिषद या 'बुले' ही भविष्य के कुलीन-तंत्र की जननी थी।

राज्य-परिषद तथा राज-पद दोनों से ही अधिक महत्वपूर्ण थी जन-सभा अथवा 'अगोरा'। इसी के बल पर यूनानी जन-तन्त्र विकसित हुआ। राज्य के सभी स्वतन्त्र नागरिक एक खुले स्थल पर एकत्रित होकर राजनीति तथा राज-निर्णयों का समर्थन अथवा विरोध करते थे। यह सभायें वाद-विवाद का अवसर नहीं होती थीं, लेकिन जन-मत व्यक्त करने का प्रभावशाली साधन थीं । लोग इन सभाओं में आने से पहले अपने अनुकूल जन-मत बनाने का यत्न करते थे और प्रस्तुत विषय पर, गोष्ठियों में बैठ कर, भलीभांति विचार कर लेते थे।

कुलीन तंत्र

डोरियाई आक्रमण से पहले, शासक आसपास के धरातल की अपेक्षा कुछ ऊंचे स्थल पर अपना दुर्ग बना कर रहता था, तथा उसकी रियाया आसपास गांवों में बिखरी बिखरी रहती थी। कुटुम्बके मुखियों की शक्ति टूटने पर, रियाया पर अधिक नियंत्रण रखने के लिए, उसे अपने दुर्ग के आसपास सिमट कर बसने के लिए उसने आग्रह किया। जनता ने भी सुरक्षा की दृष्टि से उसे उपयोगी माना। यह बात राजा के लिए उलटी पड़ी। निर्बल और विलासी राजाओं की दुर्बलताएं जनता को प्रगट हो गईं और उनकी धाक उखड़ने लगी। जनता, जो पहले बिखरी हुई थी, निकट सम्पर्क में आकर अधिक संगठित हो गई। वह अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति अधिक

उग्र हो उठी। घनी बस्तियोंमें राजा के विरोधियों को भी षडयंत्र करने का अवसर मिलने लगा। इस प्रकार यूनान के इतिहास में ग्राम-प्रधान जीवन से नगर-राज्य के जीवन में परिवर्तन, राज-पद के लिए हानिकर ही सिद्ध हुआ। यही कारण है जो नगर-राज्यों के उत्थान के साथ-साथ राज-पद की सत्ता लुप्त होती गई।

यद्यपि नगर-राज्यों के निर्माण में राजाओं का महत्वपूर्ण हाथ था तथा एजियन टापुओं एवं लघुएशिया में उपनिवेशों के बसाने में उनका नेतृत्व मिला, फिर भी उक्त कारणों से यूनान में आठवीं शताब्दी ई० पू० में राज-पद क्षीण होकर कुलीन-तन्त्र को स्थान देने लगा। सत्ता राजाओं के हाथ से सम्पन्न कुलीनों के हाथ में आ गई। यह परिवर्तन प्रायः सम्पूर्ण यूनान में व्यापक था। प्रथक्-प्रथक् राज्यों में इस क्रांति के स्थानीय कारण रहे होंगे तथा परिवर्तन का रूप भी कुछ विशिष्ट होगा; किंतु तात्विक रूप से वे सभी एक ही दिशा में हुए। कहीं शासक की अयोग्यता एवं नृशंसता से पीड़ित होकर उसे अपदस्थ किया गया और शासन सत्ता किसी नाबालिग उत्तराधिकारी की आड़ में कुलीन सामन्तों ने हथिया ली; अथवा कहीं यह आड़ लेना भी अनावश्यक समझा गया। स्पार्टा में द्विराज-सत्ता एवं निरीक्षकों (एफरों) की नियुक्ति करके राज-पद को अत्यन्त सीमित कर दिया गया। सुदूर मोलोशिया में राजा ने वैधानिक शासन करने के लिये शपथ ली। राजा का न्याय करने का अधिकार राज्य के अन्य मुखियों के बीच बंट गया तथा उसकी पुरोहिती भी एकान्तिक न रही।

राज-पद के पतन के उपरान्त यूनान में सामन्तशाही का युग आता है। राजा से विमुख होकर सत्ता जिनकी शरण में गई वे जन-साधारण न थे। यद्यपि सत्ता के स्थानान्तरण के पीछे प्रेरक-शक्ति जन-बल ही था; किंतु अभी जनता में इतनी जाग्रति नहीं हुई थी और

न शासन-यंत्र ही इतना विकसित हुआ था कि जन-तन्त्र चल सकता। अतएव राजा और जनता के मध्यस्थ लोग जो, कई पीढ़ियों से आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति के आधार रहने के कारण, जनता से पूज्य-भाव प्राप्त कर चुके थे और अपने वंश को किसी न किसी देवता से संबद्ध कर जन-साधारण से अधिक श्रेष्ठ एवं कुलीन बन गये थे, ऐसे लोगों के हाथ शासन सत्ता आ गई। कहीं तो यह शक्ति राज्य के समस्त कुलीनों की सभा द्वारा संचालित की गई और कहीं किसी एक कुलीन वंश ने अन्य लोगों को दबा कर इसे अपनी मुट्ठी में कर लिया। किसी भी दशामें, इसमें सन्देह नहीं, इस युग में श्रेष्ठ वंश में जन्म के आधार पर व्यक्ति की श्रेष्ठता एवं शासन-योग्यता मानी जाती थी।

जन-तंत्र

यूनानी राजनीति का जन-तन्त्र की ओर यह पहला डग था, जब वह राज-पद से कुलीनों के आश्रय में आई। कुलीन-तंत्र में यूनानी उपनिवेश और भी अधिक दूरस्थ पूर्व एवं पश्चिम की ओर स्थापित हुए, व्यापार तीव्रता से बढ़ा तथा शासन-यंत्र में महत्व पूर्ण विकास हुआ। यह उल्लेखनीय बात है कि जब उपनिवेशों का निर्माण शुरू हुआ उस समय राज-पद क्षीण होकर नये-नये राजनैतिक प्रयोगों एवं शासकीय उपायों के विकास का अवसर प्रस्तुत कर रहा था; और नगर-राज्य ग्रामीण-जीवन का स्थान ले रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि उपनिवेशों ने एकदम से नागरिक जीवन ही आरम्भ किया और विकास की प्रारंभिक सीढ़ियां चढ़ना उनके लिए आवश्यक न रह गया। इसके अतिरिक्त, उपनिवेशों के बसाने में प्राप्त अनेक राजनैतिक एवं शासकीय अनुभव यूनान के राजनैतिक उत्थान में सहायक हुए। इस युग में शासन-यंत्र के तीनों खण्ड, व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्याय, प्रथक्-प्रथक् उभरने लगे तथा कानून का अस्तित्व प्रगट होने लगा।

जिस राजनैतिक प्रवाह ने राज-पद को शक्ति-शून्य कर डाला, वही आगे चलकर कुलीन-तंत्र को भी हिला देने वाला था; क्योंकि कुलीन-वर्ग ने जनसाधारण के साथ न्याय नहीं किया: ऐसा जन-वर्ग ने अनुभव किया। समय-समय पर उनमें असन्तोष एवं आन्दोलन की तरंगे उठती रहीं, जिसके परिणाम-स्वरूप वे सार्वजनिक संस्थाएं, जिनमें होकर जन-वर्ग अपनी राजनीति व्यक्त करता था, सबल हो उठीं। राज-पद एवं कुलीन-वर्ग की राजनैतिक संस्थाओं को उनके आगे झुकना पड़ा। जन-वर्गका आन्दोलन भी यूनान में उतना ही व्यापक था जितनी कुलीन-वर्ग की क्रान्ति थी, और जिस प्रकार इसका उद्देश्य था जन-बल का नेतृत्व करके राज-पद को आतंकित करना तथा अपदस्थ करना, उसी प्रकार, जन-वर्गीय आन्दोलन कुलीन-वर्ग की बनावटी श्रेष्ठता का उच्छेदन कर 'जनता का शासन, जनता के द्वारा, जनता के लिये' स्थापित करने का यत्न था। यह तो कहना कठिन है कि यह आन्दोलन पूर्णतया सिद्ध हुआ; किंतु इसमें सन्देह नहीं कि कुलीन-वर्ग को गहरा धक्का पहुंचा और राजनैतिक सत्ता अधिक व्यक्तियों के नियंत्रण में बंट गई।

यूनान के इतिहास की ई० पू० सातवी शताब्दी जन-जागरण की शताब्दी है। कुलीन-वर्ग से असन्तुष्ट, आक्रान्त एवं पीड़ित जनता की भावनायें शासकों के विरुद्ध तीव्र हो उठीं। बोशिया का प्रसिद्ध कवि हेसियड स्वयं इस अत्याचार का शिकार बना। उसने अपने समय के शासकों को 'भेंट-भक्षी' कह कर सम्बोधित किया। हेसियड के भाई ने पैत्रिक सम्पत्ति के उचित अंश से उसे वंचित करने के लिये अधिकारियों को घूस दी। न्याय-कर्ता स्वयं स्वार्थी हो गये और न्याय चाहने वालों को असंतोष ही मिला। अतएव न्याय की उचित व्यवस्था के लिये जोरदार मांग हुई तथा अधि-

नायकों का अधिकार एकांतिक न रह सका । कानून का स्वतंत्र रूप ग्रहण किया गया । उसे लिपिवद्ध भी किया गया। कानून निर्धारित हो जाने पर यह निश्चित हो गया कि इसी मानदण्ड से न्यायकर्त्ता न्याय करेगा । अब न्याय उसके मन की तरंग न होकर, विचार का विषय हो गया।

स्पार्टा की युद्ध-प्रणाली में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ने भी कुलीनता के विघटन में बड़ा योग दिया। अभी तक घुड़सवार-सेना की प्रधानता थी, किन्तु कौशल की उन्नति से अच्छे शिरस्त्राण तथा कवच बनना जब संभव हो गया, तो सुसज्जित पैदल सेना अधिक उपयोगी प्रतीत हुई। इस सेना में बहुसंख्यक अर्ध-दास अथवा खेतिहर-दास भर्ती किये गये तथा उनके साथ कंधे से कंधा मिला कर कुलीन युवकों को भी युद्ध में भाग लेना पड़ता था। पैदल सेना का महत्व बढ़ा और सामरिक शक्ति का मुख्य आधार 'हापलाइट' लोग हो गये । उनमें जाग्रति हुई तथा समतावाद को बल प्राप्त हुआ ।

कला-कौलश की उन्नति तथा उद्योग-व्यवसाय का धनोपार्जन का उपयोगी साधन बनना कृषि की उपेक्षा का कारण एवं नागरिक जीवन के विकास का हेतु बना। आरम्भ में यद्यपि वे लोग जो कृषि के आधार पर सम्पन्न एवं श्रीमान् थे, वे ही अपनी पूंजी के आधार पर उद्योग-व्यवसाय में भी श्रेष्ठता बनाये रख सके, किंतु यह प्रगट होने में अधिक समय नहीं लगा कि कुलीनता के पुराने आधार, जन्म तथा वंशगत जमींदारी या इलाकेदारी, अब विलीन हो रहे हैं । उनके स्थान पर वे लोग, जो व्यवसाय से अच्छी पूंजी कमा लेते, कुलीन बन जाते थे। अतएव आर्थिक जीवन में कला-कौशल तथा उद्योग की प्रधानता ने भी जन-समता को प्रोत्साहन दिया और कुलीनतावाद की आधार-शिलाओं पर कठोर आघात किया ।

जिस समय यूनान का उद्योग-व्यवसाय उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा था, उन्हीं दिनों, लीडिया से सिक्कों का प्रयोग सीख कर, वहांके व्यवसायी-वर्ग ने पुरानी आर्थिक प्रणाली को हिला दिया। प्रारंभ में तो इससे पूंजीवाद की वृद्धि हुई, क्योंकि कृषि-जीवन में उस सीमा तक संपत्ति-संचय संभव नहीं हो सकता, जिस सीमा तक धातु के सिक्कों के द्वारा; साथ ही आदान-प्रदान की सुविधा के कारण पूंजी की वृद्धि भी कहीं अधिक तीव्र होती है। इससे, पहले तो कुछ लोगों की सम्पत्ति अपूर्व गति से बढ़ी और जन-साधारण की दरिद्रता भी उसी प्रकार। किंतु तज्जनित असंतोष भी बढ़ा जो समतावाद की ओर समाज को अग्रसर करने लगा।

यूनान के वर्धमान उद्योग एवं विदेशो में उसके माल की खपत और मांग ने अधिक संख्या में मजदूरों तथा कारीगरों की आवश्यकता प्रस्तुत की, जिसके लिए उत्तर तथा पूर्व से, कालासागर के तटीय प्रदेशों से और विजित देशों से बहुसंख्यक दासों को इकट्ठा किया गया। दासों की संख्या बहुत अधिक हो गई और स्वभावतः इन दासों का जीवन घरेलू तथा खेतिहर दासों की अपेक्षा विखरा एवं असंगठित न होने के कारण, इनका असंतोष तथा दमन जन-जाग्रति एवं सामाजिक न्याय के लिए एक बलवती प्रेरणा बन गया।

वस्तुतः दास-प्रथा ने ही यूनान के राजनैतिक जीवन को सदा इतना क्षुब्ध रक्खा कि वह कभी शांत और स्थिर न रह सका। स्मरण होगा, डोरियाई आक्रमण द्वारा यूनान के प्राचीन वासियों को भरपूर कुचला गया था। वे लोग आक्रमणकारियों से किसी प्रकार कम सभ्य नहीं थे; किंतु उन्हें पराक्रम के आगे झुकना पड़ा था। परास्त लोगों को समाज का निम्नतम वर्ग बनना पड़ा तथा डोरियायी स्वामियों की चाकरी ही उनका भविष्य हो गया।

इस परिस्थिति को उन्होंने कभी मौन होकर स्वीकार नहीं किया। उनके दमन के लिए स्पार्टा सदा के लिए युद्ध-शिविर का जीवन बिताने को मजबूर था। वहां का शासक-वर्ग कठोरता एवं नृशंसता की सीमा चूम रहा था। जब कभी कोई 'एफर' पदासीन होता, तो सबसे पहला काम उसका होता था दास-वर्ग पर अपने हाथ की सफाई दिखाना; और इस प्रकार शासक-वर्ग का विश्वास प्राप्त करना। कुलीन युवकों को छूट थी कि जब और जहां पर, वे किसी दास पर संदेह करने का असवर पायें, मौत के घाट उसे उतार देने में संकोच न करें।

इस प्रकार सातवीं शताब्दी में राजनैतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक सभी कारणों ने समवेत रूप से जनवाद को प्रोत्साहन दिया तथा कुलीनतन्त्र को विघटित करना चाहा। तत्कालीन साहित्य एवं दर्शन पर यह वर्ग-संघर्ष स्पष्ट अंकित मिलता है। यूनान के प्राचीन नगर-राज्यों के पूरे इतिहास में यह संघर्ष कभी सुलझ न सका तथा विविध रूपों में, कभी एक वर्ग तो कभी दूसरा, राज-सत्ता प्राप्त कर अपना हित साधन करना चाहता। परन्तु इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि शासक और शासित वर्ग के बीच, पारस्परिक नियंत्रण के विविध प्रयत्नों के फलस्वरूप जिस राजनैतिक-यंत्र का विकास हुआ वह आज भी उतना ही रोचक एवं उपादेय है, जितना कभी हो सकता था।

नगर-राज्य

पहाड़ियों तथा घाटियों वाले ऊंचे-नीचे धरातल पर, समतल प्रदेशों की भांति विस्तृत राज्यों का न होना स्वाभाविक ही है; स्थिर जीवन के प्रारम्भिक काल में प्राचीन यूनान के नगर-राज्यों की रूप-रेखा में धरातल का विशेष रूप से हाथ था। यूनान अनेक छोटे-बड़े नगर-राज्यों का देश था, जिसमें गम्भीर अन्तर-राज्य-नीति चला करती थी। हर एक को दूसरों से आत्म-रक्षा की चिन्ता थी; और सभी के अपने-अपने स्वार्थ थे। किंतु इसके अर्थ यह नहीं हैं कि आपसी भेद-भाव के कारण उन सब में यूनानी होने का एक-भाव व्यापक नहीं था। हां, उस समय वह इतना प्रभाव शाली नहीं हो गया था कि यूनान एक राष्ट्र हो जाता।

यद्यपि नगरों के निर्माण में उद्यम-व्यवसाय की प्रधानता तथा कृषि की उपेक्षा एक महत्वपूर्ण हेतु थी; फिर भी नगर-राज्यों की

स्थापना के बहुत समय पश्चात् तक लोग कृषि की उत्तमता नहीं भुला सके; और अन्य सभी उद्यमों से इसे ही श्रेष्ठ माना जाता रहा। डेल्फी के संत, अरिस्टोफेंस तथा दार्शनिक अरिस्टाटिल, यह सभी कृषि के जोरदार पक्षपाती थे। अरिस्टाटिल तो दस्तकारों और सौदागरों को हेय मानता था। अवश्य ही उस समय यह धारणा रूढ़िवादी थी, क्योंकि कृषि का आश्रय लेकर यूनान कभी उन्नति नहीं कर सकता था और दस्तकारी तथा व्यवसाय से यूनान का भविष्य चमक उठने वाला था।

यूनान में प्रायः वे सभी दस्तकारियां जो किसी उच्चकोटि के संस्कृत एवं सभ्य देश की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अपेक्षित होती हैं, प्रचलित थीं, तथा उत्पादन अपने देश की खपत से कहीं अधिक होने के कारण विदेशों में भी बहुत-सा माल बिकता था। यूनान के प्रमुख उद्यमों में, मिट्टी के कलायुक्त सुन्दर बर्तन बनाना, पाषाण-मूर्तियां गढ़ना, धातुओं का सामान, तलवार, कवच, शिरस्त्राण आदि युद्धोपयोगी सामग्री का निर्माण, लकड़ी तथा ऊन का काम और सुन्दर इमारतें बनाना मुख्यतः गिनने योग्य हैं। हाथ से काम करना लोग अनुचित नहीं समझते थे। इसलिए समाज के सभी, कुलीन-अकुलीन, उद्यमी एवं कर्मठ थे और देश का उत्पादन तत्कालीन साधनों को देखते हुए, अवश्य ही अधिक रहा होगा। समुन्नत विदेशी व्यापार के कारण नौका-निर्माण का उद्यम तथा नाविक-जीवन भी यूनान में अत्यधिक विकसित था।

यूनान के नगर-राज्यों में केन्द्रीय नागरिक बस्ती होती थी और उसके आस-पास देहाती इलाका, जो देहात में प्राप्त होनेवाले जीवन के साधनों से नगर वालों को सम्पन्न रखता था। नागरिक क्षेत्र तथा ग्रामीण-क्षेत्र के सम्बन्ध सभी नगर-राज्यों में एकसे नहीं थे। बहुधा नगर के निवासी शासक वर्ग होते थे और आसपास के

देहाती निवासी दलित एवं शोषित थे। स्पार्टा नगर-राज्य के अन्तर्गत पांच गांव थे। इनके संयुक्त होने से ही स्पार्टा बना था; किंतु यह सभी गांव अपना प्रथक् अस्तित्व रखते थे। राजनीति में हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल नगर-वासियों को था, जो डोरियाई वंशज थे; और प्राचीन यूनान-वासियों को परास्त कर उनसे अपने श्रमसाध्य किसानी आदि काम लेते थे। नागरिक बस्ती के आसपास जो लोग रहते थे, 'पेरिकोई' अर्थात् अन्तेवासी कहलाते थे। यह अपनी स्थानीय व्यवस्था में स्वतन्त्र थे, फिर भी आपत्तिकाल में सैनिक सेवा करने के लिए बाध्य रहते थे। स्पार्टा में शासक वर्ग अत्यन्त अल्पसंख्यक एवं अनुदार था। उसे सर्वदा अपना एक हाथ तलवार की मूंठ पर रखना पड़ता था। स्पार्टा का जीवन स्थायी रूप से युद्ध-शिविर का जीवन था और वहां का प्रत्येक नागरिक सैनिक था। स्पार्टा के पड़ोसी, आर्केडिया में, नगर-जीवन का विकास न होने से, लोगों में ग्रामीण संस्कृति थी, अंधविश्वास तथा अशिक्षा के साथ-साथ सभ्यता में भी वह लोग पिछड़े रह गये थे। यद्यपि यूरोपीय साहित्यकारों की कल्पना में यूनान का ग्रामीण-जीवन, अंगूरी और बालाओं से युक्त, नैसर्गिक आनन्द का सागर था, किंतु आर्केडिया के यथार्थ अवश्य ही इससे बहुत भिन्न रहा होगा। क्योंकि जहां कहीं भी व्यापार आदि के कारण से सम्पन्नता बढ़ी वहां सुरक्षा के विचार से भी नागरिक-जीवन आवश्यक हो गया। तब आर्केडिया के लोग दीन और अरक्षित जीवन में कैसे सुखी होंगे !

एथेंस की कहानी दूसरी है। वह न तो आर्केडिया की भांति असभ्य एवं ग्रामीण था और न स्पार्टा की तरह रणोन्मख। यूनान में जिस स्थान पर मानव-जीवन ने पूर्ण विकास प्राप्त किया वह एथेंस ही था। वह भी स्पार्टा की तरह अनेक ग्राम्य क्षेत्रों के संयोग से एक बड़ा राज्य बन गया था; किंतु जो गांव उसके साथ मिल गये

थे, वे बराबरी के संबंध से मिले थे। एथेंस एक संघ-राज्य था। राज्य के किसी भाग के निवासी, ग्रामीण अथवा नागरिक को, समान राजनैतिक अधिकार प्राप्त थे। एथेंस सभी लोगों के लिए सांस्कृतिक एवं राजनैतिक तीर्थ था। प्रत्येक व्यक्ति यथाशक्ति उसमें भाग लेने की चेष्टा करता था।

यूनान में कई राज्य अधिनायकों द्वारा शासित थे; जिनमें मेगारा, कोरिंथ तथा सीसियों विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अधिनायकवाद में अन्तर था। सिसियों का अधिनायकवाद उदार एवं जनप्रिय था, कोरिंथ में वह जनहितवादी किंतु कठोर था और मेगारा का अधिनायकवाद अल्पायु एवं संघर्षमय रहा।

कौटुम्बिक जीवन

नगर-राज्य के निवासी अधिकांशतः कौटुम्बिक गांवों के आधार पर बसे होने के कारण परस्पर रक्त-संबंध में बंधे थे, जिससे वहां का नागरिक जीवन एक पारिवारिक घनिष्टता की अन्तर्तरंग से स्निग्ध रहता था। यह घनिष्टता यूनान के लिए महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रभाव थी। इतने बड़े फैलाव में उचित साधन न होते हुए भी, अत्यन्त प्राचीनकाल, में एक समुन्नत जन-तन्त्र की स्थापना अन्यथा कठिन ही थी। आज की त ह वहां निर्वाचन में मत स्थिर करना दुस्साध्य न था। घर और बाहर के जीवन में विशेष अन्तर नहीं था, लोग एक दूसरे को प्रायः वैसे ही जानते थे जैसे आज हम अपने कुटुम्बवालों को जानते हैं। नगर-राज्य के सम्पूर्ण इतिहास में कौटुम्बिक जीवन की गहरी छाप मिलती है। धनी और निर्धन का भेद होते हुए भी कौटुम्विक जीवन के प्रभाव से लोग आपसमें बराबरी के नाते मिलते-भेंटते थे, सार्वजनिक व्यायाम-शालाओं में खेलते-कूदते थे।

यूनान का नागरिक जीवन तथा कौटुम्बिक जीवन परस्पर अनुकूल एवं घुलामिला होने के कारण दोनों का प्रथक करना कठिन था।

व्यक्ति कभी दोनों के बीच अन्तरसंघर्ष या तनाव अनुभव नहीं करता था। नगरों के चारों ओर खिची हुई ऊंची चहारदीवारी तथा थोड़ी जन-संख्या, यह दोनों वहां के कौटुम्बिक जीवन को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त रक्त-संबंध से ही नागरिकता का निर्णय करना तथा विदेशियों को कभी नागरिक न मानना नागरिक जीवन एवं कौटुम्बिक जीवन में दरार पड़ने से रोकता था। इसीलिए अरिस्टाटिल ने आदर्श नगर-राज्य के लिए क्षेत्र तथा जन-संख्या का अधिकतम निर्धारित कर दिया था। उसका कहना था कि जनता का शासन तभी स्थापित हो सकता है, जब लोग परस्पर एक दूसरे को जानते हों, तथा निर्वाचन में विचारपूर्वक अपना मत स्थिर कर सकें।

नगर-राज्य अनेक उपनगरों में विभक्त होता था। बहुधा एक वंश के लोग एक प्रथक् उपनगर में रहा करते थे। किंतु यह व्यवस्था केवल आरम्भ के कुछ वर्षों तक ही चल सकी होगी। आगे चल कर मैत्री, विवाह-संबंध, उद्योग-धंधों की सुविधा के विचार से लोग एक उपनगर से उठ कर दूसरे में अवश्य बस जाते रहे होगें। क्लीस्थ-नीज़् ने एक बार इस बंटवारे को राजनैतिक दृष्टिकोण से ठीक किया, अथवा अमरीकन भाषा में 'जेरीमैण्डरिंग' की, तथा पूरे एथेंस नगर को दस भागों में बांट दिया। प्रायः वही बंटवारा अन्त तक चलता रहा।

नगर-राज्यः कुल-राज्य

इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन यूनान के नगर आजकल के से नगर नहीं थे। उनमें विशाल पक्के मकानों के समूह न थे और न जन-संख्या ही लाखों में होती थी। आबादी बिररी थी। कुछ घनी आबादी केन्द्र में होती थी, शेष बन्दरगाह के निकट तथा नगर की बाहरी देहाती परिधि में। एथेंस की कुल आबादी दस क्षेत्रों में

विभक्त थी। यह विभाजन क्लीस्थनीज़ ने चतुराई से किया था, जिससे प्रत्येक खण्ड के साथ कुछ देहाती भाग भी लगा रहे तथा पड़ोस के उपनगर मिल कर केन्द्रके विरुद्ध सिर न उठा सके। इस विभाजन के बावजूद उपनगरों का जीवन अत्यन्त सजीव तथा चहल-पहलपूर्ण था। प्रत्येक नगर को बहुत कुछ राजनैतिक स्वतन्त्रता थी तथा केन्द्रीय शासन में उसका अधिकार था। एथेंस से भिन्न, स्पार्टा में सम्पूर्ण राज-सत्ता केन्द्रीय नगर-वासियों के हाथ में रहती थी। परिधि के क्षेत्रों में रहने वाले उनकी न्यूनाधिक आधीनता में रहते थे। दूसरा महत्वपूर्ण अन्तर, जो आधुनिक नगरों तथा प्राचीन यूनान के नगरों में दिखाई पड़ता है, वह नगरवासियों की आपसी घनिष्टता है, जिसका मुख्य कारण उनका रक्त--संबंध बताया जाता है। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि वे नगर-राज्य थे ही नहीं। उन्हें कुल-राज्य कहना चाहिए। रोम तथा आयोनिया में इस प्रकार के राज्य बन गये थे, जिन्हें नगर-राज्य कहा जा सकता था; क्योंकि उनकी आबादी बहुत कुछ मिश्रित हो चुकी थी। किंतु एथेंस और स्पार्टा यदि किसी अर्थ में राज्य थे तो केवल कुल-राज्य ही। यद्यपि आगे चलकर यह लक्षण शनैः शनैः अवश्य कम होता गया और उनमें बंधुत्व की भावना भी अधिक विकसित तथा व्यापक हो गयी।

इन्हें कुल-राज्य कहने का एक कारण यह भी है कि समस्त एथेंस-वासी कुलदेवी, एथेना की पूजा करते थे। उनके वंशानुगत लक्षणों का वह प्रतीक बन गयी थी। उसने अपनी भक्ति के दृढ़ सूत्र से वहां के समस्त निवासियों को बांध दिया था। पुनः, उस समय की नागरिकता की धारणा भी कुल-राज्य के ही पक्ष में थी। एथेन्स के नागरिक माता-पिता के वैध संबंध से उत्पन्न व्यक्ति ही वहां का नागरिक होता था। स्पष्ट है ऐसी दशा में रक्त-संबंध की शृंखला टूटने का कहीं अवसर ही नहीं था। अतएव सभी

नागरिकों का किसी न किसी पीढ़ी में, रक्त-संबंध से संबंधित होना निश्चित था ।

यह तो सत्य है कि प्राचीन यूनान की प्रारंभिक स्थायी आबादियों में जो लोग रहते थे, वे परस्पर कर्मकांड और पूजा-विधि की समानता तथा रक्त-संबंध से आबद्ध थे। परन्तु समय व्यतीत होने पर, स्थायी निवासकी दिशा में, रक्त-संबंध से अधिक भौगोलिक पड़ोस का प्रभाव पड़ा होगा। दूसरे वंशों से मेलजोल, कामकाज के संबंध दूर होने पर भी कितने ही परिवारों को निकट ले आया होगा। कितने ही घर विभिन्न कारणों से एक उपनगर (डेमी) छोड़ कर किसी दूसरे उपनगर में जा बसे होंगे। उस अवस्था में उनके पुराने सम्बन्ध क्षीण हुए बिना नहीं रह सकते तथा उनके स्थान पर नये संबंध अवश्य ही अंकुरित हो आये होंगे। इसके अतिरिक्त, बसी हुई जगहों में, अपने खानाबदोश जीवन से परेशान कितने ही दूसरे कुल भी आकर स्थिर हो गये होंगे और वे पुरानी आबादी से बहुत दिन तक प्रथक नहीं रहे होंगे। ज़िमर्न का कथन है कि नये कुल तथा नगर-राज्य के बाहरी क्षेत्रों में बसे हुए लोग नगर-जीवन में अधिक से अधिक भाग लेने के लिए लालायित रहते थे। क्योंकि वे नगर के निकट केवल अपनी भौतिक सुविधाओं और सुख के ही विचार से नहीं आते थे। वह समझते थे, नगर-राज्य आध्यात्मिक उन्नति का साधन भी है। मानव-जीवन की उच्चतम महिमा उसी से प्राप्त हो सकती है। ऐसी प्रेरणाएं जब लोगों को नागरिक जीवन में घुलने-मिलने के लिए प्रेरित कर रही थीं, प्रथक्करण कितने दिन चला होगा। रक्त-संबंध शीघ्रही शिथिल होकर केवल मिथ्या धारणा के रूप में व्यवहृत होता होगा; जिसके खोखलेपन का उदाहरण आजकल के 'आर्य-रक्त की शुद्धता' जैसे नारों में मिल सकता है ।

नगर-राज्यः राष्ट्रीय राज्य

प्राचीन यूनान में राष्ट्रीय राज्य जैसे विस्तृत राज्य की स्थापना न

होकर छोटे-छोटे नगर-राज्य ही बन कर रह गये। इसमें संदेह नहीं कि इसका मूल कारण भौगोलिक परिस्थितियां हैं। छोटे-छोटे समुद्रों और नीची-ऊंची पहाड़ियों द्वारा खण्ड-खण्ड बंटा हुआ यूनानका धरातल विस्तृत साम्राज्य एवं सबल राष्ट्रीय भावना के लिए उपयुक्त नहीं था। परन्तु अर्नेस्ट बार्कर ने इस मत का विरोध किया है। इनका कहना है इसका कारण भौगोलिक से अधिक भावात्मक है। यूनान के लोगों को घनिष्ट सामाजिक जीवन से इतना मोह था कि वे राष्ट्रियिता की व्यापकता में अपने को खो देने के लिए तैयार नहीं थे। इसके अतिरिक्त राष्ट्रयित को रोकने के लिए उनकी कौटुम्बिक एवं रक्त-संबंध की भावना भी पर्याप्त थी। अपना स्वायत्त-शासन एवं सामाजिक प्रथाएं, जो लगातार वादानुवाद का विषय थीं, तथा बात-चीत से ही जीवन के गम्भीर मसलों को हल कर लेने का स्वभाव, उन्हें प्रिय था। बातचीत उनके जीवन की आध्यात्मिक आवश्यकता बन गई थी। यदि यूनान राष्ट्र का आकार ग्रहण कर लेता तो यह जीवन-प्रणाली संभव न होती।

फिर भी राष्ट्रीय भावना यूनान के लिए अपरिचित वस्तु नहीं थी। भाषा की एकता, देवता-धर्म की एकता, स्वभाव तथा जीवन-विधि की एकता यूनान के सभी राज्यों में दिखाई ही देती थी। यूनानी लोग अपने को एशिया के लोगों से तथा उत्तर की जातियों से श्रेष्ठ मानते थे। अरिस्टाटिल का कहना था कि मानव-सृष्टि में यूनानी सर्वश्रेष्ठ हैं। उनमें बरबर जातियों की वीरता तथा पूर्वी लोगों की बुद्धिमत्ता पाई जाती है। इससे वह कभी दास तथा पराधीन नहीं हुए। वे संसार के सभी शासितों से सुखी हैं। उनकी शासन-प्रणाली अद्वितीय है। इसो-क्रेटीस जैसे लोग कहते थे कि आने वाले युग में यदि यूनान को अपना नेतृत्व सुरक्षित रखना है, तो उसे एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में विकसित होना पड़ेगा। किन्तु उसकी सुनने वाला कोई था नहीं।

यनान के निवासी अन्य तलों पर एकता का भाव तो अवश्य रखते थे, किन्तु वह राजनैतिक क्षेत्र में प्रेरक शक्ति न बन सका ।

नगर-राज्य की जीवन प्रणाली को छोड़ने का विचार ही यूनानियों के लिए उस समय कठिन था। उन्हें उसपर गर्व था और उसकी रक्षा के लिए देरियस तथा सरेक्सेस की अपार पारसीक सेनाओं के आगे अपनी मुट्ठी भर शक्ति लेकर साहस का उन्होंने ज्वलंत उदाहरण दिया। आगे चल कर जब यूनान के नगर-राज्य मेसीडोनियां तथा रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आगये, उस समय भी, उन्होंने अपना व्यक्तित्व नहीं खोया। साम्राज्य को उन्होंने केवल एक व्यापक राजनैतिक योजना के रूप में ग्रहण किया और नागरिक जीवन के साथ-साथ ही उसका निर्वाह किया। मेसिडोनियां के सम्राटों ने एथेन्स-वासियों की नगर-भक्ति को स्वीकार कर लिया था, और अपनी राजनीति में उसे स्थान दिया था। दोनों का समन्वय करने के लिए सम्राटों ने देव-पद ग्रहण किया और यूनान के अन्य देवताओं की भांति उनकी मूर्तियां भी वहां पूजी जाने लगी। तात्पर्य यह है वाह्य तथा आरोपित राजनैतिक बंधन के रूप में एथेन्स ने उन्हें स्वीकार नहीं किया।

अन्त में, अपने पतन-काल में भी नगर-राज्य-प्रणाली, यूनान के जीवन से किस कठिनाई से सम्बंध-विच्छेद कर रही थी, इस बात से प्रगट होता है कि धनवान लोग, उस समय भी, सार्वजनिक भोज तथा मनोरंजन का आयोजन, अपनी सारी संपति गंवा कर, तथा स्वयं निर्धन होकर भी, कराते थे। भले ही इसमें, यश तथा सार्वजनिक समारोह पूर्ण अपने अन्त्येष्टि संस्कार अथवा अपनी मूर्ति-स्थापना की लालसा छिपी रहती हो, फिर भी इसमें प्राचीन यूनानके नगर-राज्य की जीवन-प्रणाली की गहरी छाप अस्वीकार नहीं की जा सकती। धनी लोग

समझते थे, यद्यपि धन उनका है, तथापि सर्वजनहिताय वे उसके स्वामी हैं। धनकी सार्थकता उसके सामाजिक उपयोग में है। निर्धन समझते थे, धनवानों के धन पर उनका किसी प्रकार से अधिकार पहुंचता है। भावनाओं की उदारता ही यूनान के नगर-राज्यों को धनी-निर्धन के व्यापक संघर्ष से बराबर बचाती रही। किन्तु साम्राज्य के अन्तर्गत पदलोलुपता बढ़ने लगी। नगर-भक्ति का स्थान शनैः-शनैः केन्द्रीय शासन की भक्ति लेने लगी। इसके अतिरिक्त पद के सहारे धन-संचय तथा राज कोष में गड़बड़ी करना भी शुरू हो गया। इस प्रकार के तथा अन्य बहुतेरे अवसर केन्द्रीय शासन को नगर-राज्य के स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप करने के मिलने लगे, जिससे नगर-राज्यों का व्यक्तित्व क्षीण होने लगा। उनका जीवन कान्तिहीन हो चला।

सामाजिक वर्ग

यूनान के इतिहास में आक्रमणकारियों के अनेक समूह, एक के पश्चात् एक आये, अपने राज्य और संस्कृति की स्थापना की तथा अगले आक्रमण में परास्त होकर समाज के निम्न स्तर में पहुँच गये। नवीन शासक-वर्ग ने समस्त शक्ति अपने हाथ में कर पराजित लोगों से भरपूर काम लेने के लिए उन्हें अनेक यातनायें दी। आने-वाले नये लोगों को दलित-वर्ग अधिकाधिक संख्या में प्राप्त होता रहा और विजेता शनैः शनैः अल्पसंख्यक होते गये। इससे पराजितों के दमन करने की कठिनाई तथा उनका जन-बल एवं आत्म-विश्वास बढ़ता गया। पराजित लोगों में, जो नये होते थे और जिनमें राजनैतिक अधिकारों की गंध सम्पूर्णतया विलीन नहीं हो गई होती थी, उन्हें अन्य लोगों की अपेक्षा कुछ स्वतन्त्रता मिल जाती थी। स्वतन्त्र नागरिकों में रक्त-संबंध एवं कौटुम्बकि-जीवन की गहरी छाप होने के कारण, आर्थिक आधार पर ऊंच-नीच का भाव स्पष्टतया व्यक्त नहीं हो सकता था; किंतु धनी-निर्धन का अन्तर प्रभाव-शुन्य भी नहीं था।

एथेंसके वे स्वतन्त्र निवासी, जो राजनैतिक अधिकार से युक्त थे और जन-सभा में भाग लेने के अधिकारी थे, तीन प्रकार के होते थे, यूपैट्रिडी अर्थात् श्रेष्ठ जन; अपने खेतोंमें खुद काम करने वाले गियोग; और तीसरे डेमिअर्गी, जो शिल्पी थे। यह लोग नगर के वाह्यांचल में रहते और बर्तन बनाने, बढ़ई या लोहारी आदि के काम से जीवका प्राप्त करते थे। आर्थिक स्थिति के विचार से, इन्हीं की श्रेणी में हेक्टेमोरोई लोग भी आ जाते थे। हेक्टे का अर्थ है छठा अंश। यह लोग श्रेष्ठजनों के खेतों में काम करते थे और उपज का छठा अंश इन्हें श्रम के बदले दिया जाता था। स्वतन्त्र समाज के इस अंतिम भाग को, जो भूमिहीन श्रमिक थे, कोई राजनैतिक अधिकार नहीं मिला था। यह लोग जन-सभाओं में भी नहीं जा सकते थे।

स्पार्टा के डोरियाई शासक-वर्ग, प्राचीन निवासियों की अपेक्षा, कहीं कम संख्या में थे। अतएव वहां के श्रेष्ठजनों (हमोईओइ) को निम्न वर्ग के लोगों के प्रति अत्यन्त कड़ा रुख रखना पड़ा, साथ ही वहां का दलित-वर्ग बहुसंख्यक होने के कारण कभी-कभी अपने जन-बल का आभास पाकर सिर उठा देता था। हेलाट लोग स्पार्टा की आबादी का सब से निचला भाग थे। इन्हें श्रेष्ठजनों तथा शासकों के खेतों में काम करना पड़ता था और उसके बदले, पुरूष को अनाज की सत्तर मिडिम्नी (एक यूनानी तोल), स्त्री को बारह मिडिम्नी तथा कुछ शराब और फल मिलते थे। शेष उपज मालिक की होती थी। उक्त हिसाब से, उपज का भाग दे चुकने के उपरान्त, मालिक को इनके भरण-पोषण की कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहती थी। वह अपना संपूर्ण समय राजनैतिक कार्य में लगा सकता था। कुछ हेलाट जो युद्ध के अवसर पर देश-प्रेम और वीरता प्रगट करके राज्य का विश्वास प्राप्त कर लेते थे, उन्हें नागरिक मान लिया जाता था। ऐसे लोगों को 'नियो-डिमोड्स' अर्थात् 'नये नागरिक' कहा जाता था। इनके अतिरिक्त

स्पार्टा के पराधीन वर्ग में वे लोग भी थे जो हेलाट माता के गर्भ से नागरिकों की अवैध सन्तान होते थे। ये मोथोन कहलाते थे। दासों में, जो कुछ सभ्य दिखाई देते और पराधीनता जिन्होंने मौन होकर स्वीकार कर ली थी, उन्हें घर पर काम करने के लिए भी रख लिया जाता था। ऐसे दास डुलोस कहलाते थे।

सामाजिक वर्ग के आधार पर प्रत्येक उपनगर दो भागों में बांटा जा सकता था। सम्पन्न शोषक-वर्ग, जो उस समय की सभ्यता एवं शिष्टता का आधार था, नगर के मध्य-भाग की ओर रहता था। दलित शोषित एवं निर्धन-वर्ग नगर के किनारे-किनारे बसा था। धनवानों को अधिक सुरक्षा की आवश्यकता थी। उस समय लूटमार करके धन कमा लेना अधिक हेय भी नहीं था, जिससे डाकुओं का भय अधिक था। इसीलिए संपत्ति की रक्षा करने के लिए कष्टप्रद घनी आबादी में रहना धनवान लोग पसंद करते थे। आजकल, शांति और व्यवस्था अधिक होने के कारण तथा बैंकों की सुविधा हो जाने से, धनवान लोग नगर की बाहरी खुली जगहों में रहने का सुख ले सकते हैं। किंतु प्राचीन यूनान के नगरों में परिधीय भागों पर रहने वाले अन्तेवासी, आक्रमणका का पहला वार झेलने के लिए ही बसाये जाते थे।

यूनान का दास-वर्ग अधिकांशतः विजित देशों के निवासियों तथा युद्ध-बन्दियों द्वारा निर्मित था। किसी यूनानी को दास बना लेने के विरुद्ध दृढ़मूल भावना नहीं थी; स्पार्टा ने ही मेसेनिया पर आक्रमण कर असंख्य मेसेनिया-वासियों को गुलाम बना डाला था। परन्तु जाग्रत-वर्ग के लोग इसके विरुद्ध हो चले थे। आरिस्टटिल भी इसका विरोधी था।

दास तथा नागरिक के अतिरिक्त यूनान के नगर-राज्यों में विदेशियों का भी एक वर्ग पाया जाता था। यह व्यापारादि

कारणों से आकर बस गया था। उनमें से बहुत से परिवार कई पीढ़ियों से रह रहे थे। उद्योग-धंधे को प्रोत्साहन देने के हेतु, सर्व प्रथम सोलन ने इन्हें आकर बसने के लिये आमंत्रित किया था। किन्तु नगर-राज्य बाहरी लोगों को कभी अपना नहीं सके। इन विदेशियों को 'मेटिक' कहा जाता था और एथेन्स जैसे व्यापारी नगरमें इनकी संख्या कम नहीं थी। यद्यपि वे अपने नये निवास-स्थान के नागरिक बनकर राजनैतिक अधिकार नहीं प्राप्त कर सके, किन्तु, दासों की भांति, न तो वे किसी प्रकार बाध्य थे और न समाज में हीन ही समझे जाते थे।

यूनानी सभ्यता और दास-प्रथा

कुछ लोगों का विश्वास है कि यूनानी लोग शारीरिक परिश्रम से घृणा करते थे; इससे उनके चिन्तन तथा सांस्कृतिक कार्यों में बाधा पड़ती थी। दास-प्रथा के ही कारण उनका ज्ञान-विज्ञान एव संस्कृति इतनी समुन्नत हो सकी। उनकी सभ्यता का आधार दास-प्रथा थी। किन्तु अर्नेस्ट बार्कर कृत 'प्लेटो ऐंड हिज़ प्रे.डिसेसर्स, में उद्धृत कुछ आंकड़ों से यह विचार त्रारहीन प्रतीत होता है। जैसे, एथेंस नगरमें लगभग ८०,००० दास थे। इनमें ४०,००० राजकीय सेवामें पुलिस तथा क्लर्कों का काम करते थे। २०,००० किसी चांदी की खान में काम करते थे। शेष केवल २०,००० बचे। कुछ धनवान लोग दासों को किराये पर भी चलाते थे, तथा अपनी सेवा में अनेक दास रखते थे। इस प्रकार सामान्य नागरिक के लिये दास नहीं बचते थे। उसे अपना काम स्वयं ही करना पड़ता था। यूनान का अपने समय के सबसे बड़े विवेकवान, सात्रेटीज़ की ही निर्धनता तत्कालीन साहित्यका विषय बन गई थी। खान में काम करने वालों के अतिरिक्त दासों की दशा बहुत शोचनीय नहीं थी। कुछ दासों से प्रसन्न होकर अथवा उन

पर दयार्द्र होकर स्वामी मुक्ति भी दे देते थे। यह भी आवश्यक नहीं था कि दास का पुत्र भी दास हो।

इसमें सन्देह नहीं कि यूनान के वैभव में दास-प्रथा का असाधारण योग था, किन्तु सभी नगर-राज्यों में उसे अनिवार्य नहीं समझा जाता था, न सभी जगह दस्तकारी तथा शारीरिक परिश्रम से घृणा ही की जाती थी। यद्यपि दार्शनिक अरिस्टाटिल ने दास-प्रथा का समर्थन किया और चाहा कि एथेन्स के नागरिक इसके आधार पर अधिक समय चिन्तन एवं स्वाध्याय में लगावें, किंतु वह तो नागरिकों में केवल उन्हीं लोगों को गिनना चाहता था, जिन्हें अपने भरण-पोषण के लिये मेहनत मजदूरी न करनी पड़ती हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि एथेंस ने व्यवहारिक रूप से उसकी बात स्वीकार कर ली थी। सच तो यह है कि एथेन्स-वासी अनेक दस्तकारी के काम जैसे खेती, बर्तन बनाना तथा तलवार गढ़ना, दासों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर करते थे। उन्हें किसी काम के करने में लाज नहीं थी। न किसी काम के आधार पर किसीको समाज में छोटा-बड़ा ही मानते थे। इस पर भी मुक्ति तथा बंधन का अन्तर कम नहीं होता। 'दास बनकर स्वर्गमें रहने से तो नारकीय किंतु मुक्त जीवन कहीं अधिक श्रेयस्कर है।' इसके अतिरिक्त, मैं प्रो० बार्कर के साथ इस बात में पूर्णतया सहमत हूं कि यूनानी दास-प्रथा दास-प्रथा ही थी, उसे काल्पनिक सुख से अनुरंजित करने का प्रयास उचित नहीं, जैसा कि कुछ लोगों ने किया है। अपनी भाषा में तो यूनान के लोग मजिस्ट्रेट तथा दस्तकार, दोनों को एक ही शब्द से सम्बोधित कर सकते थे, जिसका अर्थ था 'जन-सेवक'; परन्तु स्पार्टा कुलीनवादी था। सभी देश-काल में कुलीन श्रम से हाथों को मैला नहीं करना चाहते। स्पार्टा ने अपने नागरिकों को श्रम से बचाने के लिये दास-प्रथा को दृढ़ किया था,

जिससे नागरिक अपना पूरा समय राज-कार्य अथवा युवकों की शिक्षा में लगा सकें। वहां दासके प्रति घृणा एवं कठोरता बरती जाती थी। स्पार्टा की जैसी जीवन-प्रणाली के लिये, निस्सन्देह, दास-प्रथा रीढ़ के ही समान थी; किन्तु एथेन्स के लिए नहीं।

प्राचीन दास तथा आधुनिक शोषित-वर्ग

ढाई सहस्र वर्ष में मानवता सभ्यता की अनेक सीढ़ियां चढ़ चुकी है, किंतु क्या आज भी वह दास-प्रथा के कलंक से मुक्त हो सकी? प्रायः सभी सभ्य देश जन-तंत्र के किसी न किसी रूप को ग्रहण कर चुके हैं, और दास-प्रथा को कोसते नहीं अघाते। फिर भी, कहां है कि जहां समाज का कोई न कोई वर्ग जीवन की लगभग उन्हीं दशाओं में न पड़ा हो, जिनमें यूनान के दास थे। भारतीय अन्त्यज, जिन्हें गांधी जी ने 'हरिजन' नाम दिया, यूरोपीय देशों का श्रमिक-वर्ग, अफ्रीका आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका के मूल-निवासी जिन शर्तों पर जिन्दगी बिता रहे हैं, आधुनिक सभ्यता के लिये लज्जा की बात है। प्राचीन यूनान के दासों तथा इन लोगों में समानतायें कम नहीं है: (१) यह लोग समाज के लिये वे कार्य करने के लिये बाध्य हैं, जो सबसे अधिक अप्रिय एवं श्रमसाध्य हैं। (२) इन्हें इतनी कम मजदूरी मिलती है कि शरीर द्वारा व्यय की गई शक्ति को कठिनाई से ही पूरी कर पाते है; जीवन के अन्य विकास-साधनों के प्रयोग की तो इनके लिये बात ही दूर है। (३) यूनानी दासों की भांति ही, इनके पीछे हर समय मालिक का हन्टर नहीं होता है; किंतु जीवन की परिस्थितियों तथा कहीं-कहीं कानून के द्वारा भी, अपने परम्परागत काम से चिपके रहने के लिये, यह उतने ही बाध्य हैं, जितने स्पार्टा के हेलाट थे। (४) जिस प्रकार स्पार्टा में शोषित वर्ग में तनिक भी तनाव देखकर कठोर दमन-चक्र चलता तथा नरमेध होता था और कानून उसकी

उपेक्षा करता था, वैसी ही दशा में पूंजीवादी देशों के श्रमिक, पूर्व के अनेक देशों में भूमिहीन किसान, अछूत और अफ्रीका के काले लोग हैं।

(५) जिस प्रकार प्राचीन यूनान में पेरिकोई तथा हेलाट नगर के तटीय भागों में रहते थे, वैसे ही हमारे देश में, मेहतरों की बस्तियां आबादी से बाहर होती हैं; और अफ्रीका द्वारा सवर्णों का प्रथक्करण तो विश्व-ख्याति प्राप्त कर चुका है।

(६) जिस प्रकार स्पार्टा के हेक्टेहोमोइ या हेलाट, अपने कठिन श्रम की उपज का अत्यन्त न्यून भाग पाकर ही, शोषित होते रहते थे, उसी प्रकार आज का मज़दूर और किसान दरिद्र तथा शोषित है। उसे भी उत्पादन के उचित भाग से वंचित रक्खा जाता है।

(७) आधुनिक मज़दूर, किसान, अन्त्यज तथा गौरांगों द्वारा शासित सवर्ण जातियां, प्राचीन यूनान के दास-वर्ग की ही भांति नीरस, कठोर, दरिद्र एवं नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हैं।

नागरिकता

प्राचीन यूनानमें जीवन की समस्याओं का रूप तो आज से भिन्न था ही, साथ-साथ उन्हें व्यक्त करने के शब्द और उनकी अर्थ-सीमा तथा अभिव्यक्ति भी बहुत भिन्न थी। उदाहरण के लिये यदि 'नागरिकता' के ही अर्थ लिये जांय, तो आधुनिक अर्थ से नागरिकता वह कानूनी अवस्था है, जो किसी व्यक्ति को किसी देश में, उस देश के शासकों द्वारा निर्धारित कुछ ख़ास शर्तें पूरी कर लेने पर प्राप्त हो सकती है। किंतु प्राचीन यूनान में नागरिकता से कुछ और ही तात्पर्य समझा जाता था। वह तो जन्म से ही सिद्ध हो जाती थी। कितने भी समय तक विदेश में रहने से वह

विलीन नहीं हो सकती थी, और न विदेशी को वर्षों तक निवास करने के आधार पर वह प्राप्त हो सकती थी। अर्थात् कोई तुर्क अथवा पारसी व्यापारी यदि किसी यूनानी नगर-राज्य में, अपनी दो-चार पीढ़ियां भी बिता चुका हो, तो भी वह 'मेटिक' या विदेशी ही ठहराया जायगा। वह खुले आम वहां की राजनीतिमें भाग न ले सकेगा। कदाचित उसे वैसा सम्मान भी समाज में न मिल सकेगा, जैसा किसी यूनानी को अपने नगर-राज्य में मिलेगा, चाहे वह वर्षों विदेश में ही बिता कर लौटा हो, और स्वदेश की परिस्थितियों से बिलकुल अपरिचित ही हो। इसलिए नगर-राज्य की राजनैतिक सदस्यता केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त होती थी, जो उस नगर-राज्य के नागरिक माता-पिता की वैध सन्तान होते थे। इसके अतिरिक्त, नागरिक के अधिकार विभिन्न यूनानी नगर-राज्यों में प्रथक्-प्रथक् हुआ करते थे; जन-तंत्रात्मकता की मात्रा के अनुसार कहीं संकुचित और कहीं उदार होते थे। एथेन्स में नागरिकतासे सम्पन्न व्यक्ति राज्य के उच्चतम पद पर आसीन हो सकता था, जब कि स्पार्टा में प्रत्येक नागरिक, केवल नागरिक होने मात्र से उच्चतम राजनैतिक पद के योग्य नहीं माना जाता था।

यूनान के अधिकांश नगर-राज्यों में विदेशियों, स्त्रियों, दासों, बालकों तथा दण्डित अपराधियों के अतिरिक्त सभी नागरिक होते थे। उन्हें अपने यहां की राजनीति में हस्तक्षेप करने का अधिकार होता था। अथवा, यह कहना चाहिये कि अपने राज्य की शासन-व्यवस्था की चिन्ता उन्हें करनी पड़ती थी। आजकल की भांति प्राचीन यूनान की नागरिकता की भावनामें कर्त्तव्य-अधिकार का वैसा स्पष्ट विभाजन नहीं था, क्योंकि अधिकार किसी से लेने नहीं थे। कर्त्तव्य किसी अन्य के प्रति करने नहीं थे। दोनों का उद्भव तथा विलय अपने में ही होता था। यूनान का नागरिक जो कुछ करता

था, अपने लिये करता था; अपने समाज और राज्य के लिये करता था। वह और उसका नगर-राज्य दो ऐसी हस्तियां नहीं थीं जो प्रथक् की जा सके। अधिकार भी उसे किसी से प्राप्त नहीं करने रहते थे। अपने उत्तरदायित्व के वहन करने में उसे जो कुछ करना पड़े, वही उसका अधिकार था। नागरिक-अधिकारों ने स्पष्ट एवं प्रथक अस्तित्व ग्रहण नहीं किया था। शासन तथा नागरिक इतने एकाकार थे कि अधिकार तथा उनके रक्षा करने का विचार ही नहीं उठ सकता था।

राजनैतिक अधिकार तथा नागरिकता सदा समसीमावर्ती नहीं होते थे। स्पार्टा के सभी नागरिकों को समान राजनैतिक अधिकार नहीं प्राप्त थे। कुछ वंशों में शासक बनने का विशिष्ट अधिकार सीमित था। परिषद-सदस्य भी सब लोग नहीं हो सकते थे। अरिस्टाटिल ने केवल उन्हीं लोगों को राजनैतिक हस्तक्षेप का उपयुक्त अधिकारी समझा जो न्याय-सभा में भाग लेने के योग्य हों।

यूनान में नागरिकता का अर्थ उतना ही व्यापक था जितना सदाचार का। दोनों का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से रहता था, अथवा प्राचीन यूनान के निवासी का सम्पूर्ण जीवन राजनीति में ही डूबा था। राजनीति उससे प्रथक् नहीं थी। व्यक्ति और राज्य का सम्बन्ध नैतिक तल पर था। राज्य नागरिक के जीवन-परिष्कार का साधन था। नागरिक 'एक क्लब के सदस्य की भांति रुचिपूर्वक तथा साधक की भांति उत्साह एवं दृढ़ता-पूर्वक राजनैतिक जीवन में भाग लेता था।' आधुनिक नागरिकता इस प्रकार के भाव जगाने में असमर्थ दिखाई देती है। उसकी तो कोरी कानूनी हैसियत रह गई है, जिसकी समता यूनानी के बजाय रोमन नागरिकता से सरलतापूर्वक की जा सकती है। रोमन धारणा

के अनुसार नागरिकता का अर्थ था व्यक्ति के कुछ निश्चित अधिकार-समूह जो न केवल रोम नगर-राज्य में सीमित थे, बल्कि रोमन साम्राज्य के विस्तार के साथ ही व्यापक थे। रोमन नागरिकता दी जाने और छीनी जा सकने की वस्तु थी। यूनानी नागरिकता पिता-पुत्र सम्बन्ध की भांति अमिट एवं प्राकृतिक थी ।

व्यक्ति और समाज

प्राच्य देशों की भांति यूनान का व्यक्ति अभी समाज की श्रृंखलाओं में दृढ़ता-पूर्वक नहीं जकड़ा जा सका था। अभी उसकी सभ्यता नई थी; खानाबदोशी छोड़े कोई बहुत समय नहीं बीता था। यूनानी व्यक्ति अभी वे दिन न भूला था, जब समाज और समूह से प्रथक होने का अर्थ होता था मृत्यु। इसलिये समाज का मूल्य उसे सिखाने की आवश्यकता नहीं थी। सामाजिक जीवन के प्रति उसमें एक स्वभावगत आदर था; समाज के लिये त्याग करने की आवश्यकता भी स्पष्ट थी। समाज के लिये व्यक्ति किस सीमा तक त्याग करने के लिये तैयार है, इस पर ही बहुत कुछ समाज की रूप-रेखा आधारित होती है। यूनान में दोनों का समझौता लगातार चलता रहता था। दोनों में एक दूसरे के प्रति पवित्रता एवं आदरके भाव थे तथा दोनों ही बीच की विषमताओं को दूर करने के लिए उत्सुक थे। व्यक्ति, अपना अस्तित्व बिना नष्ट किये, समाजको अधिक से अधिक देना चाहता था। कैसे दे, यह उसकी समस्या थी। समाज व्यक्ति का अधिक से अधिक कल्याण करने के लिये व्यग्र था। व्यक्ति का कल्याण किसमें है? उसे कैसे सम्पन्न किया जाय, यह समाज की कठिनाई थी। यूनान के सम्पूर्ण समाज-शास्त्र एवं दर्शन में यही समस्यायें प्रधान दिखाई देती हैं।

जिस देश में समाज और व्यक्ति इतने उदार तल पर मिलते हैं, जहां एक के प्रति दूसरे में सहानुभूति होती है, वहां का व्यक्ति

अपने चारों ओर घर-गृहस्थीकी ऊंची दीवालें खड़ी करने की आवश्यकता नहीं अनुभव करता। उसका घरेलू जीवन एकान्तिक एवं स्वार्थ-प्रधान तथा संकुचित नहीं होने पाता। इसमें सन्देह नहीं कि कुल, वंश तथा वैयक्तिक सम्पत्ति व्यक्ति को समाज के प्रतिकूल शनैः-शनैः लिये जा रही थीं, तथा इनके द्वारा होने वाली हानि से आतंकित होकर ही, किसी समय प्लेटो ने, इनके अन्त कर देने की एक क्रान्तिकारी योजना का निर्माण किया था, तथापि यूनानी पुरुषका अधिकांश समय घर के बाहर ही व्यतीत होता था। सहभोज तथा बाजार में ही भोजन कर लेने की प्रथा इतनी अधिक प्रचलित थी कि एथेन्सवाली को इसके लिये भी घर आना आवश्यक नहीं होता था।

यूनान के कृषि-प्रधान जीवन में अवकाश का बाहुल्य था। वार्तालाप वहां के लोगों का राष्ट्रीय उद्यम था। इसका महत्व इतना असाधारण था कि इससे बढ़ कर यूनान-वासी के लिये कोई महत्वपूर्ण कार्य था ही नहीं। यदि वृक्षों के सायेदार पथ पर, वह किसी मित्र से वार्तालाप प्रारंभ कर देता, तो वहीं अन्य पथिकों का मार्ग खाली कर, एक किनारे घण्टों वाद-विवाद में संलग्न रह सकता था। एथेन्स के बाजार में जहां-तहां लोगों के छोटे-छोटे झुण्ड, किसी न किसी विषय पर, वाद-विवाद करते दिखाई देते थे। इसके अतिरिक्त नाई की दुकान, सार्वजनिक स्नानागार, भोजनालय, व्यायामशालायें तथा क्रीड़ा-क्षेत्र, सर्वत्र वार्तालाप, वार्तालाप, वार्तालाप। वार्तालाप राष्ट्र का जीवन था, राज्य की महत्तम समस्यायें वार्तालाप से हल होती थी, शासन-संचालन में वार्तालाप असाधारण शक्ति थी। प्राचीन यूनान में जन-मत की सृष्टि के लिए वार्तालाप का वही स्थान था, जो आज के जन-तंत्र में प्रेस, रेडियो तथा यूनिवर्सिटी का है। समाज में आदर पाने के लिये वक्तृता तथा तर्कशैली

सबसे बड़े सहायक थे। साफिस्ट लोग इन्हीं की शिक्षा देकर न केवल पेट पालते थे, कुछ तो श्रीमानों का जीवन बिता रहे थे। यूनान के युवक साक्रेटीज को घेरे रहते थे, उसकी विलक्षण तर्क-शैली के ही कारण। प्लेटो कृत 'रिपब्लिक' में एक स्थल पर ग्लाकन साक्रेटीज से कहता है, शतरंज के खेल की भांति उसके तर्क रूपी मोहरे चारों ओरसे विपक्षी को घेर कर लाचार कर देते हैं। निरुत्तर कर देने की शक्ति यूनान के राजनैतिक जीवन में किसी नागरिक की मूल्यवान योग्यता होती थी। प्राचीन भारत में लोग यह शक्ति प्राप्त करने के लिये इन्द्र से प्रार्थना करते थे, "हे इन्द्र, जो हम लोगों का शत्रु हो, तू उसके कथन को दबा दे। हमलोगों को अपने बलसे उत्साहित कर। विवाद में मुझे श्रेष्ठ बना।"* यूनान के नागरिकों की भी यह सबसे प्रबल कामना होती थी। इसके अभाव में सार्वजनिक जीवन की सफलता असंभव थी और सार्वजनिक जीवन ही यूनान के जीवन की सबसे अधिक बलवती प्रेरणा थी।

व्यापक वार्तालाप एवं विचार-विनिमय की इस पृष्ठ-भूमि के ही आधार पर अरिस्टाटिल को यह कहने का साहस हुआ कि बहुमत ही सच्चाई का सबसे बड़ा परीक्षक है, क्योंकि एक व्यक्ति द्वारा विचारणीय विषय के किसी पक्ष पर विचार करने से भले ही रह जाय, किन्तु जब अनेक उसी विषय पर विचार करेंगे, तो सम्पूर्ण विषय पर विचार कर लिया जायगा और विषय की जांच पूरी-पूरी हो जायगी।

प्राचीन यूनान के समाज का कोई कोना विशुद्ध वैयक्तिक नहीं कहा जा सकता। घर के अन्तरतम भाग भी सार्वजनिक भावना से आलोकित थे। यद्यपि लोगों की विवाहित स्त्रियां होती

*जायसवाल कृत 'हिंदू राज्य-तंत्र' खण्ड २ पृष्ठ १६।

थी, घरेलू जीवन की एकान्तिकता भी थी, किन्तु उसका हेतु सार्व-जनिक जीवन ही था। घरेलू जीवन की स्थापना इस रूप में की गई थी कि वह वयस्क पुरुषों को, अधिक से अधिक समय के लिये नागरिक जीवन में भाग लेने के लिए मुक्त कर सके। स्त्रियां अन्न-धन की देखभाल करतीं, दासों से खेती-किसानी का काम लेतीं, बच्चों का लालन-पालन करतीं और यथासंभव घर के वयस्क लोगों को घर की चिन्ताओं से मुक्त रखती थीं। स्पार्टा में तो ग्रहस्थ जीवन पर समाज एवं शासन का कठोर नियंत्रण था। यहां तक कि अनुपयुक्त एवं निर्बल बालकों को माताओं के ही हाथों प्राण खोना पड़ते थे।† क्योंकि स्पार्टा, 'नियोजित समाज' का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। राज्य का नियंत्रण जैसा वहां के वैयक्तिक जीवन पर था, यूनान के किसी नगर-राज्य में नहीं था। जन्म से आमरण, राजकीय कठोर नियंत्रण में व्यक्ति को अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता था। एथेंस से भिन्न, स्पार्टा में सहयोग की प्रणाली प्रचलित थी। इसका प्रबंध राज्य की ओर से होता था तथा इसके लिये प्रत्येक नागरिक अपनी उपज का बड़ा अंश सार्वजनिक भोजनालय के लिये, राज्य को अर्पित कर देता था। दाम्पत्य सम्बंध तथा प्रजनन पर राज्य का नियंत्रण रहता था। शिक्षा भी आदि से अन्त तक कठोर नियमों से बंधी थी। इस प्रकार स्पार्टा में तो राज्य एवं समाज के नाम पर वैयक्तिक अधिकारों का पूर्णरूपेण बलिदान कर दिया गया था।

†स्पार्टा में माता अपने बालक को जन्म के उपरान्त किसी जलाशय के निकट ले जाती और एक बड़ा पत्थर जलाशय में फेंक कर घोर ध्वनि उत्पन्न की जाती। चौंक पड़ने वाले बालक डरपोंक समझे जाते और उनका बधकर दिया जाता था। उद्देश्य यह था कि राज्य में कोई कायर तथा निर्बल न रहे।

स्पार्टा से भिन्न एथेन्स की जीवन-प्रणाली में उदारता थी। व्यक्ति पर शासन का कठोर नियंत्रण नहीं था। व्यक्ति अत्यन्त उन्मुक्त वातावरण में सोचता और विचार प्रगट करता था। प्लेटो की क्रान्तिकारी रचनाएं एथेंस में ही बैठ कर लिखी गईं। साक्रेटीज़ वहीं घूम-घूम कर अपने तर्क से सुदृढ़ धारणाओं को उखाड़ फेंकने में लगा था। लेकिन दोनों ही दार्शनिक उस उदारता की अपेक्षा स्पार्टा के नियंत्रण से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं।* एथेंस का व्यक्ति अपने राज्य की राजनीति में इतना सक्रिय एवं प्रभावशाली था कि वह चुप रह ही नहीं सकता था। उसके प्रत्येक कथन, उसके प्रत्येक व्यवहार से राज्य पर प्रभाव पड़ता था। इसी से विचारकी प्रधानता उसके जीवन की विशेषता थी। अवश्य ही इसका प्रभाव उद्यम तथा आर्थिक दशा पर बिना पड़े नहीं रह सकता था; किंतु जीवन की उत्तमता के लिए केवल आर्थिक साधन ही सर्वस्व नहीं होते। नगर के राजनैतिक जीवन में भाग लेना परम आवश्यक समझा जाता, और इसके लिये कभी-कभी दरिद्रता भी वरण की जाती थी। साक्रेटीज स्वयं अत्यंत निर्धन था, और इच्छापूर्वक था। डेल्फी के देवता ने उसे दार्शनिक बनने का आदेश दिया था। व्यक्ति धनोपार्जनके लिये उतना ही उद्योग करता था, जितने से उसके आध्यात्मिक तथा राजनैतिक जीवन में बाधा न पड़े।

प्रचुर सामाजिक भावना रहते हुए भी यूनानी व्यक्ति ने अपने

*'जनतंत्र सभी ऐसे (श्रेष्ठ) गुणों को पैरों तले रौंद डालता है ....किसी भी ऐसे व्यक्ति को यह सम्मानित कर सकता है, जो अपने को जनता का मित्र केवल घोषित ही करता रहे' प्रो० कार्नफोर्ड द्वारा अंग्रेजीमें अनूदित 'रिपब्लिक' के अध्याय ३१. पृष्ठ २७७ से।

को समाज में खो जाने नहीं दिया। उसके पास कुछ अपना था जिससे वह समाज एवं राज्य की सेवा करना चाहता था। वह अपना सब कुछ समाज के लिये उत्सर्ग करना चाहता था, किसी तानाशाह के भय से नहीं, बल्कि प्रेरक भावना उसकी अपनी थी, अन्तःकरण से उद्भूत। उसे अपने जीवन की सार्थकता समाज के ही साथ प्रतीत होती थी, उसका विचार था कि मनुष्य, पशु-वर्ग से श्रेष्ठ होने के लिए, समाज में रहे। समाज शिक्षक है, सामाजिक जीवन विकास का पथ है। इसलिये अपने नगर-राज्यकी विशिष्ट सामाजिक एवं राजनैतिक प्रणाली के योग-क्षेम के लिए वह सदैव प्रयत्नवान रहता था।

प्रमुख शासन-प्रणालियां

ई० पू० सातवीं शताब्दी से यूनान जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। उद्योग-व्यवसाय की सहसा वृद्धि ने उन स्थानों को, जो गमनागमन के सुलभ साधनों से निकट थे, अत्यधिक महत्व दे दिया और कारीगर तथा व्यापारियों का वर्ग उन जगहों पर ज्यों-ज्यों एकत्र होनेलगा श्री-समृद्धि के साथ विविध दिशाओं में सामाजिक विकास गतिमान हो उठा। पशु-चारी एवं कृषि-प्रधान समाज की व्यवस्था-प्रणाली इन नवांकुर नागरी बस्तियों के लिये अपर्याप्त सिद्ध हुई। यद्यपि समाज की नई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रथक्-प्रथक् नगर-राज्यों में विविध प्रकार के उपाय अपनाये गये, तथापि वह परिवर्त्तन-क्रम, जिसे यूनान के दार्शनिकों ने स्वीकार किया, अधिकांश नगर-राज्यों के इतिहास पर ही आधारित था। अर्थात्, प्रायः सभी में, न्यूनाधिक वेग से, राज-तंत्र के बाद कुलीन-तंत्र, और तत्पश्चात जन-तंत्र की तरंगे आईं; तथा उनके अनुकूल सभी को कुछ-न-कुछ परिवर्तन करना पड़ा। पुस्तक की सीमाओं के विचार से, केवल स्पार्टा तथा एथेंस की शासन-प्रणालियां प्रस्तुत की जा रही हैं, जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा प्रतिनिधि समझी जाती हैं।

१. स्पार्टा का कुलीन-तंत्र

स्पार्टा का नगर-राज्य पांच गांवों के मिलने से बना था। इनकी केन्द्रीय, धनी, नागरी बस्ती स्पार्टा नाम से प्रसिद्ध थी; शेष निवासी इसके आधीन थे। स्पार्टा का शासक-वर्ग अत्यधिक रूढ़िवादी था। यही कारण था कि वहां, जन-शक्ति के उदय होने पर भी, राज-पद विलीन नहीं हुआ; केवल दो राजाओं की स्थापना करके तथा अन्य उपायों से नियंत्रित कर दिया गया था।

स्पार्टा में दो राजाओं का शासन था। अनुमान किया जाता है कि दो जन-जातियों के संघ बनने के परिणामस्वरूप द्विराज परम्परा चली। यद्यपि आरंभ में, दोनों जन-जातियोंके राजा समान अधिकार से शासन करते होंगे; किन्तु आगे चलकर उनमें से एक क्षीण-प्रभाव हो चला होगा। यूनान में राज-पद जब लुप्त होने लगा, उस समय स्पार्टा में द्विराज-प्रथा ने ही राज-पद की रक्षा की। दो होने के कारण, कोई भी, असीमित सत्ता प्राप्त कर, निरंकुश नहीं हो सका। राजाओं को शासन करने, न्याय करने तथा पुरोहिती के काम में स्वल्प अधिकार प्राप्त थे। सेना के प्रधान वे अवश्य होते थे, किन्तु दो में से कौन, किस युद्धमें सैन्य-संचालन करे, यह निर्णय जनता द्वारा किया जाता था। किसी राजा की मृत्यु पर, ज्येष्ठ पुत्र पिता का स्थान ग्रहण करता था।

वयोवृद्ध एवं कुलीन जनों की सभा को 'गेरूशिया' कहते थे। इसके सदस्यों में, दो राजाओं के अतिरिक्त, सब साठ वर्ष से अधिक उम्र के होते थे। कुल संख्या तीस थी। सभी आजीवन-सदस्य होते थे। निर्वाचन जन-सभा के बहुमत पर आधारित था। इस सभा की सदस्यता, जीवन के बड़े भाग तक सदाचार का अभ्यास करते रहने का 'पुरस्कार' मानी जाती थी। केवल वही निर्वाचित होते थे, जिनके सदाचार का यश जनता में फैल चुकता था।

वृद्ध-सभा के सदस्यों का निर्वाचन यद्यपि जनता द्वारा किया जाता था;

किन्तु केवल कुछ, खास कुलीनवंश के लोग ही, निर्वाचित हो सकते थे। इस प्रकार स्पार्टा में जन्म-सिद्ध कुलीनता की रक्षा की गई थी।

अपेला स्पार्टा की जनसभा थी। प्रत्येक नागरिक, तीस वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर, इस सभा का सदस्य हो जाता था। यह सभा, सैद्धान्तिक दृष्टि से, शासन-सत्ता का स्रोत थी तथा सार्वभौम थी। इसे अधिकार था गेरूशिया के सदस्यों का निर्वाचन करे, राज-नियंत्रकों अर्थात् एफरों का निर्वाचन करे, संधि तथा युद्ध की घोषणा करे। इस प्रकार, स्पार्टा में, जन-मत को प्रगट रूप से सर्वोपरि स्थान मिला था। किंतु व्यवहारिक तथ्य यह था कि जन-सभा के निर्णय सार्थक उसी समय समझे जाते थे, जब उच्च पदाधिकारी एवं वृद्धजन उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते थे।

स्पार्टा के शासन में, एफर-पद एक विशेषता एवं विचित्रता थी। यह तो विदित नहीं कि इस पद की स्थापना कब हुई, किंतु इसके अधिकारों से पता चलता है कि यह, जन-हित की रक्षाके लिये, राजाओं तथा कुलीनों पर नियंत्रण करने के लिये, बनाये गये थे। पांच एफर होते थे और प्रत्येक एक-एक गांव का उत्तरदायी होता था। युद्ध-काल में दो एफर राजा के साथ रहते थे। वे राजा के आचरण पर आक्षेप कर सकते थे। एफर सभा के संमुख प्रस्तुत होने का उसे आदेश भी दे सकते थे। जिस प्रकार वृद्ध-सभा फौजदारी की सबसे बड़ी अदालत थी, वैसे ही एफर-सभा दीवानी मुकदमों के लिये। स्पार्टा में कठोर अनुशासन एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिये यही उत्तरदायी थी। जब एफ़र अपना पद ग्रहण करते तो समस्त प्रजा को आदेश दिया जाता था कि 'ऊपरी ओठ मुंडवा कर नियमों का पालन करें'।

एफरों के सम्बन्ध में सबसे रोचक बात यह है कि वे प्रतिमास राजाओं को शपथ ग्रहण कराते थे कि राजा अपना कर्त्तव्य करने में देशके कानून का उल्लंघन नहीं करेंगे। बदले में स्वयं भी वचन देते थे, राज-पद की रक्षा करने का, जब तक राजा अपनी शपथ के विरुद्ध आचरण न करे। इस

शपथ के पीछे राजा तथा जन-वर्ग के बीच घोर-संघर्ष की घटना छिपी है, जिसमें एफर जन-हित के प्रतिनिधि बने होंगे।

स्पार्टा के विधान ने यूनान के समस्त राजनैतिक उत्थान-पतन में अक्षुण्ण रहने का सफल प्रयास किया। यह अनुपम विशेषता थी कि अपने स्वरूप में यत्र-तत्र परिवर्तन करके, उसने समय टाला और अपनी परम्परायें नष्ट नहीं होने दी। 'जिस समय राज-वंश को नष्ट कर कुलीन-तंत्र आना चाहिये था, उसने राज-सत्ता कम कर दी, किन्तु राजपद को कुलीन-तंत्र का अंग बनाकर जीवित रखा। जिस समय जन-तंत्र की लहर आई, अवश्य ही जनता को उसने बहुत-सी शक्ति सौंप दी; किन्तु राज-पद तथा वृद्ध-सभा को भी नष्ट नहीं होने दिया।'

स्पार्टा के अत्यन्त सुगठित विधान को देखकर उसका किसी एक राज्य-नेता द्वारा निर्मित होना असंभव नहीं। स्पार्टा के लोगों का विश्वास था कि लाइकरगस नामक किसी शासक ने स्पार्टा को यह विधान दिया था, और उसका समय नवीं शताब्दी का प्रारंभ-काल अनुमान किया जाता है। एक मत से, लाइकरगस नामका कोई व्यक्ति था ही नहीं। पिन्डार के अनुसार स्पार्टा के विधान-निर्माण का श्रेय किसी एगिमियस को मिलना चाहिये। अस्तु, यह हमारे लिये इतना महत्व नहीं रखता कि विधान बनाने वाला कौन था। महत्व की बात यह है कि स्पार्टा का विधान इतना सुगठित था कि उसे एक ही व्यक्ति द्वारा निर्मित कहा जा सका।

२. एथेंस का जन-तंत्र

स्पार्टा की भांति एथेंस का राज्य भी कई छोटे-बड़े उपनगरों से मिल कर बना था और एथेंस उनमें सबसे अधिक प्रभावशाली तथा समृद्ध था। एथेंस का अपने उपनगरों के साथ संबंध, स्पार्टा की तरह, शासक-शासित-संबंध नहीं था; बल्कि सम्पूर्ण एटिका के निवासी एथेंस के नागरिक थे। एटिका के किसी भाग में रहने वाला एथेंस को अपना नगर मानता था। यूनान के अन्य नगर-राज्यों की भांति यहां भी, प्रारंभ में, राज-तंत्र

ही था; जो क्रमशः कुलीन-तन्त्र से जन-तंत्र में परिवर्तित हुआ। यहां का जन-तंत्र सर्वाधिक पूर्ण था, जिसने अपने पूर्वगामी शासन-तंत्रों को यथा-संभव निर्मूल करके ही छोड़ा। किंतु कुलीन-तंत्र तथा जन-तंत्र के बीच संघर्ष का परिणाम इतना स्पष्ट तथा निर्णीत न हो सका, जैसा कि राज-तंत्र को नष्ट करने के उपरान्त, असंदिग्ध स्थिति प्राप्त की जा सकी थी।

एथेन्स नगर के समस्त पुरुष नागरिक, जो बीस वर्ष की वयस प्राप्त कर चुकते 'इक्लेशिया' नाम की विशाल जन-सभा के सदस्य हो सकते थे। 'इक्लेशिया' नगर-राज्य की राज-सत्ता का मूलाधार तथा स्रोत थी। वर्ष में, कम से कम, दस बार इसकी बैठक होना आवश्यक था। आपत्ति काल में विशेष बैठकें भी बुलाई जा सकती थीं। कहने की आवश्यकता नहीं, इतनी बड़ी सभा के लिये, जिसमें राज्य के सभी वयस्क नागरिक सम्मि-लित हो सकें, सभा-भवन का निर्माण करना उस समय की वास्तु-विद्या के लिये असंभव ही था। सभा-भवन की विशेष आवश्यकता भी नहीं थी; क्योंकि समशीतोष्ण वातावरण तथा स्वच्छ आकाश के नीचे एकत्र होने की सुविधा उन लोगों को प्रकृति ने ही दे रक्खी थी।

यद्यपि जन-सभा का उद्देश्य तो यही था कि वह देश के गंभीरतम मसलों पर प्रभुसत्ता का व्यवहार करती हुई अपना मत स्थिर करे; किन्तु इस कार्य के सम्पन्न करने में उसकी विशालता ही बाधक थी।

विशालता के कारण, न तो उसमें विशेष उपयोगी तथा विचारपूर्ण वाद-विवाद ही हो सकता था, और न राज-काज के विवरणों को इतनी बड़ी संख्या भलीभांति समझकर, मत स्थिर कर सकती थी। इसलिए, सुचारू रूपसे कार्य चलाने के लिये, एक परिषद का निर्वाचन तथा स्थापन इस सभा के द्वारा किया जाता था। इस परिषद के माध्यम से, एथेन्स के नागरिक, कार्यकारिणी तथा राज्य के कर्मचारियों पर, अपना नियंत्रण रखते थे। इसके सदस्यों की संख्या पांच सौ होती थी।

पंचशती-परिषद के निर्माण में यद्यपि प्रतिनिध्यात्मक सिद्धान्त

मान लिया गया था, तथापि वह आधुनिक विधि से व्यवहार में नहीं आता था। एथेन्स के निवासी एक सौ उपनगरों (डेमियों) में विभक्त थे। स्थानीय शासन की इकाई भी यही उपनगर थे। प्रत्येक नागरिक अपनी डेमीका सदस्य होता था। इसकी सदस्यता के मार्फत ही, उसे नगर-राज की नागरिकता मिलती थी। एथेन्स के नागरिक माता-पिता के वैध सम्बन्ध से उत्पन्न व्यक्ति का नाम, उपनगर के राज्य-कार्यालय में, रजिस्टर पर लिख लिया जाता था। यह नागरिकता, उस व्यक्ति के जीवनपर्यन्त बनी रहती थी, तथा निवास-स्थान बदल देने से इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इसलिये कहा जा सकता है कि नगर-राज्य का उपनगरों में विभाजन, भौगोलिक के साथ-साथ, वंशानुगत भी था; एवं परिषद में प्रतिनिधित्व विशुद्ध भौगोलिक न होकर प्रतिनिधित्व भी वंशानुगत था।

प्रत्येक उपनगर, जनसंख्या के अनुपात में, अपना प्रतिनिधि-समूह, जन-मत के द्वारा चुन लेता था। इस समूह में से केवल उतनी संख्या, जिसे परिषद में भाग लेना था, पांसा (गोट) फेंक कर छांट ली जाती थी। यूनान-वासियों की धारणा थी कि जन-तंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की समानता को व्यवहारिक रूप देने के लिये, मतदान के साथ, पांसा फेंकने की प्रणाली भी आवश्यक है। मतदान में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुद्धि का प्रयोग करने का अवसर, समान रूप से, मिल जाता है तथा पांसा फेंकने में सबके लिये अवसर तथा योग्यता की समानता स्वीकार की जाती है। यह प्रणाली, किसी पद के लिये, सब उम्मीदवारों को योग्य मानकर चलती है।

अधिक से अधिक लोग राजनीति में अधिक से अधिक भाग ले सकें, इसके लिये ये उपाय भी किये गये थे: एक तो, परिषद के सदस्यों का कार्य-काल छोटा रक्खा गया, दूसरे पुनर्निर्वाचन अवैध कर दिया गया। इसके अतिरिक्त शासन तथा व्यवस्था के लिए, क्षेत्रीय एवं

केन्द्रीय अनुशासक (मैजिस्ट्रेट) न नियुक्त कर, अनेकात्मक अनुशासिकायें (मैजिस्ट्रेसीज़) स्थापित की गयीं थीं। इनमें दस-दस सदस्य रहते थे। इसी प्रकार न्यायालयों में भी एक, दो या चार न्यायाधीश नहीं होते थे। इनकी संख्या सैकड़ों में होती थी, जिन्हें जूरी या न्याय-परिषद कहा जा सकता है।

एथेन्स के नगर-राज्य के शासन-तंत्र के दो ही प्रधान अंग थे: पंचशती परिषद तथा जन-मत द्वारा निर्वाचित जूरियां या न्याय-परिषदें। पंचशती परिषद के समान परिषदें, यूनान के सभी नगर-राज्यों की शासन-प्रणाली का किसी न किसी प्रकार का अंग होती थीं। परन्तु कुलीनवादी राज्यों में वे इतनी विस्तृत जनमत-मूलक नहीं होती थी। स्पार्टा में, राज्य के कुलीन तथा वयोवृद्ध लोग परिषद के आजीवन सदस्य होते थे। वह परिषद अपेला या जन-सभा के प्रति उत्तरदायी भी नहीं होती थी। इसी प्रकार एरोपेगस की परिषद भी कुलीनात्मक थी, किन्तु वहां के उदीयमान जन-तंत्र के आगे वह बहुत कुछ क्षीण-शक्ति हो चुकी थी।

एथेन्स की पंचशती-परिषद व्यापक जनमत-मूलक तथा इक्लेशिया अर्थात् जन-सभा के प्रति उत्तरदायी थी। किन्तु कार्य-संचालन में पांच सौ की संख्या भी असुविधाजनक होने के कारण, एक उपाय निकाला गया : दस उपनगर, जिनमें एथेन्सवासी विभक्त थे, उन्हीं में से प्रत्येक के पचास प्रतिनिधि, जो परिषद के सदस्य होते थे, एक वर्ष के लिये कार्य-संचालन करते थे। परिषद के शेष सदस्य, अर्थात् शेष नौ उपनगरों के प्रतिनिधि, क्रमशः एक-एक वर्ष तक कार्य-संचालन करते थे। इस प्रकार, दस वर्ष में प्रत्येक उपनगर के प्रतिनिधियों को राज्य करने का अवसर मिल जाता था। जिस समय एक उपनगर के प्रतिनिधि कार्य करते थे, अपनी समिति में शेष उपनगरों से एक-एक प्रतिनिधि उन्हें सम्मिलित करना पड़ता था। इस समिति की हर बैठक के लिये एक नया सभापति पांसा फेंक कर चुना जाता था। सभापति के आसन पर बैठने का गौरव,

किसी एथेन्सवासी को जीवन में एक दिन के लिए, एक बार से अधिक नहीं मिलता था। यह समिति परिषद में प्रस्तुत करने के लिये प्रस्तावों के प्रारूप (मसविदे) बनाती थी, जनमत प्राप्त करने के लिए जिन्हें परिषद जन-सभा (इक्लेशिया) में प्रस्तुत करती। प्रायः जन-सभा में प्रस्तावों के पहुंचने से पहले, जनता उनसे परिचित हो जाया करती थी और आपस के वाद-विवाद से एक मत भी अपने लिये निश्चित कर लेती थी; यह कार्य नगर के हाट-बाट, व्यायाम शालाओं तथा अन्य सार्वजनिक स्थलों पर होता था। इससे जन-सभा में ज्यादा बहस की आवश्यकता नहीं रह जाती थी।

जन-सभा के द्वारा नियमों को स्वीकृत कराने के अतिरिक्त पंचशती परिषद नगर-राज्य की सरकार के लिए कार्यकारिणी के रूप में भी थी। विदेशी राजदूतों को अपनी बात इसी परिषद के माध्यम से जन-सभा तक पहुंचानी होती थी। अनुशासिका-परिषदों पर भी इसका नियंत्रण रहता था। इसे अपराधियों को, कारावासादि के साधारण दण्डों के अतिरिक्त, मृत्यु-दण्ड देने का भी अधिकार था। उस समय, यह उच्च न्याय-परिषद के रूप में कार्य करती थी। राजकोष तथा नौ-सेना का पूर्ण रूप से नियंत्रण इसके द्वारा होता था। अनेक छोटे-बड़े कर्मचारी इसकी आधीनता में काम करते थे।

परन्तु कुछ ऐसे उच्च पदाधिकारी भी एथेन्स के शासन में थे, जो अपने कार्य में बहुत कुछ स्वतन्त्र होते थे, तथा अवसर पाकर शासन की पूरी बागडोर हस्तगत कर लेते थे। यह लोग गोट फेंककर चुने जाने की अंधी प्रथा से मुक्त थे। यह, समूचे राज्य के नागरिकों के बहुमत से निर्वाचित, दस सेना-नायक (आर्कन) होते थे, जिनके लिये पुनर्निर्वाचन भी वैध था। नियमानुसार यह सेना-नायक केवल सैनिक विषयों से ही सम्बन्ध रख सकते थे; किन्तु सरलता से ही वैदेशिक नीति को यह लोग अपने नियंत्रण में कर लेते थे। आन्तरिक मामलों में भी इनका प्रभाव कम नहीं पड़ता

था। जन-सभा तथा पंचशती परिषद के निर्णय इनके प्रभाव से मुक्त नहीं होते थे। सेना-नायक के ही पद से पेरिकिल्स ने अनेक वर्षों तक एथेन्स की राजनीति का संचालन किया था।

पंचशती-परिषद की शक्तियां अत्यन्त व्यापक होते हुए भी, वे जन-सभा की सार्वभौम सत्ता के आधीन थीं। परिषद के द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्तावों को स्वीकार करना, अस्वीकार करना अथवा संशोधन करना जन-सभा के अधिकार में था। युद्ध, संधि अथवा कर लागू करने के लिये इसकी स्वीकृति अनिवार्य थी। फिर भी, परिषद केवल मसविदा बनाने के लिये नहीं थी। शान्त एवं समृद्ध काल में राज्य-संचालन में वह जन-सभा के नियंत्रण से बहुत-कुछ मुक्त रहती थी।

न्याय-परिषदें एथेन्स की सरकार का महत्वपूर्ण अंग थीं। जनतंत्रात्मकता को बनाये रखने में तथा उसकी सफलता में उन्हें बड़ा श्रेय प्राप्त था। वैसा महत्व कदाचित आज किसी देश की सरकार में न्याय-विभाग को नहीं प्राप्त है। किसी फौजदारी या माल के मुकदमे का निर्णय करने के अतिरिक्त, सरकार की व्यवस्थापिका तथा कार्यकारिणी के रूप में भी, वे बहुत-सा काम करती थीं। उन्हें अधिकार था कि परिषद द्वारा प्रचलित किसी कानून को वे अनुपयुक्त घोषित कर दें। उनका मान-दण्ड राज्य के परम्परागत कानून होते थे। वे, एक प्रकार से, परम्पराकी संरक्षिणी थीं। अतएव, कभी-कभी अपराधियों की ही भांति, राज्य के कानूनों पर भी विचार करतीं और अपना फैसला देती थीं, स्वीकृति के रूप में, अथवा संशोधन या रद्द कर देने के लिये तक! उन्हें यह भी अधिकार था कि जिन व्यक्तियों को राज्य-सेवा में भर्त्ती करने के लिये चुना गया है, उन्हें अनुपयुक्त घोषित कर दें। इसके अतिरिक्त, कार्य-काल के बाद प्रत्येक राज्य-कर्मचारी के कामों का पर्यालोचन करने का इन्हें अधिकार था। इन दो प्रकार से एथेन्स की न्याय-परिषदें कार्यकारिणी पर अपना अंकुश रखती थीं। इसके लिये उनके पास एक तीसरा साधन और था। किसी अनु-

शासक द्वारा व्यय किये गये धन के हिसाब-किताब की जांच करके भी वे जन-हित की रक्षा करती, तथा कार्यकारिणी को अत्याचार एवं निरंकुशता से प्रतिबाधित करती रहती थीं।

न्याय-परिषदों को इतनी व्यापक शक्तियां देने का कारण यह था कि वे अपना कार्य समस्त जनता के नाम से करती थीं। उनके फैसलों की इसीलिये कहीं अपील भी नहीं हो सकती थी। वे किसी व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड दे सकती थीं; किसी कानून को रद्द कर सकती थीं; कारण यह था कि वे जन-सभा का ही प्रतिरूप थीं। प्रत्येक उपनगर, अपने-अपने क्षेत्र से कुछ न्यायाधीश निर्वाचित करके भेजता था, इस प्रकार कुल संख्या लगभग छः हजार हो जाया करती थी। किसी मामले के लिये इन्हीं में से कुछ लोग, पांसा फेंक कर, चुन लिये जाते थे। तथा जिस उपनगर का मुकदमा होता था उसके कुछ सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी। किसी भी न्याय-परिषद में २०१ से कम न्यायाधीश नहीं होते थे। प्रायः यह संख्या ५०१ तक हो जाती थी। फैसला साधारण बहुमत से किया जाता था।

कानून

यूनान में कानून को परम्परागत एवं अपरिवर्त्तनीय माना जाता था। जन-सभा तथा परिषद वस्तुतः कानून बनाने वाली संस्थाएं नहीं थीं। वे उसके अर्थ अथवा तात्पर्य का निर्णय करती थीं। प्राचीन यूनान का कानून बहुत व्यापक था और जीवन के सभी पहलुओं पर उसका आधिपत्य था। व्यक्ति और समाज के एकीकरण में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिये कोई प्रथक क्षेत्र नहीं रह जाता था। समस्त जन-समूह के अव्यक्त मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप का व्यक्त आकार कानून होता था। जीवन के समस्त मान-दण्डों का उसमें समावेश रहता था। इसीलिए विधान के लिखित पत्रों में वह परिसीमित नहीं किया जा सकता था। वह प्रत्येक नागरिक के हृदय-पटल पर अंकित तथा रक्त में प्रवाहित

स्वभाव था । एक दिशा विशेष में सोचने, भावना करने तथा कार्य करने की प्रेरणा देने वाला कानून ही था ।

आधुनिक राज्यों में कानून अल्पकालीन आवश्यकता पूरी करने के लिए बनाये जाते हैं तथा हर समय उन पर जनमत का छुरा लटकता रहता है । आज जन मत प्रधान है, कानून नहीं । प्राचीन यूनान में कानून प्रधान था, जनमत उसे समझने का यत्न करता था । वे उसे परिवर्तित नहीं करते थे, नवीन परिस्थितियों में उसे बैठाते थे । अरिस्टाटिल कहता था, 'कानून की शक्ति समाज का स्वभाव तथा अभ्यास है।' बार-बार बदलने से उसे यह शक्ति नहीं मिलती और कानून दुर्बल हो जाता है । अतएव जन-सभा, पंचशती परिषद तथा न्याय-परिषदों की यह स्थाई चिन्ता थी कि कहीं उनके निर्णय अवैध अर्थात् 'परम्परा'के विरुद्ध न हो जांय ।

समस्त जनता कानून को ही पूर्ण सत्तायुक्त मानती थी । केवल प्लेटो ने एक प्रथक मार्ग अपनाया था । पर कदाचित उसने भी कानून का महत्व कम नहीं करना चाहा । केवल उसे अधिक संगत रूप देने का प्रयत्न किया । 'क्राइटो' तथा 'लाज़' नामक ग्रंथों में तो उसने स्पष्ट ही कानून की प्रभुता स्वीकार कर ली, और वह भी अत्यन्त प्रचलित रूप में । किन्तु 'रिपब्लिक' तथा 'पालिटिकस' में वह दार्शनिक शासक को सर्व-प्रधान मानता है । यहां प्लेटो को समझने में तभी न्याय हो सकता है, जब यह न भूला जाय कि दार्शनिक-शासक यूनान के परम्परागत नियमों, प्रचलनों, विश्वासों तथा धारणाओं का एक साथ सजीव रूप होगा और उसे ऐसा बनानेवाली शिक्षा होगी । शिक्षा के द्वारा यूनान का कानून सजीव रूप में प्रस्तुत हो सकेगा । अतएव उसके निर्णयों को मानने में किसी प्रकार परम्परागत कानून की अवहेलना नहीं समझनी चाहिये, क्योंकि, कदाचित वह अपनी शिक्षा तथा प्रतिभाके कारण अन्य सब लोगों से अच्छा अर्थ देश के कानून को लगा सकता, और यही तो जन-सभा

तथा परिषदें भी करती थीं। इसलिये तात्विक दृष्टि से, प्लेटो ने यूनान की परम्परा का परित्याग नहीं किया।

शिक्षा

यूनान में कानून का आस्तित्व शिक्षा पर ही टिका था। वह लिख-कर प्रचलित करने अथवा घोषित करने की वस्तु नहीं थी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिक्षा तथा अभ्यास के द्वारा वह जीवित था। कानून की आत्मा ग्रहण करने का कार्य अत्यन्त लगन और धैर्य का काम था। प्लेटो पूर्ण शिक्षित नागरिकों को अपने देश में न पाकर दुखी था। इसीलिये उसने शिक्षा की एक विस्तृत योजना बनाई थी। उसकी दृष्टि में, यूनान का सुप्रसिद्ध नायक पेरिकिल्स भी आदर्श से बहुत न्यून था। उसका विश्वास था कि उसकी विधि से शिक्षित व्यक्ति कानून का मूल-तत्व ग्रहण कर सकेगा और वह राज्य का सर्वतंत्र-मुक्त दार्शनिक शासक होगा।

यूनान के समस्त सामाजिक एवं नागरिक जीवन का ध्येय शिक्षा थी। वृद्ध पीढ़ी, समाज तथा राज्य के नियमानुसार जीवन को नियंत्रित करती थी; साथ ही साथ नवीन पीढ़ी को शिक्षा देती थी। इस तरह समाज का जीवन अक्षुण्णरूप से चलता रहता था। राज्य एक राजनीतिक संगठन से अधिक शिक्षा-संगठन था। यूनान-निवासियों की दृष्टि में नगर-राज्यों का महत्व इसी आधार पर था। इनके द्वारा ही समाज की मान्यतायें व्यक्ति को प्राप्त होती थीं। राज्य की व्यवस्था से ही व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के हिसाब से काम करने का अवसर तथा विकास करने का अवसर मिलता था। नागरिक जीवन यूनान के व्यक्ति के लिये शिक्षा एवं साधना का विषय था।

धर्म

यूनान का सामाजिक दर्शन समझने के लिये यह जान लेना परमावश्यक है कि वहां धर्म, एकान्तिक साधना एवं वैयक्तिक उत्थान का मार्ग नहीं था। वह सामाजिक विषय था, जिसमें जन-समुदाय समवेत रूप से भाग लेता

था। दूसरी बात यह कि समाज के सभी महत्वपूर्ण कार्य धार्मिक भावना से किये जाते थे। उनका रूप भी धार्मिक होता था। राजनीति को भी धार्मिक भावना से ओत-प्रोत ही जानना चाहिये। नगरों की स्थापना से लेकर युद्ध-प्रस्थान तक में धार्मिक छाप थी। किसी उपनिवेश के बसाने के लिये, मातृभूमि से अग्नि ले जाकर स्थापित की जाती थी। नगरों के नाश को बहुधा किसी देवता के क्रोध का परिणाम माना जाता था। जिससे कभी-कभी बलिदान आदि द्वारा बचाव भी किया जा सकता था।

यूनान के प्रागैतिहासिक धर्म और देवताओं में पूर्व की भांति रहस्य और गूढ़ता नहीं मिलती। अपने बीच, समाज में पाये जाने वाले सत्ता एवं अनुशासन के स्वरूप का ही प्रसार, प्रकृति के क्षेत्र में कल्पना कर लेने से, देवताओं एवं धार्मिक कृत्यों की सृष्टि हुई। लायटन स्ट्राशी ने प्रकृति में शक्ति और सौंदर्य के दर्शन किये। मनुष्य को पहले प्रकृति की शक्ति ही प्रभावित करती है और धर्म के प्रारंभिक रूप में शक्ति की पूजा अधिकांशतः होती है। उस अवस्था में देवता शीलरहित एवं शक्तिसंपन्न होते हैं। यूनान के देवता मनुष्य-रूप में थे, पर भलेमानुस नहीं थे। उनकी शारीरिक यष्टि में यदि पशुओं के अंग मिश्रित थें, तो इसलिये कि पशुओं में भी अपने स्वभाव का आरोप मनुष्य कर लेता है, यथा हंस में विवेक का, सिंह में पौरुष का। मनुष्यों की तरह, ओलम्पिया के पर्वत पर उनका एक अपना नगर था। समाज का रूप प्रायः वैसा ही था, जैसा यूनान वासियों का था, अथवा जिसे आदर्श मानकर यूनानियों ने अपने देव-समाज पर आरोपित कर दिया था! मनुष्य तो अपनी दशा से संतुष्ट नहीं होता। अतएव जहां यूनानियों के वांछित स्वरूप में जन एवं समाज हो सकते थे, वह ओलम्पिया-देव-लोक था। गिलबर्ट मरे† के कथनानुसार ओलम्पिया के देवता जगत-सृष्टा नहीं थे।

† गिलबर्ट मरेकृत 'फाइव स्टेजेज़ आव ग्रीक रेलिजन' पृष्ठ ६७।

वे मनुष्यों की ही भांति प्रदेशों के विजेता थे। वे अपनी आवश्यकताओं एवं सुख-साधनों के लिये श्रम भी नहीं करते थे। क्यों करते श्रम ? उनके हाथ में वज्रादि भयानक अस्त्र थे, जिनसे त्रस्त कर वे मनुष्यों की पूजा पा सकते थे। उनमें तथा क्रूर अधिनायक में कोई अन्तर न था ? उसी की भांति वे हंसते, खिल-खिलाते, खाते-पीते और उन्मत्त हो जाते थे। उनकी पूजा में एवं धार्मिक कृत्यों में लोग उसी प्रकार भयान्वित होकर, गिड़गिड़ाते और रिझाते थे, जिस प्रकार किसी अधिनायक की शरण में उसका दास करता है। देवताओं के हृदय पर मनुष्य के आचरण का वैसा ही प्रभाव पड़ता, जैसा मानव-समाज के किसी मानवीय शासक पर। उसी प्रकार रुष्ट होना, उसी प्रकार प्रसन्न हो जाना। उस समय यूनान का देव-समाज रहस्य-शून्य मानव-जीवन का प्रति रूप था और उसमें मनुष्यों की ही भांति हस्तक्षेप करता माना जाता था।

ई० पू० छठी शताब्दी में यूनान दो प्रबल बौद्धिक एवं आध्यात्मिक धाराओं के ऐसे वात्याचक्र में पड़ गया, जिसका परिणाम, केवल यूनान का नहीं, सम्पूर्ण योरोप का भविष्य, अपने गर्भ में धारण किये था। एक ओर प्राचीन डायनीशस धर्म अपने नवीन आरफ्यूसी रूप में जनसाधारण के साथ-साथ दार्शनिकों को भी रहस्यमय विश्वासों एवं धारणाओं की ओर आकृष्ट कर रहा था, दूसरी ओर आयोनिया से उद्भूत तर्क-बुद्धि यथार्थवाद की ओर खींचने में लगी थी। इस दूसरे प्रवाह के अग्रदूत, अनेक्सीमैण्डर और हिरेक्लाइटस ही सफल हुए तथा अरिस्टाटिल के रूप में पाश्चात्य सभ्यता का जन्म-दाता उत्पन्न हुआ। पाश्चात्य इतिहास-कारों का यह भय सर्वथा उचित ही है कि यदि आरफ्यूसी परम्परा इस संघर्ष में विजयी होती, तो अवश्य ही यूरोपीय सभ्यता एवं प्राच्य जीवन में कोई अन्तर न होता। किंतु प्राचीन यूनान के यथार्थवाद एवं भौतिकवाद द्वारा स्थापित पाश्चात्य दृष्टिकोण एवं पूर्व-पश्चिम भेद आज जिस भयानक अन्त को प्राप्त हो रहा है, उसे देखकर यह कहना अनुचित न होगा कि

प्राची की आध्यात्मिक सभ्यता, जो आरफ्यूस के द्वारा यूरोप में प्रवेश पा रही थी, मानवता के लिये ऐसी परिणति न उपस्थित करती।

आरफ्यूस, उत्तरी यूनान अर्थात् थ्रेस का निवासी एक धर्म-सुधारक बताया जाता है, कालान्तर में उसे जन-मन में देवत्व की स्थिति भी प्राप्त हो गई थी। आरफ्यूस ने डायनीशस-धर्म में अधिक गंभीरता एवं दार्शनिकता उत्पन्न कर उसे भद्र बना दिया था। अपने मूल-रूप में डायनीशस खेतिहर समाज का फसलका देवता था, जिसके उत्सव थ्रेस-वासी फसल के समय बड़ी धूमधाम से मनाते थे। आगे जब उन्हें शराब का पता लगा, तो उसकी मादकता को दैवी प्रभाव मानकर, शराब को धार्मिक पेय मान लिया गया। किसी स्थल पर स्त्री-पुरुषों का समूह एकत्र हो मधुपान करता, मस्त होकर नाचता और जो अधिक उन्मादवश बकने लगता, वही देव-संसर्ग में समझा जाता तथा उसकी बातें देव-वाणी के समान आदर पातीं। इस प्रकार डायनीशस-धर्म के साथ उन्माद का सम्बन्ध स्थापित हुआ। किंतु आरफ्यूसके प्रभाव में आकर यह उन्माद मधुजन्य तो कम आराध्य-आराधक संयोग का परिणाम अधिक बन गया और मधु का आचमन भी केवल सांकेतिक रह गया।

आरफ्यूसी धर्म जन-साधारण तक ही न रहा। यूनान के बड़े-बड़े दार्शनिक पायथागोरस तथा प्लेटो आदि इसके अनुयायियों में थे। इस धर्म के अनुसार जीव-देह संयोग दुःखमय है। आराध्य का सान्निध्य प्राप्त करना परम लक्ष्य है। इसके लिये देह की शुद्धि के द्वारा आत्मा का उत्थान करना आवश्यक माना गया। अतएव आरफ्यूसी दार्शनिक, रहन-सहन तथा भोजनादि के कठोर नियमों का पालन करते और देह की शुद्धि के लिये औषधियों का भी प्रयोग करते थे।

प्राचीन यूनान में आरफ्यूसी धर्म वनाग्नि की भांति फैला। अंधविश्वासी अशिक्षित वर्ग एवं स्त्रियां तो सहज ही इस रहस्यमय, उत्सवमय एवं उन्मादमय धर्म के अनुयायी हो गये। इससे उन्हें जीवन की अप्रिय एवं

कठोर अवस्था भूलकर, क्षण भर सुखी होने का अवसर मिला। नियम-संयम के आधार पर, अन्य लोगों की अपेक्षा देवत्व एवं श्रेष्ठता प्राप्त करने का अवसर धनी अथच कुलीन वर्ग के लिये आकर्षक था। यह तो हम अपने देश में ही देख सकते हैं कि जिन लोगों को उत्तम मेवे-फल आदि सुलभ हैं, वे अधिक 'उपवास' करते हैं।

अनेक प्रकार से आरफ्यूसी धर्म एक ऐसा क्षेत्र था, जिसमें सभी लोगों को अपने काम की बात मिल गयी और अधिकांशतः कुलीन वर्ग ने ही, इसे मनुष्यों पर शासन करने के लिये देवता बनने का साधन पाकर, अपनाने की चेष्ठा की। कुलीनजनों की अधिक संख्या का अनुयायी बनना ही इस धर्म के लिये घातक सिद्ध हुआ और उदयोन्मुखी जन-शक्ति, जो कुलीनतंत्र को अपदस्थ कर रही थी, इसे भी बहा ले गयी।

आरफ्यूसी धर्म, विशेषतया उसका दार्शनिक अंग, पूर्व की देन माना जाता है। प्राच्य-दर्शन यूनान के जन-धर्म एवं जन-विश्वास की वेश-भूषा धारण कर आरफ्यूसी रूप में प्रगट हुआ। किन्तु यूनानवासी का अंतःकरण, सुसंस्कृत न होने के कारण, इतने गंभीर दर्शन के लिये कदाचित उचित पात्र न था। प्रो० रसेल का यह कहना उचित ही है कि जो जातियां शीघ्रतापूर्वक सभ्य हो जाती हैं, उनमें असंस्कृत इच्छायें लगातार ऐसी तृप्ति चाहती रहती हैं, जो उच्च सभ्यता के वाह्याचार में संभव नहीं हो पाती। ऐसी वासनाओं की तृप्ति के लिये आरफ्यूसी धर्म अधिकांशतः साधारण जनों में प्रिय हुआ था। किंतु वासनाओं से संयुक्त होकर इसने उन अनेक तत्वों को अपने विरुद्ध उभार दिया जो सामाजिक जीवन के निर्माण के पक्ष में थे। यह भी एक कारण था जिससे आरफ्यूसी धर्म यूनान में न पनप सका; तथा आयोनिया के बुद्धि-प्रधान यथार्थवादी भौतिक-वाद ने इसे अपदस्थ कर यूनान को उस मार्ग पर अग्रसर किया, जिस पर उसके पीछे सम्पूर्ण यूरप अनुगमन करने वाला था। यही पाश्चात्य जीवन-दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का मार्ग बना, जिसने पूर्व की ओर

अपनी पीठ कर ली और फिर कभी मुड़ कर न देखा। सात्रेटीज, क्राइस्ट और मुहम्मद, किसी को इसने न सुना। श्रद्धा-विश्वास की स्निग्धता से वंचित, यूनान शंकाओं की तीव्रता लेकर जो आगे बढ़ा, तो उसके नेतृत्व में मानवता ने अद्‌भुत शक्तियां प्राप्त कीं, देवताओं को भी जो दुर्लभ थीं। किन्तु इन बढ़ती हुई शक्तियों ने मानव-जीवन में अधिकाधिक असंतुलन एवं विषमता ही उत्पन्न की। आज भी हम उसे अनुभव करते हैं और हमारे समस्त कष्टों का वह हेतु बनी है; वही अर्न्तवाह्य विषमता।

राज्य-दर्शन के विकास की अनुकूलता

यह बात हमें सहसा आश्चर्य में डाल देती है कि यूनान जैसे छोटे प्रदेश में, अत्यन्त अल्पकाल में, अनेक ज्ञान-स्रोत फूट पड़े और स्फीत धाराओं में प्रवाहित होने लगे। उस समय यूरप के किसी अन्य भाग में ये इस गति एवं मात्रा में नहीं दिखाई देते। किन्तु यूरप का कोई दूसरा हिस्सा संसार की पुरानी, ऊंची सभ्यताओं के देशों के इतना निकट भी तो नहीं स्थित था। यूनान के दक्षिण में मिस्र और क्रीट, पूर्व में मध्य एशिया के देश मानवीय उत्थान के ऊंचे शिखर पर पहुंच चुके थे। प्राचीन सभ्यताओं के देशों से यूनान के सम्बन्ध सैनिक एवं व्यापारिक दोनों ही रूपों में बहुत गहरे थे, जिससे उस सभ्य जीवन-प्रणाली के बने बनाये ढांचे अपने जीवन को ढालने के लिये उसे मिल गये।

प्राचीन देशों के प्रभाव के प्रति जो यूनान की प्रतिक्रिया हुई और जिस रूप में प्राच्य प्रभाव वहां स्थिर हुए, वे यूनानी साहस और उदार भाव के स्पष्ट सूचक थे। उत्तराखण्ड के पशु चारी लोगों में साहस होना ही चाहिये; पुनः किसी प्राचीन संस्कृति में अनुरंजित न होने के कारण अन्तःकरण की स्वच्छता भी उनमें थी। जिस जीवन-विधि को बैबिलोनिया या मिस्र का निवासी पुरानी परम्परा और शिक्षा के कारण मौन-रूप से स्वीकार कर लेता, वह यूनानी के संमुख एक विशाल प्रश्न उत्पन्न करने

वाली होकर प्रस्तुत होती तथा उत्कृष्ट मानवीय रचना पर आश्चर्य से भरकर यूनानी उसके 'क्यों' और 'कैसे' की ओर उपेक्षा भाव न रख सका ।

यूनान के राज्यों में तथा समाज में व्यक्ति की विशेष स्थिति वहां राज्य-दर्शन के विकास के लिये तीसरी महत्वपूर्ण अनुकूलता थी। स्थायी घर बना कर समाज को स्थिरता प्राप्त किये इतना समय नहीं बीत गया था कि सामाजिक नियमों के झाड़-झंखाड़ में वैयक्तिकता लुप्त हो जाती और व्यक्ति बिल्कुल ही अपने को सामाजिक अर्गलाओं से जकड़ा हुआ पाता ।

साथ ही, समाज से प्रथक होने के दुष्परिणाम का अनुमान उसको प्रतिक्षण होता रहता था। इससे सामाजिक जीवन का महत्व समझने के लिए कल्पना का अधिक सहारा नहीं लेना पड़ता। व्यक्ति तथा समाज का समझौता लगातार चलता रहता था और यह बात व्यक्ति के अधिकार में थी कि वह समाज के लिये कहां तक अपने स्वार्थों तथा अधिकारों का त्याग करेगा, कहां तक नहीं। कदाचित राजनीति का यही आदि रूप था और यह प्रत्येक व्यक्ति के संमुख व्यवहारिक समस्या थी। व्यक्ति और समाज की अथवा व्यक्ति और शासन की, यही विषमता राजनीतिक दर्शन की प्रारंभिक तथा अन्तिम प्रेरणा है। यूनानी दार्शनिकों ने इस विषमता के शमन करने के अनेक उपाय प्रस्तुत किये जो आज भी राज्य-दर्शन की अमूल्य निधि हैं ।

यद्यपि व्यक्ति को अपने समाज के साथ प्रथकता का आभास भलीभांति था, तो भी वह समाज के प्रति अत्यन्त कर्त्तव्य-परायण था। किसी अधिनायक के भय से वह समाज तथा राज्य के नियमों का पालन नहीं करता था, उसे अपने जीवन की सार्थकता समाज के साथ ही प्रतीत होती थी। उसका विचार था कि मनुष्य पशु-वर्ग से श्रेष्ठ बनने के लिये समाज में रहे। वहीं उसका अधिकतम विकास संभव है। अतएव समाज

की रक्षा के लिये, तथा अपनी विशिष्ट जीवन-प्रणाली की रक्षा के लिये वह कटिबद्ध रहता था। इस प्रकार की प्रचुर सामाजिक भावना भी राजनीति-शास्त्र की उन्नति में महत्व पूर्ण हेतु रही ।

व्यक्ति और समाज तथा शासक एवं शासित की प्रथकता का आभास यूनान के राजनैतिक विचारों की एक मात्र प्रेरणा नहीं थी। यूनानी भूखण्ड पर बिखरे-से नगर-राज्य एक ओर तो समस्त यूनान की राष्ट्रीय एकता की भावना से अवगत थे और दूसरी ओर अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा पारस्परिक स्पर्धा से प्रथकता भी अनुभवकरते थे, जिससे उन्हें राज्यों के पारस्परिक संबंध पर भी पर्याप्त सोचना पड़ा। उनके विचार आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की कोटि के होने के कारण आज के राजनीतिज्ञ के लिये किसी प्रकार कम रुचिकर नहीं।

और भी कारण हैं जिनसे राज्य-दर्शन की सहसा इतनी उन्नति यूनान में हो गयी। यूनान के सभी नगर-राज्य एक ही शासन-प्रणाली का प्रयोग नहीं करते थे। एथेन्स का जनतंत्र अपनी शासन प्रणाली में अधिक से अधिक जनतंत्रात्मकता का समावेश करना चाहता था। दूसरी ओर स्पार्टा, शिक्षा एवं प्रतिबन्ध की शृंखलाओं से, समाज को इतना जकड़े हुए था कि कठिनाई से किसी प्रगति के लिए अवसर मिलता था। यूनान के विभिन्न प्रकार के नगर-राज्य एक दूसरे की गतिविधि से भलीभांति परिचित रहते थे. और समझते रहते थे कि एकमात्र उनकी ही शासन-प्रणाली संभव नहीं है। दूसरी विधियों से भी समाज तथा शासन का संगठन हो सकता है। यूनान उस समय एक राजनीतिक प्रयोगशाला की भांति था, जिसमें किसी समय विविध रूपात्मक राजनैतिक सामग्री विचारार्थ उपलब्ध हो सकती थी। अरिस्टाटिल ने अपने समय के तथा और भी प्राचीन समय के अनेक विधानों का संकलन करवाया था।

निकटवर्ती राज्यों को देखकर तो अनेक प्रकार के उदाहरण मिल ही सकते थे, साथ ही, एक राज्य अपने ही जीवन में, अनेक प्रयोग कर

डालता था। प्रायः सभी राज्य अपने जीवन में अनेक प्रकार की शासन-प्रणालियां देख लेते थे; समकालीन अन्य राज्यों के उदाहरण के अतिरिक्त, अपना ही इतिहास अनेक राजनीतिक प्रयोगों एवं अनुभवों का भंडार होता था। इसके अतिरिक्त, राजसत्ता के लिए विभिन्न वर्गों के संघर्ष के बीच भी राज्य-दर्शन को पनपने का कारण मिलता था। जो वर्ग प्रचलित शासन-प्रणाली से असंतुष्ट होता वह उसकी आलोचना करने में आकाश-पाताल की बातें खोज कर रखता तथा वांछित प्रणाली को स्वर्गीय रंगों से अनुरंजित प्रस्तुत करता था। इस भांति, हम देखते हैं कि यूनान के पास अनेक प्रकार के प्रचुर कारण एवं साधन थे, जिनसे राज्य-दर्शन अल्पकाल में वहां प्रौढ़ हो गया।

यूनान के राष्ट्रीय महोत्सव, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध ओलिम्पिया का महोत्सव था, खेलकूद के अतिरिक्त विचार-विनिमय के भी अवसर होते थे। विभिन्न मतावलम्बी विद्वान उस अवसर पर एकत्र होकर शास्त्रार्थ करते तथा अनेक राज्य-नेता, उनके प्रभाव से अपनी नीतियों में हेर-फेर करते। अन्य राज्यों से संधि-विग्रह आदि भी करते। अतएव इन महोत्सवों का, जो बहुधा प्रति चौथे वर्ष हुआ करते थे, राज्य-दर्शन के विकास में योग था।

अन्त में उपनिवेशों का बसाना राज्य-दर्शन के विकास में वही महत्व रखता है जो वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोगों का होता है। जो शासन-प्रणालियां यूनान में अपना कुछ विकास प्राप्त कर लेती थीं, प्रायः उन्हीं के आधार पर धरा के अन्य भागों पर यूनानी राज्य-नेता नई-नई बस्तियां बसाते और राजनीति के प्रयोग करते। इस प्रकार उपनिवेशों ने भी राज्य-दर्शन के निर्माण के लिये प्रचुर सामग्री प्रदान की।

प्राचीन यूनान में राज्य-दर्शन जिस सीमा तक विकसित हो गया था वह आज ढाई हजार वर्ष के उपरान्त भी कम रोचक नहीं। इसके लिये, उसके समृद्ध पड़ोसी, समाज की नवीनता के कारण व्यक्ति की उन्मुक्ता-

वस्था, विविध रूपात्मक नगर-राज्यों द्वारा विपुल राजनैतिक सामग्री प्राप्त हो सकना, उपनिवेश बसाना आदि अनेक कारण हैं, जिनको पाकर साहसी यूनानी जो कुछ कर सके, उसके आगे कई सौ वर्ष तक मनुष्य की बुद्धि नहीं गयी।

साफिस्टों से पूर्व राज्य-दर्शन का प्रारंभिक स्वरूप

होमर

यूनान की सबसे प्राचीन रचनायें होमर कृत महाकाव्य 'इलियड' तथा 'ओडेसी' हैं। महाभारत की गाथाओं से यह बहुत मिलती-जुलती हैं, जिससे सिकन्दर की सेना के कुछ सैनिकों को भ्रम हो गया था कि यह होमर के काव्य का ही भारतीय संस्करण है। जिस समय का वर्णन होमर में प्राप्त होता है अनुमानतः वह आठवीं शती इ० पू० था और होमर-साहित्य जिसका मूल आयोनिया का माना जाता है, छठी शती में वर्तमान रूप में स्थिर हो चुका था। होमर स्वयं (यदि वह कोई व्यक्ति था) राजा की शक्ति बढ़ाने के पक्ष में था और इसलिये अपने समय का प्रगतिशील व्यक्ति रहा होगा। समाज के पशु चारण एवं पशुपालन-जीवन का वह ढांचा, जिसमें कुलपति तथा गृहपति राजनैतिक सत्ता के भी भागी होते हैं, अब समाप्त होकर राजनैतिक शक्ति के केन्द्रीकरण को स्थान दे रहा था। इस गति-विधि का नेतृत्व राजा कर रहा था। फिर भी, अभी उसकी

शक्ति गृहपतियों तथा कुलपतियों द्वारा सीमित थी। वे अपने परम्परागत अधिकार प्रयोग करते थे और वृद्ध-परिषद (बुले) की स्वीकृति लेकर ही राजा कोई महत्वपूर्ण कदम उठाता था। ऐसी बातों पर जिनमें सार्वजनिक सहयोग की अपेक्षा होती थी, सर्वसाधारण की स्वीकृति 'अगोरा' नाम की जन-सभाओं में प्राप्त की जाती थी।

राजा न्याय कर्त्ता था, किन्तु तभी जब कोई मसला सार्वजनिक हित के लिये उठता; अथवा कोई प्रपीड़ित व्यक्ति फरियाद लेकर राजद्वार पर आता। अन्यथा नर-वध के मामले भी कुलपतियों द्वारा निर्णीत हो जाते थे; और राजा को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं थी। राजा सैन्य शक्ति का भी प्रधान था और रणक्षेत्र में सेना का नेतृत्व करता था। प्रथक सैन्य संगठन रखना प्रारंभ नहीं हुआ था। जन-साधारण ही संकट के समय हथियार उठा लेते थे। राजा की आवश्यकता भर के लिये भू-क्षेत्र प्रथक रहता था जिसमें अन्न उपजा कर राजा को देना जन-वर्ग का उत्तरदायित्व था। राजा के प्रति लोगों का भक्ति-भाव था। उसे ईश्वरांश मानने की भी धारणा थी। 'राजन्' की उपाधि राज-कुल के सभी पुरुष व्यक्ति धारण करते थे। तथा वह कुल अपने वंश का आरंभ किसी-न-किसी देवता से मानता था; ठीक उसी प्रकार जैसे हमारे यहां 'सूर्यवंशी' राजा होते थे। शासन-सूत्र राजकुल के केवल निर्वाचित व्यक्ति को ही प्राप्त था। कुल के अन्य व्यक्ति उसके सहायक होते थे। यहां राजा के निर्वाचन का कार्य किसी वैधानिक स्पष्टता से सम्पन्न नहीं होता था और राजपद राजा के पुत्र को ही मिलता था, किन्तु उस पद पर आसीन होने के लिये वैयक्तिक योग्यता का महत्व था, जिसके अभाव में जन-मत हस्तक्षेप करके उचित व्यक्ति को शासन-कार्य सौंप देता था। राजा धर्म-कार्यों में भी अग्रणी था और समाज का प्रधान पुरोहित होता था। वस्तुतः, जिस प्रकार राजनैतिक सत्ता के साथ धर्म-कार्यों में प्रधानता करने का अधिकार छोटे क्षेत्र में

गृहपति तथा कुलपति को प्राप्त था, उसी प्रकार समाज की उस अवस्था में जब अनेक कुल एक राजनैतिक संगठन में बंधने लगे यह नेतृत्व बड़े-क्षेत्र में राजा को प्राप्त हो गया। वह अपनी शक्ति गृहपतियों तथा कुलपतियों से ही विशेषतया प्राप्त करता था, जन साधारण से नहीं। जनसाधारण तो गृह, कुल तथा वंशों की 'ब्यूरोक्रेसी' द्वारा शासित था।

यद्यपि राजा की स्थिति प्रायः जनस्वीकृत थी तथापि अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिये उसे अधिक वैभव, सेवक तथा सम्पत्ति की आवश्यकता पड़ती ही होगी। अंग-रक्षकों का एक दल भी रहता था, जो उसके विशेष विश्वास-पात्र, तथा बहुधा कुल के ही लोग होते थे। यह उसके साथ ही राज-भवन में निवास करते तथा राजा के सामाजिक जीवन की पूर्ति करते थे। इस प्रकार की राजनैतिक दशा और सिद्धान्त की झलक जो होमर में मिलती है, यूनान के जगत में अधिक समय तक नहीं चल सकी। कुछ परिधीय प्रदेशों को छोड़ कर लगभग सम्पूर्ण यूनान में कुलीन शासन ने शीघ्र ही राज-पद को शिथिल कर दिया। प्रो० बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार होमर में वर्णित देवगण, खेतिहर वर्ग के उत्पादक देवता नहीं हैं, वे कुलीन वर्ग के मनुष्यों की भांति विलासी एवं कठोर हैं, तथा अपने समय के, उत्तरोत्तर बलवान होने वाले वर्ग के प्रतिबिम्ब हैं।

हेसिअड

राजतंत्र के निर्माण एवं विनाश दोनों का एक ही कारण था—उद्योग-व्यवसाय की उन्नति। उपनिवेशों के विस्तार ने यूनान के बने बर्तन, ऊन, धातुओं आदि के सामान की जबरदस्त मांग पैदा कर दी जिसे पूरा करने के लिये दस्तकारों के समूह बसाये गये, बिखरी हुई कृषक एवं पशुचारी बस्तियां सिमट-सिमट कर घनी हो चलीं। कुलपति एवं गृहपतियों का शासन एक बड़ी शासक सत्ता के पक्ष में निर्बल होने लगा।

किन्तु यह नवीन एवं व्यापक शासन-शक्ति, जो राजा में निहित होती थी, अत्यन्त अल्पायु सिद्ध हुई। भूमीय सम्पत्ति ही राजतन्त्र का आधार होती है, किन्तु वह तो स्वयं उद्योग-व्यवसाय के आगे हीन-महत्व हो रही थी। अतएव भूमि-स्वामियों का शीघ्र ही नैतिक पतन हुआ तथा उनके अत्याचार बढ़ने लगे। उनके साथ-साथ अत्याचार के विरुद्ध, उद्योग-व्यवसाय पर आश्रित वर्ग, जिसे भूमिहीन होकर भी असहाय हो जाने का भय न था, मौन न रह सका। हेसिअड वह सबसे पहला यूनानी है जिसकी आवाज आज भी हम उस समय के अधःपतित भूमि-स्वामियों तथा उन पर आश्रित राज-कर्मचारियों के विरुद्ध गूंजती हुई सुन सकते हैं। वह स्वयं एक किसान का पुत्र था और उसके बड़े भाई ने, 'भेंट-भक्षी' राज-कर्मचारियों को कुछ दे-लेकर, सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

हेसिअड की रचनाओं में शोषित वर्ग की यातनाओं की गंभीर कालिमा छाई है। उसने अपने भाई जैसे बहेतू किसानों को शिक्षा दी सद्उपार्जन तथा सद्व्यय की। उसने उचित ऋतु में कृषि-कर्म करने पर उपदेश दिये। किंतु, जो सामाजिक दशा का चित्रण उसकी रचनाओं में हमें प्राप्त होता है और ऐतिहासिक महत्व का है, उसमें सबसे अधिक आकर्षक बात यही है कि वह अपने समय के जन-साधारण की पीड़ाओं का सबसे बड़ा हमदर्द था। साहसपूर्वक उसने उस असन्तोष को व्यक्त किया जो निकट भविष्य के सुधारवादी सन्त और सोलन आदि के अभाव में, उग्र जन-क्रान्ति का रूप धारण कर लेता।

कवि और दार्शनिक हेसिअड अपने समय से अत्यन्त दुखी होकर बीते हुए समय को स्वर्णयुग मानता था। उसकी यह कल्पना थी कि मानव-इतिहास का उषा-काल अत्यन्त सुखमय था, उसे वह स्वर्ण युग कहता है। क्रमशः दुःख की वृद्धि मानव-वर्ग में होती गई जिससे स्वर्ण के बाद रौप्य (चांदी) युग, ताम्रयुग तथा अन्त में लौह युग आया। अपने समय को वह

लौह युग ही मानता था। यह उसी की कल्पना थी जिसके आधार पर यूनान के अनेक दार्शनिकों ने मानव-स्वभाव की तुलना धातुओं से की।*

डेल्फी-मठ के सन्त

प्राचीन काल में राजनैतिक कामों में जन-सहयोग प्राप्त करने के लिये धर्म का प्रश्रय लिया जाता था। जन-जीवन धर्म की भावना में पूर्णतया आच्छादित था। ऐसी दशा में, यूनान का डेल्फी-मठ जो अपोलो देवता का स्थान था, ई० पू० छठी शताब्दी में अत्यन्त प्रभावशाली हो गया था। सभी दिशाओं से लोग आते और अपनी रुचि के अनुसार डेल्फी के देवता से 'वचन' प्राप्त करते। किसी को अपने जीवन का भविष्य पूछना रहता था, कोई अपने रोग की औषध जानना चाहता था, कोई साहसिक युवक विदेश-यात्रा की आज्ञा और आशीर्वाद लेने आता अथवा किसी प्रदेश का राजा शत्रुओं पर आक्रमण करने की अनुमति मांगने आता था। यद्यपि राज्यनेतागण पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने डेल्फी नहीं आते थे; निर्णय तो वे स्वयं अपनी नीति और बुद्धि से ही करते थे; किन्तु डेल्फी की स्वीकृति प्राप्त कर लेने से एक तो जन-वर्ग का उत्साह एवं सहयोग उन्हें भरपूर प्राप्त हो जाता, दूसरे परिणाम में असफलता मिलने पर स्वयं निर्दोष बचने का मार्ग पा लेते थे। इस प्रकार जन-रोष का लक्ष्य बनने से राज्यनेता अपनी रक्षा कर लेते थे।

डेल्फी का मठ फोशिया जाति के लोगों के नगर क्रिसा की सीमा में स्थित था। डेल्फी के एक पद के अनुसार अपोलो ने क्रिसा पहुंच कर कहा 'मैं इस पहाड़ी पर अपना एक मन्दिर बनाऊंगा और मनुष्यों के लिये भविष्य-वक्ता बनूंगा।' इससे स्पष्ट है कि मठके मूल-प्रचारकों ने जन-मन के कोमल-स्थलों को किस वक्रता से स्पर्श किया था। यह मठ यद्यपि जन-साधारण की अंध श्रद्धा पर आधारित था, जिसके कारण राज्यनेता

* कार्नफोर्ड द्वारा अनूदित प्लेटोकृत 'रिपब्लिक' पृष्ठ २६४।

इसकी आज्ञा लेने में ही अपना हित देखते थे, किन्तु जन-हित में कभी इसने कोई जोरदार कदम नहीं उठाया। शासक वर्ग के व्यक्तियों से ही इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, जिनके लिये यह बैंक और लेन-देन का भी काम करता था।* उनके खजाने यहां सुरक्षित रहते थे और आपत्तिकाल में यह उन्हें आर्थिक सहायता भी देता था। यूनान के शासक वर्ग से जो अधिकांशत: डोरियाई लोग थे, घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण मठ के व्यवस्थापकों ने उपाय करके क्रिसा-वासियों के आधिपत्य से मुक्ति पा ली और प्राय: स्वतन्त्र व्यवस्था स्थापित कर ली। किन्तु स्पार्टा का ही उस पर अधिक प्रभाव बना रहा, जो डोरियाई सभ्यता का गढ़ था।

ईसा से लगभग ६०० वर्ष पहले यूनान के राष्ट्र-शरीर में व्याप्त अनेक रोग उग्र अवस्था को प्राप्त हो रहे थे। धनी-निर्धन का संघर्ष, दास-स्वामी का संघर्ष तथा शासक-शासित का संघर्ष और अधिक चुप रहने के लिये तैयार नहीं था। सर्वत्र दलित वर्ग न्याय चाहता था। स्पार्टा का दास नागरिकों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ जिसे दबाने के लिये असाधारण सैनिक शक्ति का प्रयोग स्पार्टा को करना पड़ा था। एथेन्स में भी धनी और अधिक धन समेटने में लगा था, पर उसकी तृष्णा अतृप्त थी। दूसरी ओर दरिद्र अधिकाधिक दरिद्र हो रहे थे। कृषक अपना सब कुछ गिरवीं रख कर भी कर्ज के भारी बोझ से दबा जा रहा था। समाज का चारित्रिक पतन उस अवस्था को पहुंच चुका था जिसमें सुधार से अधिक क्रान्ति की आवश्यकता थी। शासक वर्ग पैसे के लिये बिक गया था। ऐसे कठिन तथा विपत्ति के समय अपोलो मठ के सन्तों ने, जिन पर जनता की असाधारण आस्था थी, नेतृत्व अपनाया। यह मठ पहले फोशियन कुल के आधीन था किन्तु आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये उसने उक्त आधीनता उतार फेंकी।

* बेर्ट्रण्ड रसेलकृत 'हिस्ट्री आव वेस्टर्न फिलासफी' पृष्ठ २४८।

प्लूटार्क ने अपोलो के सात संतों का उल्लेख किया है तथा प्रत्येक के मत का भी वर्णन किया है, किन्तु अर्नस्ट बार्कर के अनुसार इनमें केवल 'सोलन' नामक संत ही ऐतिहासिक व्यक्ति माना जा सकता है ।* जिस प्रकार अन्य देशों में धर्म प्रवर्त्तकों को नैसर्गिक सन्देश मिला करते थे, जैसे मुहम्मद साहब पर कुरान प्रगट हुई, उसी प्रकार अपोलोमठ के देव-वक्ता भी समाज के नियम तथा भविष्य कथन करते थे । सोलन का अत्यन्त व्यापक प्रभाव ही था जिसने यूनान जगत की क्रान्ति रोकी और न्याय तथा व्यवस्था के द्वारा सभी वर्गों को संतुष्ट करने की चेष्टा की ।

मध्यम मार्ग तथा सन्तुलन का सन्देश अपोलो देवता के मठ की प्राचीन परम्परा थी और वहीं से सम्पूर्ण यूनान जगत को यह मिली थी । उस मठ का प्रभाव यूनान की समाज पर प्राचीन काल से चला आ रहा था। आरंभ में तो अपोलो देवता केवल रक्त-दोष दूर करने की ही सामर्थ्य रखते थे, किन्तु आगे चलकर आत्म-निरोध, संयम तथा अति-वर्जन के सन्देश भी वहीं से प्रचलित हुए ।

अपोलो के संतों ने अपने समय की राजनीति में महत्वपूर्ण हस्त-क्षेप किया था । इनके वचन फुटकर कहावतों के रूप में परम्परागत चले आ रहे थे । उनमें राजनीतिक तत्व की बातें भी रहती थीं । जैसे, 'पुरुष की योग्यता उत्तरदायित्व वहन करने पर ही प्रगट होती है', अथवा 'अति सदा वर्जनीय है'। इन वचनों को निसर्ग द्वारा प्रेरित कहा जाता था तथा बिना दुविधा के लोग इन्हें स्वीकार करते थे । अपोलो की परम्परा यूनान के जीवन में गहरी जड़ें जमा चुकी थी । उसका प्रभाव पायथागोरस, प्लेटो तथा अरिस्टाटिल आदि दार्शनिकों पर दिखाई देता है । व्यवहारिक रूप में उसका सबसे अधिक प्रभाव स्पार्टा पर ही पड़ा, जहां 'अति रोकने में ही अति कर दी गई, वर्जन जहां के जीवन में सर्वत्र छा गया था ।'

* अ० बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पष्ठ ४२ ।

यद्यपि सन्तों के उपदेश या मंत्र सदाचार एवं विनय के रूप में समाज को दिये जाते थे, किन्तु वे ही देश की परम्परा और कानून बन जाया करते थे। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उनका महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रभाव पड़ा। शोषकों के हाथ कुछ ठहरे और 'मध्यम मार्ग' या 'सम्यक आचरण' के उपदेश ने शोषित वर्ग को कुछ राहत दी। क्रान्ति तो कोई वर्ग तभी करता है जब उसे दूसरा उपाय शेष नहीं रह जाता। यह अंतिम प्रयत्न होता है आत्म रक्षा का। इसके अतिरिक्त जन-क्रान्ति डेल्फी का लक्ष्य भी नहीं था। डेल्फी-मठ के प्रभाव से अवश्य ही शोषित वर्ग अपनी अवस्था में ही थोड़े बहुत सुधार के बाद, जीवन निर्वाह करने के लिये तैयार हो गया। सन्तों ने उन्मत्त पूंजीवादी वर्ग को चेताया और उसकी रक्षा की। सोलन ने स्वयं ही कहा कि वह धनी और दरिद्र दोनों की रक्षा करना चाहता है। दोनों अपनी सीमाओं को समझ लें और उनका अनुक्रमण न करें।

सन्तों के उपदेश स्थायी प्रभाव वाले थे, जो आगे चलकर पायथागोरस के 'सन्तुलन सिद्धान्त' तथा अरिस्टाटिल के 'सम्यक सिद्धान्त' के रूप में दार्शनिक आधार पर स्थापित कर दिये गये।

सोलन

सोलन न केवल अपोलो मठ का एक संत था, वह एक कवि, दूरदर्शी शासक तथा राजनीतिज्ञ भी था। उसे युग-प्रवर्तक ही मानना चाहिये, क्यों कि आगे के यूनानी दार्शनिक अपनी धारणाओं एवं विश्वासों का समर्थन सोलन में ढूंढ़ते दिखाई देते हैं। यूनान के इतिहास में उसका प्रभाव स्पष्ट, व्यापक तथा दीर्घकालीन पड़ा।

सोलन ने सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। न्याय उसका प्रमुख आधार एवं दण्ड था। विचित्रता की बात है कि वह एक साथ ही निर्धनों का मित्र तथा धनवानों का रक्षक था। वह कहता

था, 'मैंने सबको आवश्यकता भर दे दिया है; न किसी को [illegible] से कम और न किसी को अधिक । मैंने ध्यान रक्खा है कि निर्धनों की हानि न हो पर साथ ही धनवान तथा प्रभावशाली व्यक्तियों की रक्षा भी हो जाय। कोई किसी के प्रति अनुचित बल का प्रयोग न करे।' दरिद्र-वर्ग जो श्रीमानों के ऋण से लदा था, सोलनने उसे पूर्णतया ऋण-मुक्त घोषित कर दिया। खेती करने के लिये उसने उन्हें जमीन दी जिसका शुल्क नहीं लिया जाता था । उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देकर उसने निर्धन वर्ग को धनोपार्जन का एक अतिरिक्त साधन प्रदान किया । इसी के निमित्त सोलन ने विदेशियों को निमंत्रित किया जो कला-कौशल में श्रेष्ठ थे कि वे उसके राज्य में आकर व्यापार करें तथा देशवासियों को उनसे कौशल सीखने का अवसर मिले ।

धनवान वर्ग के अत्याचार से रक्षा करने के उपरान्त सोलन का ध्यान जन-पीड़क राजकर्मचारियों की ओर गया। पदवीपतियों के नियंत्रण के लिये उसने कठोर नियम लिपिबद्ध किये । आधुनिक विधानों का उसे आदिपूर्वज समझना चाहिये । इस प्रकार सोलन ने कानून की सत्ता को सर्वोपरि स्थापित कर दिया । इसके अतिरिक्त राजकर्मचारियों पर नियंत्रण रखने के लिये उसने न्याय-परिषदों (जूरियों) की स्थापना की। इनमें सैकड़ों जन भाग लेते थे। ये न्यायालय जिन्हें 'हीलिया' कहा जाता था उच्च राजकर्मचारियों के कार्य-काल समाप्त होने पर उनके कार्य की समीक्षा करते थे। अतएव उसने केवल वैधानिक राज्य की ही स्थापना नहीं की अपितु कार्यकारिणी की अपेक्षा न्याय की उच्चता एवं राजसत्ता का मूलाधार जनमत में स्थापित किया। किन्तु जनतंत्र को उसने न्याय क्षेत्र से आगे नहीं बढ़ाया। सीधे-सीधे राज्य की नीति तथा संचालन में जनता को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। जनता इस बात पर निगरानी रख सकती थी कि स्वीकृत नियमों तथा परम्परा के अनुसार ही वह शासित हो रही है ।

अन्त में, एक और महत्वपूर्ण कार्य सोलन ने किया। उसने संगठन की स्वतन्त्रता की स्पष्ट घोषणा की। समान विश्वास तथा धर्म के लोग अपना संघ बना सकते थे। वे अपने संघ के अन्तर्गत प्रचलित करने के लिये आचार-व्यवहार के नियम भी बना सकते थे। किन्तु उनका पालन करना किसी पर बाध्य नहीं था और न संगठन किसी प्रकार राज्य के प्रतिकूल ही चल सकता था। नियमानुकूल चलनेवाले संघों पर रोक नहीं थी; केवल इतना ही नहीं, राज्य उन्हें मान्यता भी देता था।

यूनान की आगे आने वाली पीढ़ियों पर सोलन के कार्यों तथा विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, जिसका शतांश भी सोलन तथा उसके सम-कालीनों को भासित नहीं हो सका था। सोलन को पता भी न था कि वह समाज-शास्त्र की कितनी विभिन्न शाखाओं को एक साथ अङ्कुरित कर रहा है; जो बहुत समय व्यतीत होने से पूर्व ही प्लेटो तथा अरिस्टाटिल के हाथों बहुत कुछ विकसित हो जायेंगी। यद्यपि सोलन के सम्बन्ध में बहुत बड़ा मतभेद रहा है; एक वर्ग उसे कुलीनतावाद का जनक मानता है तो दूसरा जनतंत्रवाद का जन्मदाता, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि दलित वर्ग को इतना उच्च स्थान सोलन से पूर्व किसी ने नहीं दिया था। अरिस्टाटिल के विचार से तो सोलन कुलीनतंत्रवादी था और परम्परागत विधान में विश्वास करनेवाला था। वह स्वयं अपने को सोलन का ही अनुयायी कहता था। वह सोलन की ही भांति कानून को सर्वसत्तासम्पन्न मानता था और विश्वास करता था कि राजकर्मचारियों के निर्वाचन तथा उनके कार्य की समीक्षा करना जनता का न्यूनतम अधिकार है। सोलन की ही भांति वह राज्य की निष्पक्षता एवं तटस्थता का हामी था, जिससे कोई वर्ग दूसरे वर्ग के विरुद्ध अनुचित बल प्रयोग न कर सके। अन्त में सोलन की भांति वह भी अति का विरोधी था और सन्तुलन एवं सम्यक सिद्धान्त को श्रेयस्कर मानता था।

आयोनिया के प्रकृतिवादी (भौतिकवादी†)

प्राचीन यूनान विषमताओं का पुंज था। विषमता उसके राजनैतिक तथा दार्शनिक क्षेत्र में भी थी। एक ओर गणतंत्रीय राज्य-संघ उत्कर्ष पा रहे थे, दूसरी ओर मेसिडोनिया के सम्राट ने जैसा विशाल साम्राज्य स्थापित किया वह इतिहास के समस्त सम्राटों के लिये स्मरणीय है; हिरेक्लाइटस कहता था समस्त पदार्थ परिवर्तनशील हैं, परमेनाइडीज के मत से परिवर्तन केवल भ्रम है, समस्त पदार्थ स्थिर एवं अपरिवर्तनीय हैं। यूनान में जिस समय डायनीशस का परिष्कृत रूप आरफ्यूसवाद बन कर अत्यन्त जनप्रिय हो रहा था, उसी समय उसके विरुद्ध नवीन दर्शन, समुद्र पार, अयोनिया के तट पर जन्म पाकर विकसित हो रहा था।

यूनान की उस विचार-परम्परा का श्रीगणेश, जिसे दर्शन कहा जा सके, लघु-एशिया के उपनिवेशों से हुआ। इस भू-प्रदेश को आयोनिया कहते थे। अतएव जो दर्शन यहां जन्मा उसे हम 'आयोनिया का दर्शन' कहेंगे। यह नाम देने की आवश्यकता के और भी कारण हैं: पहले तो, यूनान के प्रारंभिक दार्शनिक यहीं के थे, दूसरे उनके दर्शन में मौलिक समानता थी, जिससे उस विचार-धारा को एक विशिष्ट व्यक्तितत्व प्राप्त हो गया, इसीलिए नाम भी। आयोनिया के दर्शन के निर्माता: थेल्स, अनेक्सिमेण्डर, अनेक्सिमिनीज, हिरेक्लाइटस तथा पायथागोरस, विशेष उल्लेखनीय हैं। किन्तु इनमें से सबके विषय में यह नहीं पता कि उनका राजनैतिक दृष्टिकोण क्या था। श्री डब्लू० टी० स्टेस का मत है कि यूनान का दर्शन व्यवहारिक आवश्यकताओं से मुक्त था और समाज तथा मानव-जीवन के दुःख-सुख अथवा उत्थान-पतन का उससे कोई सरोकार नहीं था। उनके इस विश्वास का भागी बनना कठिन है।

† आयोनियावासियों का प्रकृति से वही तात्पर्य था जो आज 'पदार्थ' का होता है।

दर्शन समाज की अवस्था से प्रभावित होता रहता है। राजनैतिक उत्थान-पतन का भी उस पर असर पड़ता है। यह कहना कि विशुद्ध दर्शन व्यवहारिक जीवन से पृथक होकर पनपता है, ठीक नहीं जान पड़ता और न यूनान के दर्शन के विषय में यह कहा ही जा सकता है। संभव है, वे प्रभाव जो प्राय: अत्यन्त सूक्ष्म एवं अन्तरंग होते हैं, समकालीन व्यक्तियों को प्रगट न हो, किन्तु कालान्तर में, जब इतिहास के प्रवाह की गति-विधि में वह समय अपना स्थान प्राप्त कर लेता है तो उस समय के प्रभावशाली अवयव उभर आते हैं और बहुत कुछ स्पष्ट देखे जा सकते हैं। विचारक के मस्तिष्क को विचार करने की दिशा समाज से ही प्राप्त होती है। विचार करना सामाजिक प्रक्रिया है और सामाजिक जीवन का स्वरूप ही किसी दर्शन की मूल आधार शिला हुआ करती है। यूनान के लिये तो यह बात अधिक जोर से कही जा सकती है; क्योंकि वहां ज्ञान को अभिव्यंजनीय माना गया था। यह रोचक बात है कि राजतंत्र तथा आरफ्यूसी प्रभाव एक ही साथ यूनानी क्रीड़ा-क्षेत्र से विदा होते दिखाई देते हैं। दूसरी ओर पदार्थवादी दर्शन तथा जनतंत्र का अभ्युदय प्रारम्भ होता है और यह होता है यूनान-जगत के उस कोने से जहां धर्म, परम्परायें तथा कुल-शासन आदि की रूढ़िवादी शृंखलायें सबसे अधिक शिथिल थीं, अर्थात् मिलेटस तथा एलिया के यूनानी उपनिवेशों से।

यूनान के इतिहास में छठी शताब्दी ई० पू० लोक-शक्ति के करवट लेने का युग है। राजसत्ता के लिये उसे कहीं कुलीनों से, कहीं राजा से, कहीं अधिनायक से अथवा कहीं अर्थवादी व्यापारियों से प्रभावित शासन-सत्ता से संघर्ष करना पड़ा। बहुधा अवस्था अनिश्चित ही रही। राज्य-यंत्र के विविध रूप सभी लोगों का गंभीर विचार आकर्षित कर रहे थे। उस समय के सभी प्रमुख दार्शनिकों ने भले ही राजनीति में खुल कर सक्रिय भाग न लिया हो लेकिन वे उपेक्षा भाव भी न रख सके होंगे। उस समय राजनीति का पट सदाचार और धर्म के ताने-बाने से बुना था। फिर

भी, कुछ दार्शनिकों के विषय में तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने राजनीति में अपना स्थान रक्खा। एम्पिडाकिल्स जनतंत्रवादी था। हिरेक्लाइटस का झुकाव कुलीनवाद की ओर बताया जाता है; और जेनोफेन्स तो सक्रिय राजनीति में गहरे उतर गया था।

पांचवीं शताब्दी में यूनान के दर्शन में प्रकृतिवाद के प्रभाव स्पष्ट हो चुके थे। यह नवीन दार्शनिक धारा अपने उद्गम, आयोनिया से, पेरिक्लिस के समय में अनेक्सगोरस द्वारा एथेन्स लाई गई थी। आयोनियावासी भी यूनानी ही थे, किन्तु समुद्र पार कर आयोनिया में जा बसे थे। वहां की जलवायु अपेक्षाकृत कुछ ऊष्ण होने के कारण अधिक सुखदाई थी। अर्नेस्ट बार्कर के अनुसार आयोनिया के नगरों में सुख एवं ऊष्ण आवासों में विवादों की स्वछन्द क्रीड़ा आकाश-पाताल के सभी विषय खींच लाती थी। इन्हीं विद्वान के मत से दो कारण हैं जिनसे आयोनिया की दार्शनिक धारा यूनानी परम्परा से प्रथक होकर बही। प्रथमतः यहां के निवासी मौलिक कुल-परम्पराओं से अलग हो चुके थे और इनकी बस्तियों का विकास प्रारंभिक अवस्था से नहीं हुआ था, जैसा कि एथेन्स तथा स्पार्टा आदि का हुआ। जिन लोगों ने आयोनिया के नगर बसाये वह पहले ही से उत्कृष्ट नागरिक जीवन से परिचित थे। अतएव नागरिक जीवन की नैसर्गिक सत्ता तथा कानून में दैवी बल का ढोंग इन लोगों को विदित हो गया था। यह भलीभांति जान गये थे कि कानून मानव-रचना है तथा नगर को मनुष्य अपनी इच्छानुसार बसा लेता है। दूसरा कारण बार्कर साहब ने 'पूर्व का प्रभाव' कह कर ही छोड़ दिया है। स्पष्ट नहीं इस पूर्व के प्रभाव से उनका क्या तात्पर्य है।

यूनान के दर्शन का तत्कालीन सामाजिक दशा से घनिष्ट सम्बन्ध था। समाज की प्रचलित चिन्तन-विधि से दार्शनिक पूर्णतया प्रथक नहीं हो सकते थे। जनतन्त्र किसी न किसी रूप में मानव समानता स्वीकार करता ही है। अतएव जिस समय जनतंत्रीय समाज प्रगट होने के लिये

सचेष्ट था, उस समय विविध रूपात्मक जगत में किसी एक पदार्थ की तात्विक व्यापकता का आभास होना अत्यन्त स्वाभाविक था। राजनैतिक जनतंत्र का यह दार्शनिक प्रतिबिम्ब था। जिन दार्शनिकों ने एक तत्व में आस्था रखते हुए जनतंत्र के विरुद्ध राजनैतिक विचार अपनाये उन्होंने अपने दर्शन के विविध क्षेत्रों में विषमता रहने दी। पूर्ण समन्वय स्थापित नहीं किया। जैसा हम आगे चल कर देखेंगे, हिरेक्लाइटस का सर्वव्यापी तत्व अग्नि जल द्वारा प्रतिबाधित था। जिस प्रकार उसके दर्शन में अग्नि और जल तथा उष्ण और शीत की धारणायें थी उसी प्रकार समाज के क्षेत्र में ऊंच-नीच में वह विश्वास करता था। शुष्क एवं अग्नि-प्रधान व्यक्ति श्रेष्ठ तथा गीले एवं जल-प्रधान व्यक्ति को वह नीच मानता था। फिर भी अनेक वर्गों में विभक्त समाज में यह दृष्टिकोण रखना भी समानीकरण की ओर बड़ा डग था।

आयोनियावासी सभी दार्शनिक व्यापक तत्व की खोज में थे। थेल्स के मत से जल-तत्व समस्त सृष्टि का मूलाधार है। अनेक्सिमैण्डर पदार्थ मात्र को व्यापक तत्व के रूप में स्वीकार करता था। उसने किसी विशिष्ट पदार्थ का नामोल्लेख नहीं किया। अनेक्सिमिनीज के मत से वायु ही सर्वव्यापी तत्व है।

प्रतीत होता है उस समय मध्यपूर्व के देशों में रसायन शास्त्र पदार्थों को एक दूसरे में बदल सकने की चेष्टा में कुछ सफल हो चला था और वहां का 'अल्केमिस्ट' इस उधेड़ बुन में था कि किस प्रकार सस्ते धातु से सोना बना ले। हो सकता है उसकी इस समस्याने दार्शनिकों को विविध रूपात्मक जगत में एक तत्व की कल्पना करने की प्रेरणा दी हो और जिसकी कल्पना आयोनिया के अनेक दार्शनिकों ने अनेक प्रकार से की। इसके अतिरिक्त प्राचीका वह आत्मवाद जिससे पायथागोरसी दर्शन अनुप्राणित हुआ था, इस नवीन धारा के लिए पूर्णतया उपेक्षणीय कैसे हो सकता था। भले ही पूर्व के विरुद्ध यूनान की राष्ट्रीय भावना ने उसे अस्पृश्य घोषित

कर दिया, किन्तु आत्म-तत्व की सर्वव्यापकता ने पदार्थवादियों को भी मुग्ध किये बिना न छोड़ा और उनका सर्वव्यापी पार्थिव तत्व का खोजना आत्मवाद के चरण-चिन्हों पर ही चलना था। अन्त में, मानव बुद्धि का यह स्वभाव भी तो है कि जगत के असंख्य पृथक-पृथक अस्तित्वों में सामान्यतायें ढूंढ़ा करता है, जिसकी पराकाष्ठा अद्वैतवाद में है। समस्त सृष्टि में एक पदार्थ-तत्व की खोज मस्तिष्क की इसी स्वाभाविक प्रवृत्तिका परिणाम हो सकती है। यह प्रवृत्ति मिलेटस तथा एलिया के समस्त दार्शनिकों में विद्यमान थी।

थेल्स यूनानी दर्शन का पिता कहा जाता है, किन्तु आयोनियाके दार्शनिकों में अनेक्सिमेण्डर का प्रभाव अधिक व्यापक सिद्ध हुआ। उसके दर्शन में अरूप पदार्थ-तत्व की कल्पना सर्वाधिक सूक्ष्म कल्पना थी। किन्तु राजनैतिक प्रभाव जिन लोगों का अधिक पड़ा उनमें हिरेक्लाइटस ही है। कहा जाता है उसने राजनीति पर एक स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा, किन्तु सक्रिय राजनीति में भाग लेना उसने स्वीकार नहीं किया था। हिरेक्लाइटस का यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। उद्धरण तथा कहावतों के रूप में उसके उल्लेख जहां-तहां मिलते हैं, जिसके आधार पर उसे कुलीन-वादी माना जाता है। वह कहता था कि जनसाधारण में विवेक नहीं होता।

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि आयोनिया का मुख्य चिन्तन-क्षेत्र मनुष्य नहीं, जड़ जगत ही था, तथापि उसे उदाहरणों से अधिक स्पष्ट करने के लिये, अपने कथन की व्यापकता दिखाने तथा उसे अधिक प्रभावशाली बनाने के विचार से मानव-समाज से उदाहरण लिये जाते थे, जिस प्रकार हरबर्ट स्पेन्सर द्वारा समाज को सजीव व्यक्ति मानकर किए गये वर्णन ने उनके सिद्धान्तों को बहुत कुछ प्रभावित किया, वैसे ही आयोनियाके प्रकृतिवादके भीतर समाज एवं राजनीति के सम्बन्ध में दार्शनिक विचार बिखरे हुए मिल जाते हैं तथा उनका प्रभाव भी आगे चलकर दोनों ही क्षेत्रों

में पड़ता दिखाई देता है; अर्थात् आगे के दार्शनिक उनके समाज तथा राजनीति सम्बन्धी विचारों से ग्रहण करते हैं।

हिरेक्लाइटस के बहुत से विचार उदाहरणों तथा कहावतों के रूप में प्राप्त हैं, जिनका अपने समय में बड़ा सम्मान था। वे डेल्फी के वचनों के सदृश ही आप्त माने जाते थे। इन दार्शनिकों का महत्व विशेष रूप से इसीलिये था कि इन्होंने अपने पदार्थ-चिन्तन के साथ-साथ सामाजिक जीवन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण बातें कह डालीं। भौतिक जगत का नियंत्रण करने वाले नियमों का आविष्कार करने में सामाजिक नियमों पर जो उनसे प्रकाश पड़ा वह अत्यन्त रोचक सिद्ध हुआ। देखिये हिरेक्लाइ.स के पूर्व-गामी अनेक्सिमेण्डर का यह कथन कि जिस समय भौतिक पदार्थ में परस्पर प्रतिक्रिया होती है तो मानो वे एक दूसरे के प्रति किये हुए अन्याय का दण्ड भोगते हैं। एक दे रहा है दूसरा उससे कुछ ले रहा है। यही तो होता भी है रसायनिक परिवर्तन में और अन्त में नये रूप प्रगट हो जाते हैं। किन्तु विशेष रोचकता उस रसायनिक प्रक्रिया को सामाजिक शब्दों में व्यक्त करने में है। अनेक्सिमेण्डर ने अपने उक्त कथन में एक रूपक ही प्रस्तुत किया, किन्तु आगे चलकर हिरेक्लाइटस ने तो इस प्रकार की वर्णन-शैली की भरमार ही कर दी और कहीं कहीं पर यह कहना कठिन हो गया कि वह समाज और राजनीति पर लिख रहा है अथवा भौतिक शास्त्र पर।

जेनोफोन को यदि दार्शनिक माना जाता है तो यह भी जान लेना चाहिए कि वह अत्यन्त व्यवहारिक व्यक्ति था। उसने अपने दृढ़ भौतिक-वादी विश्वास को व्यवहारिक रूप दिया तथा एक ओर तो डेल्फी के वचनों का आश्रय लेकर राष्ट्रीय भावना जगाई तथा एशिया माइनर के पश्चिमी तट पर बसे हुए यूनानियों को मातृभूमि की ओर प्रेरित किया। पूर्वी सभ्यता से पृथक रहने की उन्हें सलाह दी। दूसरी ओर आयोनिया के वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर उसने बहुदेव-पूजन समाप्त करने का

बीड़ा उठाया। [illegible] में देव-पूजा के बहाने कितना भ्रष्टाचार फैल रहा था। इसमें सन्देह नहीं, आयोनिया के अनेक दार्शनिक जिन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग लिया, उन सब में जेनोफोन आगे था।

पायथागोरसी दर्शन

आयोनिया के समोस नामक द्वीप के निवासी पायथागोरस का समय ई० पू० छठी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। उस समय समोस पर अधिनायक पालीक्रेट्स का शासन था; जिसकी दुर्नीति से दुखी होकर पायथागोरस ने अपना देश छोड़ दिया। उसने मिस्र आदि उन्नत देशों का भ्रमण किया और वहां से ज्ञानार्जन करके दक्षिणी इटली के नगर क्रोटन में अपना विद्यालय स्थापित किया। दार्शनिक विद्यालयों में यूरोप का यह सबसे पहला विद्यालय था। किन्तु यह विद्यालय शिक्षा-केन्द्र की अपेक्षा साधना-केन्द्र था, जहां शिष्यगण गुरु के आदेशों के अनुसार अपने जीवन के हर एक अंग का निर्माण करते तथा आध्यात्मिक साधना करते थे। क्रोटन में लगभग तीन सौ साधक पायथागोरस से पथ-प्रदर्शन पाते थे।

इटली में भी पायथागोरस अधिक समय तक शान्तिपूर्वक नहीं रह सका। यद्यपि वहां पारसी आतंक नहीं था, किन्तु यूनानी उपनिवेश ही आपस में लड़ा झगड़ा करते थे और वातावरण किसी प्रकार शांत नहीं था। पायथागोरस के विद्यालय का प्रभाव कुलीन एवं धनवान लोगों के बीच अधिक बढ़ गया था; इसलिये जब लोक-शक्ति अधिकार-सम्पन्न हुई तो पायथागोरस का विद्यालय भी नष्ट कर दिया गया।

पायथागोरस मूलतः आयोनियावासी था और अपनी अवस्था का संस्कारग्राही समय उसने स्वदेश में ही व्यतीत किया था। किन्तु मिस्र आदि पूर्वी देशों के भ्रमण से भी उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। इससे आयोनिया

के यथार्थवाद तथा पूर्व के रहस्यमय धार्मिक विचारों का विचित्र संयोग उसमें मिलता है । एक ओर तो वह आत्मा की आनन्दातिरेक अवस्था को श्रेयस्कर मानता था, दूसरी ओर गणित जैसे यथार्थ और शुष्क विषय को उसने अपने समस्त दर्शन का आधार बनाया । किन्तु इसमें जो विषमता प्रतीत होती है वह केवल ऊपरी है । जो लोग गणित में रस लेते हैं, उनकी तन्मयता तथा समस्याओं के हल निकल आने पर आल्हादित अवस्था देखकर गणित की 'शुष्कता' की धारणा भ्रामक ही प्रतीत होती है ।

आयोनिया के अन्य दार्शनिकों की भांति पायथागोरस भी अनेक-रूपात्मक जगत में एक तत्व की व्यापकता मानता था, किन्तु उसका एक तत्व, जल अथवा अग्नि आदि से अधिक सूक्ष्म, 'संख्या' था । इस प्रकार पायथागोरस नेआयोनिया के प्रकृतिवाद को एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार-शिला पर स्थापित किया । पायथागोरस की संख्या के अस्तित्व में स्थान (आकाश) भी सम्मिलित है, इस प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु का सार संख्या ही है । प्रतीत होता है अनन्त स्थान (आकाश) कल्पनातीत होने के ही कारण उसने स्थान (आकाश) तत्व को सर्वअस्तित्व-व्यापी न मानकर संख्या को माना; क्योंकि संख्या खण्डित के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है जो बहुरूपी जगत में व्यापक हो । अस्तु आयोनिया के उपरोक्त दार्शनिकों की अपेक्षा यह सिद्धान्त अधिक सूक्ष्म होने से अधिक बुद्धिग्राह्य तथा व्यापक सिद्ध हुआ ।

पायथागोरस के मत से समस्त प्राणियों का आत्मा समान है तथा 'जन्म-चक्र' में एक मनुष्य की आत्मा अगले या पिछले जन्म में कुत्ते, हाथी या किसी जन्तु के देह में हो सकता है । 'जन्म-चक्र' से मोक्ष पाने के लिये साधना और संस्कार अपेक्षित हैं । तप और यज्ञ से इस दिशा में सहायता मिलती है । किन्तु सबसे अधिक महत्ता ज्ञानकी है । अतएव ज्ञानार्जन करना परम आवश्यक माना गया । इसी विश्वास का परिणाम

था जो पायथागोरसी विद्यालय, साधना के साथ-साथ उच्च विद्या-केन्द्र के रूप में भी था, जहां विभिन्न विषयों पर साधकगण चिन्तन करते थे। गणित का इस संस्था ने उल्लेखनीय विकास किया।

पायथागोरसी दर्शन में यह कहना कठिन है कि कितना अंश मौलिक रूप से पायथागोरस का है और कितना अनुयायियों ने जोड़ दिया, फिर भी माना जाता है कि पायथागोरस ने संख्या-सिद्धान्त को उतनी व्यापकता नहीं प्रदान की थी जैसी उसके अनुगामियों ने की। उन लोगों ने मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर गणित के अंक लिख दिये। इस प्रकार न्याय का रूप वर्ग हो गया। जिस तरह वर्ग की भुजायें समान एवं संतुलित होती हैं, वैसे ही न्याय में भी संतुलन होता है विभिन्न पक्षों के बीच। जिस राज्य में 'वर्ग' व्यवस्था अर्थात् न्याय नहीं है वह टिकाऊ नहीं हो सकता। (कदाचित अंग्रेजी का मुहावरा स्क्वेअरडील पायथागोरसी प्रभाव है।) संख्यात्मक न्याय के आधार पर बाद के पायथागोरसी दार्शनिकों ने एक स्पष्ट राजनैतिक सिद्धान्त की भी स्थापना की जिसके अनुसार राजा का दैवी सिद्धान्त स्वीकार किया गया। उनका कहना था कि जिस प्रकार ईश्वर संसार पर शासन करने का अधिकारी है, वैसे ही राजा अपनी प्रजा पर।

पायथागोरस के दर्शन में, हिरेक्लाइटस का मनुष्यों के स्वभाव के सम्बन्ध का जल-अग्नि सिद्धान्त कुछ अधिक विशद हो गया था। हिरेक्लाइटस ने तो जल-प्रधान नीच तथा अग्नि-प्रधान श्रेष्ठ, ये ही दो कोटियां मनुष्य की मानी, किन्तु पायथागोरस के अनुसार मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—विवेकशील, गौरवशील तथा लोभी जिनकी आत्मा में क्रमशः विवेक, साहस तथा तृष्णा की प्रधानता होती है। इसके अतिरिक्त, पायथागोरस ने डेल्फी की वह प्राचीन यूनानी परम्परा भी स्वीकार की जिसमें कहा गया था कि मनुष्य को सम्यक आचरण करना चाहिये तथा अति को दोष बताया गया था। पायथागोरस ने यह सिद्धान्त

तालयुक्त (रिदम्कि) संख्या के आधार पर स्थिर किया। उसने बताया कि जिस प्रकार संगीत की विभिन्न ध्वनियां जब एक दूसरे की सीमा एवं संतुलन का आदर नहीं करतीं तो राग बिगड़ जाता है, उसी प्रकार जीवन के विविध व्यापारों में यदि सीमा का ध्यान नहीं रक्खा जायगा तो जीवन दुःखमय हो जायगा। विभिन्न विरोधी तत्वों को संतुलित रखने में ही जीवन सुखी होता है तथा विभिन्न विरोधी ध्वनियों में संतुलन स्थापित करने से संगीत उत्पन्न होता है।

प्रो० कार्नफोर्ड अपने ग्रंथ 'फ्राम रेलिजन टु फिलासफी' में लिखते हैं: 'पायथागोरसी दर्शन उस रहस्यवादी विचार परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है जिसे हमने विज्ञान के विपक्ष में स्थापित कर रक्खा है।' उनके अनुसार, जिस प्रकार आरफ्यूसवाद डायनीशस-धर्म का सुधार करने के लिये था, उसी प्रकार पायथागोरसी दर्शन आरफ्यूसवाद का सुधार बन कर प्रगट हुआ। बुद्धिवादी तथा रहस्यवादी पक्षों का विरोध तो सम्पूर्ण इतिहास में दिखाई देता है, और इस विरोध में पायथागोरस रहस्यवादी ही था। यद्यपि उसका रहस्यवाद विशेष प्रकार से बुद्धिवादी प्रतीत होता है, तथापि जिन दार्शनिक विचार-धाराओं को उससे स्फूर्ति प्राप्त हुई वे सभी जगत की नश्वरता, परलोक तथा अज्ञेय ईश्वर में आस्था रखती हैं।*

पायथागोरस आत्मा की अमरता तथा पुनर्जन्म में विश्वास करता था। आत्मा की शुद्धि एवं उत्थान के लिये कठोर साधना की योजना उसने बनाई थी। शरीर को शुद्ध रखना आत्मिक शुद्धि के लिए आवश्यक होनेके कारण खान-पान पर भी कठोर नियंत्रण रखने का उपदेश था। किंतु आचार सम्बन्धी उसके विधि-निषेधमें सामाजिक अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी उपयोगिता आज प्रतीत नहीं होती। टटका-टोना और अंध विश्वास-

* बर्ट्रेण्ड रसेलकृत 'हिस्ट्री आव वेस्टर्न' फिलासफी पृष्ठ ५१।

पूर्ण धारणाओं का अधिक प्रभाव दिखाई देता है जैसे साधक, को फलियां नहीं खाना चाहिये, बिस्तर से उठ कर उस पर शरीर के चिन्ह और सिमटें मिटा देना चाहिए, अथवा आग से बर्तन हटाने पर राख में जो बर्तन का निशान बन जाय उसे भी मिटा देना चाहिये, इत्यादि। इन बातों को आज भले ही अंधविश्वास कहा जा सकता है, किंतु उस समय तो चिकित्साशास्त्र तथा अन्य बुद्धिप्रधान क्षेत्र भी इस प्रकार की बातों से भरे पड़े थे। बुद्धि तर्क करना प्रारंभ करने से पूर्व बहुत सी ऐसी बातों को स्थिर एवं स्वयं-सिद्ध मान लेती थी; बाद में इन पर शंकायें की गई और इन्हें निराधार पाया गया।

पायथागोरस ने हृदय और बुद्धि को समन्वित रूप में प्रस्तुत कर आयोनिया के पदार्थवादी दृष्टिकोण को एक जबरदस्त चुनौती दी तथा यूनान के अनेक सूक्ष्मदर्शी उसके अनुयायी हो गये। बुद्धि और हृदय तत्वों का यह समन्वयवाद साक्रेटीज, प्लेटो, सेण्ट आगस्टीन, टामस अक्विनस, कान्ट आदि में स्पष्ट रूप से चला आ रहा है। किन्तु भविष्य पदार्थवाद का ही था। प्राच्य दर्शन के पौधे को यूनान में आरोपित करने का कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। यूनान का मानव-हृदय अभी अध्यात्म का सन्देश ग्रहण करने के लिये उपयुक्त नहीं हो सका था कि राजनैतिक एवं सामाजिक शक्तियां भी विरोधी पक्ष के साथ हो गईं। छठी शताब्दी में तीन ओर से प्राच्य दर्शन को प्रतिकूलता प्राप्त हुई :

१. तत्कालीन यूनान में, अनेक उपनिवेशों के द्वारा, विदेशी राज्यों के (एशिया तथा मिस्र के) सम्पर्क में आने से राष्ट्रीय भाव अंकुरित हो चुके थे और इसके पीछे ओलम्पिक महोत्सव तथा ओलम्पिक देवगणों में आस्था की भी प्रबल शक्ति थी जो स्वयं अत्यन्त यथार्थवादी एवं मानवीय थे। अतएव प्राच्य दर्शन को विदेशी माना गया और राष्ट्रीय भावना के आधार पर ओलम्पिक देव-परम्परा को ही जीवन के आदर्श रूप में ग्रहण किया गया।

२. यद्यपि पायथागोरस का कोई राजनैतिक प्रोग्राम नहीं था* और वह केवल अध्यात्मवादी दार्शनिक था। किन्तु उसके सम्पूर्ण दर्शन का राजनीति पर जो प्रभाव पड़ा वह बहुत गहरा और विस्तृत हुआ। आत्मा की शुद्धि एवं पुनर्जन्म के आधार पर समाज में ऊंच-नीच का भाव दृढ़तर होता है। जो जन्म-जन्मान्तर से विधिवत साधना में लगा है वह दूसरों से निसर्गतः श्रेष्ठ होगा ही। अतएव उसके द्वारा अनुशासित होकर जनसाधारण क्यों न अपना कल्याण करें! राजनैतिक क्षेत्र में पायथागोरसी दर्शन कुलीनतन्त्र के अनुकूल पड़ा, यद्यपि यह उसका केवल तात्कालिक राजनैतिक प्रभाव था। दार्शनिक रूप से तो प्लेटो का राज्य-दर्शन ही उसका उत्तराधिकारी माना जा सकता है; जिसमें दार्शनिक शासक का आदर्श स्थापित किया गया। पायथागोरस के समय में जनतन्त्र विरोधी शक्तियों ने उसका दामन पकड़ा। परिणामतः जब क्रोटन में जनतन्त्र की विजय हुई तो पायथागोरस का विद्यालय तथा उसके अनुयाइयों को भी कुसमय देखना पड़ा।

३. यूनान को सभ्य जीवन में प्रवेश करते ही उत्कृष्ट भौतिक सभ्यता प्राप्त हो गई। भौतिक सभ्यता ग्रहण करना, जहां तक वह केवल 'हाथ की सफाई' और मांस-पेशियों का नियंत्रण है, सहज ही ग्रहण की जा सकती है; किन्तु उसके पीछे जो आध्यात्मिक तथा अन्तःकरण की संस्कृति है, वह तो पुराने समाज की साधना और उत्थान-पतनपूर्ण लम्बे जीवन का परिणाम होती है; और उसे ग्रहण करना सरल नहीं होता। यूनान भौतिक जीवन के वाह्य स्वरूप से ही चमत्कृत होकर, रीझ गया था। जब पायथागोरस ने पदार्पण किया उस समय तो वह पदार्थवाद द्वारा मुग्ध हो चुका

*श्री डब्लू० टी० स्टेस के मत से पायथागोरसी लोग राजनीति में हस्तक्षेप करते थे और एक समय क्रोटन के शासन की बागडोर भी उन्होंने अपने हाथ में ले ली थी।

था और आयोनिया के समृद्ध व्यापारिक केन्द्र मिलेटस के दार्शनिक पदार्थवादी दृष्टिकोण अनन्य भाव से ग्रहण कर रहे थे ।

पायथागोरस का आध्यात्मिक दर्शन एवं तज्जनित राजनैतिक निष्कर्ष यूनानके उस वर्ग के द्वारा स्वीकृत हुआ, जो यूरोप के इतिहास में उत्तरोत्तर क्षीण होता चला गया, किन्तु गणित सम्बन्धी उसकी देन पदार्थ-वादियों के काम की सिद्ध हुई । आज तक पाश्चात्य जगत में पायथागोरस का सम्मान इसी पर अधिकांशतः आधारित है, क्योंकि उसकी आध्या-त्मिक बातें तो वहां केवल कौतूहलोत्पादक ही होकर रह गई। यूनान के दार्शनिकों में जो पायथागोरस से प्रभावित हुए उनमें साक्रेटीज, प्लेटो, अरिस्टाटिल मुख्यतः उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त अनेक राज्यनेताओं ने व्यवहारिक क्षेत्र में उसके दर्शन के आधार पर आचरण करने का प्रयास किया । ई० पू० चौथी शताब्दी में तरेन्तुम का जनरल आरकाइटस प्रसिद्ध पायथागोरसी दार्शनिक था। वह अपने शिष्यों को निकटस्थ उद्यान में बैठ कर उपदेश और शिक्षा देता था । प्लेटो का समकालीन होने के कारण यदि आरकाइटस के जीवन ने उसके विचारों को प्रभावित किया हो तो आश्चर्य नहीं । प्लेटो के दार्शनिक शासक तथा आरकाइटस में समानता ऐसा सोचने के लिये बाध्य करती है ।

प्लेटो के राज्य-दर्शन पर पायथागोरसी विचार-धारा का गहरा प्रभाव पड़ा । प्लेटो भी गणित का आधार लेकर न्याय की परिभाषा करता था। भौतिक पक्ष की अपेक्षा अध्यात्म की प्रधानता उसने स्वीकार की थी । उसने भी मानव-स्वभाव के तीन प्रकार माने और उसी के अनुरूप समाज का संगठन प्रस्तावित किया । अन्तःकरण को शुद्ध करने तथा उसको संस्कृत करने के जो उपाय उसने रक्खे वे पायथागोरस के विद्यालय से मिलते-जुलते थे । गणित और संगीत के द्वारा मन और बुद्धि का उत्थान करने में उसका विश्वास था। पायथागोरस के विद्यालय में सभी सदस्य एक साथ भोजन करते थे और प्लेटों के साम्यवाद का

व्यवहारिक रूप वहां प्रचलित था। यह वहीं का वाक्य है कि 'मित्र की वस्तु सबकी वस्तु है'। स्त्री-पुरुष की समानता का प्लेटा का विचार पायथोगोरसी प्रभाव था।

पायथागोरसियों के 'संतुलन-सिद्धान्त' तथा 'अति-वर्जन' को यूनानी संस्कार में अनुकूलता मिली। डेलफी और सोलन इसके पूर्वगामी समर्थक एवं प्रचारक हो चुके थे। अतएव पायथागोरसी विचार परम्परा के इस अंश का सम्पूर्ण यूनानी जगत में आदर हुआ। अरिस्टाटिल ने तो इसे इतने विशद रूप से प्रयोग किया कि उसका सम्पूर्ण राज्य-सिद्धान्त इसी पर आधारित कहा जा सकता है।

पायथागोरस का व्यक्तित्व भले ही आज से बहुत पहले कल्पनामय जनश्रुतियों के बादलों में धुंधला हो चुका था, किन्तु उसके नाम से जो दर्शन-परम्परा विकसित हुई उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैला। साक्रेटीज की रहस्यमय एवं गूढ़ मुग्धावस्था, अलौकिक सत्ता की ओर उसका संकेत, आत्मा की अमरता में उसका विश्वास, प्लेटो का राज्य-दर्शन, समाज और जीवन-निर्माण के लिये उसकी एक विशिष्ट योजना, अरिस्टाटिल 'का संतुलन-सिद्धान्त' आदि अनेक में से केवल कुछ ही उदाहरण हैं जिनसे पायथागोरस के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

साफिस्ट

सामाजिक जीवन के आदिकाल में मनुष्य समाज के विविध नियमों एवं विश्वासों तथा प्रचलनों से जकड़ा हुआ था। अपने कबीले के नियम, अपने कुटुम्ब के नियम, तथा अनेक प्रचलित जादू-टोनों का जाल उसके चारों ओर फैला था। उन नियमों का जन्म कैसे हुआ इसका पता उस समय किसी को नहीं था। इसलिये कदाचित अत्यन्त धुंधले ढंग से वे नैसर्गिक माने जाने लगे। जिस प्रकार देवताओं की स्वयं सृष्टि करके मनुष्य उनका दास बन गया और भूल गया कि यह उसी की सृष्टि है। उसी प्रकार सामाजिक नियम भी मनुष्य को अत्यन्त कठोर एवं अपरिवर्तनीय दिखाई देते थे। मनुष्य सामाजिक नियमों की दृढ़ श्रृंखला में बंधा था और जानता नहीं था कि इस जंजीर की हर एक कड़ी उसी की गढ़ी हुई है। समाज में प्रत्येक कार्य का परिणाम निश्चित था। उसे बदलने की सामर्थ्य व्यक्ति में नहीं थी। किन्तु इस प्रकार से जकड़े हुए समाज में से व्यक्ति जब बाहर

झांकता तो उसे अपने चारों ओर व्यापक नियमों के विस्तृत क्षेत्र में स्वछन्द प्रकृति के दर्शन मिलते थे।

उसकी कल्पना कब शान्त बैठने वाली थी। उसकी उड़ान ने कभी सीमाओं को स्वीकार नहीं किया। समाज के नियमों से परिचित थी ही, प्रकृति में भी उसे कुछ व्यापकतर नियमों का आभास प्रतीत हुआ। वे चाहे वास्तविक रहे हों अथवा अपने ही जीवन की प्रतिच्छाया प्रकृति में भी देख कर उसने नियमों की कल्पना कर ली हो; किंतु आज तक मनुष्य अपनी प्राचीन धारणा, कि समस्त भौतिक जगत व्यापक नियमों का अनुशीलन करता है, छोड़ नहीं सका, भले ही उसे समय-समय पर उसमें परिवर्तन करने पड़ें। प्रारंभ में कुछ लोगों ने जल-अग्नि-सिद्धान्त की स्थापना की। मानव-समाज को प्राकृतिक नियमों से मुक्त नहीं समझा गया। न्याय-सिद्धान्त के अनुसार, जो न्याय सूर्य को अपने पथ पर चलने के लिए बाध्य करता है उसी के अनुशासन में समाज के व्यक्तियों को अपना-अपना कर्त्तव्य करना पड़ता है। दो में से एक भी यदि उस न्याय-मार्ग को छोड़ दें तो हलचल मच जाय। अतएव प्रकृति का प्रत्येक परमाणु अपने-अपने स्थान पर कार्य करता है और समाज में व्यक्ति भी नियम-बद्ध है।

प्राकृतिक नियम और व्यक्तिवाद

जहां एक ओर समाज की नियम बद्धता का प्रभाव प्रकृति के समझने पर पड़ा, वहां प्रकृति के व्यापक नियमों का प्रभाव भी समाज पर पड़ा। व्यक्ति को प्रतीत हुआ कि प्राकृतिक नियमों को ही नैसर्गिक एवं अपरिवर्तनीय माना जा सकता है। और जो यह नियमों का जाल समाज पर छाया है, कृत्रिम है; ढोंग है। प्राकृतिक नियम मनुष्य नहीं बदल सकता, वास्तविक अनाचार इन्हीं नियमों का विरोध करना है; कृत्रिम नियमों की अवहेलना अनाचार एवं दण्डनीय नहीं होना चाहिये। प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करके मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। उनके पालन

करने में यदि कृत्रिम नियम बाधक बनते हैं तो उन्हें अस्वीकार करना चाहिये। यह बात धारणा एवं विश्वास में कितनी दृढ़मूल हो चुकी थी, उस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है जो अन्टिगोन ने क्रेमोन को दिया था:

न है मुझे विवास कि, तू क्षण-भंगुर, मानव,
श्वास मात्र से उड़ा सकेगा नियम अनश्वर,
अमिट, अलिखित, नैसर्गिक,
किसे ज्ञात, कब हुआ विश्व में उनका उद्भव !

इसी प्रकार की भावना उस समय के कुछ प्रचलित आप्त वाक्यों में भी देखी जाती है; जैसे—'सच्चा मनुष्य प्रकृति का प्रिय सभ्य है'। जो केवल मानव-सृष्ट नियमों का पालन करता है वह सच्चा नहीं है। सच्चा मनुष्य वह है जो प्राकृतिक नियमों का पालन करे, प्रकृति का प्रिय हो। परम्परागत नियमों से जकड़े समाज में जनसाधारण की दुर्दशा देखकर सोलन द्रवीभूत हुआ था और उसने उनके त्राण के लिये उपाय भी किये। किन्तु, या तो समाज में आमूल परिवर्तन कर देने का उस में साहस नहीं था अथवा उसके हृदय में परम्पराओं के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। उनका रहस्य भी उसे विदित नहीं था। कदाचित स्वयं नियम-सृष्टा होने के कारण उसमें नियमों के प्रति आदर होना स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त उसके समय में जमींदार कुलीन-वर्ग इतना सुदृढ़ था कि उसे असंतुष्ट करने का साहस भी वह नहीं कर सकता था। आयोनिया-वासी तथा पाइथागोरसी दार्शनिकों ने जब प्रकृति के व्यापक नियमों का अन्वेषण कर दिया और उनकी रचनाओंमें प्राकृतिक नियमों को स्पष्ट करने में व्यवहृत सामाजिक जीवन के उदाहरणों से संकेत पाकर, सहज ही समाज के सम्बन्ध में उठने वाले विचार अपनी सीमाओं के व्यापक क्षेत्र घेरने लगे। पहले प्रकृति के रूप का वर्णन समाज से उदाहरण लेकर होता था। अब बात उलट गई, समाज के वास्तविक रूप का अन्वेषण होने लगा और उदाहरण प्रकृति के व्यापर्क स्वरूप से दिये जाने लगे।

दर्शन ने जनसाधारण को मुक्त करने में बहुत बड़ा सहयोग दिया। इसने समाज के संकुचित नियमों का मूलोच्छेदन किया तथा दलित वर्ग का उनके प्रति अंध विश्वास दूर किया।

सामाजिक नियमों को नैसर्गिक मानने वाले विश्वास को ठेस पहुंचाने में नवस्थापित उपनिवेशों का भी बड़ा हाथ था। उन आबादियोंके नायक यथा आवश्यकता नियम बनाते-बिगाड़ते रहते थे और नयी परम्परा स्थापित होते अपनी आंखों देख व्यक्ति उन्हें कभी नैसर्गिक नहीं मान सकता था। उन्हें देख प्राचीन नगरों के भी नेत्र खुले। इसके अतिरिक्त आदि इतिहासकार हेरोडोटस के वर्णन ने बहुत कुछ इसी दिशा में योग दिया। उसने अनेक जातियों एवं देशों का हाल लिखा जिनमें विविध प्रकार के नियम प्रचलित थे। एक नियम एक समाज तथा देश में अत्यन्त श्रेयस्कर और उसके विपरीत दूसरे नियम दूसरी जगह श्रेयस्कर देख कर भी उनकी अपौरुषेयता पर सन्देह होना स्वाभाविक ही था। इस सबका परिणाम यह हुआ कि प्राचीन नगरों की दृढ़ स्थापित परम्परागत व्यवस्थाओं के विरुद्ध लोग सिर उठाने लगे। व्यापक प्राकृतिक नियमों तथा संकीर्ण स्थानीय सामाजिक नियमों के बीच संघर्ष चल पड़ा।

दूसरी बार पांचवीं शती के अन्तिम चरण में पुनः यूनान के कुलीन वर्ग के सामने संकट उपस्थित हो गया। इस बार परिस्थिति उसके बहुत प्रतिकूल थी। यह वर्ग मुख्यतः जमींदार वर्ग था जिसकी आय निश्चित और सीमित थी। किंतु अब इसके समकक्ष तथा प्रायः इसके समान ही धनसम्पन्न व्यापारी वर्ग उठ खड़ा हुआ। विदेश के व्यापार से यूनान में कुछ लोग काफी सम्पन्न हो गये थे और यह लोग कुलीन वर्ग तथा कुलीनतंत्र के घोर विरोधी थे। शासन-शक्ति कुलीन वर्ग के हाथ से निकाल लेने के लिए जनसाधारण की शक्ति यह अपने साथ लिये थे और जनतन्त्र के पक्षपाती थे। विदेशी व्यापार की वृद्धि के साथ-साथ यूनान

की नौ-सेना भी अधिक शक्तिमान तथा बड़ी हो गयी थी; क्योंकि व्यापारी जहाजों की रक्षा के लिये सैनिक नावें भी आवश्यक होती थी। जल-सेना सदा से अधिक जनतंत्रात्मक तथा थल सेना कुलीनवाद से अधिक प्रभावित देखी गई हैं। इस प्रकार सेना के क्षेत्र में भी परिस्थिति कुलीन वर्ग के लिए नैराश्यपूर्ण ही समझनी चाहिये। अन्त में, पारसीक आक्रमण से यूनानी राष्ट्र जीवित बच गया और विजयी रहा यह उसके लिये बड़े गौरव की बात थी। किन्तु इस भीषण आंधी में रेशमी डोर से बुना हुआ कुलीनवाद का जाल इतना क्षतविक्षत हो गया कि उसकी मरम्मत की कोई आशा नहीं रह गई। इधर विजय के उल्लास में यूनान का जन-साधारण ऐसा उन्मत्त हुआ कि उसे किसी नियंत्रण की परवाह न रही। छोटे-बड़े का भेद उसकी दृष्टि से ओझल हो गया। जनसाधारण ने देखा कि उससे बड़ा तो कोई नहीं है,* आपत्काल में उसी के पौरुष से मातृभूमि की रक्षा हुई, वही इसका सच्चा अधिकारी है।

इस प्रकार पांचवी शती के अंतिम दिनों में सामाजिक, राजनैतिक तथा दार्शनिक सभी दिशायें कुलीनवाद के प्रतिकूल तथा जनतन्त्र के अनुकूल हो रही थीं। यही कारण है कि इसके बाद, एथेन्स विशेष रूप से तथा समस्त यूनान जगत सामान्य रूप से अस्तव्यस्त दिखाई देता है। सभी अपने अपने राग अलापते दिखाई पड़ते हैं। न कोई व्यवस्थित

*पालिटिक्स १३४१, व ३०.२ में आरिस्टाटिल कहता है 'अपनी विजय के मद में लोग पारसीक युद्ध के बाद और भी आगे बढ़े : बिना किसी भेद के संपूर्ण ज्ञान को वह अपना क्षेत्र मान बैठे तथा विस्तृत से विस्तृततर क्षेत्र के अध्ययन में सलंग्न हो गये।' इस सम्बन्ध में जिमर्न का यह कथन कि 'अपोलो देवता अपमानित होकर तटस्थ खड़े रह गये' उल्लेखनीय है। पारसीक युद्धके उपरान्त डेल्फी का प्रभाव बुरी तरह नष्ट हो गया था।

न तो शासन-प्रणाली, न समाज और न दर्शन ही इस युग में शेष रह जाता है। ऐसे समय में, जब कि देश तूफानों के बीच गुजर चुका था और अपनी हस्ती सम्हाल भी नहीं पाया था, यूनान में साफिस्टों का प्रादुर्भाव हुआ।

साफिस्ट कौन थे

ईसा पूर्व पांचवीं शती में यूनान के विचारजगत की क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले साफिस्ट ही थे। इन्होंने न केवल मानसिक आन्दोलन ही व्यक्त किया बल्कि पथ-प्रदर्शक भी बने। जनतन्त्र का उदय वेग से हो रहा था। वक्तृता उस समय के नेताओं का प्रधान साधन थी। जो जन-समूह को अपनी वाणी से मुग्ध कर ले वह सबसे शक्तिमान नेता समझा जाता था। वक्तृता के शिक्षकों की तथा उसकी एक सुव्यवस्थित कला की आवश्यकता बढ़ने लगी। साफिस्टों ने इस काम को अपनाया तथा दर्शन, इतिहास, काव्य आदि के साथ वक्तृता की शिक्षा भी देने लगे। यद्यपि यूनान में शिक्षा कभी बेची नहीं जाती थी और सब साफिस्ट भी ऐसे न थे जो शुल्क लेकर ही शिक्षा देते थे, किन्तु कुछ साफिस्ट शुल्क लेते थे; और उनमें से कुछ ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। कदाचित धन लेकर शिक्षा देने की प्रथा बहुत प्राचीन नहीं थी तथा प्रारंभिक साफिस्टों ने भी इसे अपनाया नहीं था। किन्तु प्लेटो तथा अरिस्टाटिल के समय निश्चित ही यह अभ्यास तीव्रता से चल पड़ा था।

'साफिस्ट' शब्द का मौलिक तात्पर्य था—चतुर और विवेकी पुरुष, जो समाज में अपनी तीव्र बुद्धि और प्रतिभा के कारण सामान्यजन से प्रथक दिखाई दे। इस दृष्टि से वे व्यक्ति जो संगीत से लेकर वक्तृता तथा विवाद-कला तक किसी में, सामान्य व्यक्ति से अधिक योग्यता वाले होते थे और बहुधा शिक्षा देने का काम करते थे साफिस्ट कहलाते थे। सोलन,पायथागोरस,संगीत-शिक्षक डेमोन, चारण थेमीरस तथा विवेकवान साक्रेटीज, यह सभी साफिस्ट कहलाते थे। स्वयं प्लेटो को ही इसोक्रेटीज

ने 'साफिस्ट' कहकर सम्बोधन किया है। पिरेहि ने, सभी दार्शनिकों को, जिनमें प्लेटो तथा अरिस्टाटिल भी सम्मिलित हैं, साफिस्ट नाम से उल्लेख किया।

यह अर्थ 'साफिस्ट' शब्द का पुराना अर्थ था। लेकिन दार्शनिकों के प्रति जनसाधारण का भाव विशुद्ध सम्मान का ही नहीं था। उसमें कुछ प्रतिकूल भावनाओं का भी मिश्रण था। कुछ लोगों ने अपने घृणा आदि भावों को इसी शब्द से व्यक्त भी किया। साफिस्ट इस प्रकार की भावनाओं के पात्र और भी अधिक होने लगे जब उनमें से कुछ ने पारिश्रमिक लेकर शिक्षा-कार्य प्रारंभ कर दिया। जब धन लेकर शिक्षा देने लगे तो उच्च कोटि के साफिस्टों से शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य केवल धनवान लोगों तक ही सीमित हो गया और वे सात्रेटीज की भांति लोक-शिक्षक के रूप में आदर न पा सके। स्वयं सात्रेटीज शिक्षा बेचने को दास-कर्म की भांति हेय मानता था। इससे शिक्षक मुक्त-भाव से अपना काम नहीं कर सकता और शिष्य की लघु-बुद्धि से वह नियंत्रित-सा हो जाता है। पारिश्रमिक की मध्यस्थता से गुरु-शिष्य संबंध में आदर और स्नेह के भाव गल जाते हैं और उनके स्थान पर गुरु-शिष्य के बीच स्वामी-सेवक सम्बन्ध की काली छाया पड़ने लगती है।

वेतन-भोगी शिक्षकों के प्रति अत्यन्त घृणापूर्ण व्यवहार सात्रेटीज और उससे भी अधिक प्लेटो का था। प्लेटो ने अपने ग्रंथों में 'साफिस्ट' शब्द के उज्वल अर्थ तो एकदम ही नष्ट कर दिये और उसे अत्यन्त निम्न-भावों से अनुरंजित कर दिया। अपने गुरु के चरण-चिन्हों पर चल कर अरिस्टाटिल ने जो परिभाषा 'साफिस्ट' की दी वह इस प्रकार है : एक धोखेबाज, ज्ञानी होने का ढोंग करने वाला, जो धन कमाने के लिये मिथ्या बातों को भी सत्यका रूप देकर प्रस्तुत करता है वह साफिस्ट है।' प्लेटो ने भी 'साफिस्ट क्या है ?' यह बताने के लिये यत्न किया। और ग्रोट के शब्दों में यह रोचक बात है कि उसकी परिभाषा में सात्रेटीज

भी आ जाता है। कदाचित अन्य लोगों की अपेक्षा यह परिभाषा उसके ही अधिक अनुकूल है। सिसरो ने साफिस्ट की परिभाषा की है: साफिस्ट वह है जो दर्शन का अध्ययन दिखावे के लिये अथवा धन कमाने के लिये करता है।* इस सम्बन्ध में बर्ट्रेण्ड रसेल की यह आपत्ति सर्वथा उचित ही प्रतीत होती है कि आधुनिक अध्यापकों को, जो स्वयं धन या यश के लिये ही श्रम करते हैं, साफिस्टों को भला-बुरा कहने का साहस नहीं करना चाहिये।

जहां तक पैसा लेकर शिक्षा देने की बात है, और इस आधार पर सभी साफिस्टों को लालची और लोभी कहना है, जार्ज ग्रोट इससे सहमत नहीं है। प्लेटो आदि दार्शनिकों का यह लांछन कि वे पैसे के लिये चालाकी और मक्कारी भी करते थे सर्वथा अनुचित है। इस सम्बन्ध में प्रोटागोरस का एक वाक्य उद्धृत करके बड़ी रोचकता उत्पन्न की जा सकती है। वह कहता है, 'मैं पहले से कुछ नहीं तै करता। जब कोई शिष्य मेरे यहां से बिदा होता है, तो मैं परिस्थिति तथा समय के विचार से अपनी मांग पेश करता हूं; और मैं कह देता हूं यदि वह इसे अधिक समझता है तो वह स्वयं ही निश्चित करें।' बाद में उसे देवालय में शपथ लेनी पड़ती थी कि जो कुछ वह अपने शिक्षक को दे रहा है उसे ही उचित मानता है। ग्रोट के मत से पारिश्रमिक लेने का कोई दूसरा भद्र रूप नहीं हो सकता। और यह काम करने का तरीका भ्रष्ट लोगों का नहीं होता, जैसा कि साफिस्टों पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाता है।

भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता का प्रचार करने का आरोप जो साफिस्टों पर लगाया जाता है उससे साक्रेटीज भी मुक्त नहीं था। किंतु अरिस्टाटिल ने इस आरोप का आधार, जिसे 'प्रोटागोरस की शर्त' के व्यंग्यात्मक नाम से उसने प्रचारित किया था, वह केवल यही था कि प्रोटागोरस किसी भी पक्ष का समर्थन करने के लिये तर्कों का समूह अपने शिष्य को दे देता

*जार्ज ग्रोटेकृत 'हिस्ट्री आव ग्रीस' खण्ड ८ पृष्ठ ४९३।

था। उसका यह कौशल वक्तृता-कला का अंग था और उस समय की आवश्यकता-पूर्ति के साथ-साथ अनेक उच्च कोटि के शिक्षकों द्वारा इस प्रकार का आचरण किया जाता था। साफिस्टों के पास तर्क का निषंग अक्षय था। शिष्य जिस पक्ष का अनुयायी बनना चाहता था, उसे ही पुष्ट करने के अनेक तर्क गुरु उसे दे सकता था। विरोधियों का खण्डन करने के लिये तर्क तथा विवाद करने की विविध परिस्थितियों का सामना करने के उपाय बताये जाते थे। विपक्षी को क्रुद्ध कर देना, भ्रम में डाल देना और कभी-कभी गुल-गपाड़े से उसकी वक्तृता प्रभावहीन कर डालना भी वक्तृता-कला का अंग था, जो कि जनतंत्र की आवश्यकता के रूप में उस समय पुष्पित पल्लवित हुई। सत्य के खोजी दार्शनिकों ने, इस रूप में, साफिस्ट वर्ग को नहीं देखा-समझा। किन्तु आधुनिक जनतंत्र में हम स्वयं देखते हैं, यह सभी उपाय कितनी प्रचुरता से राजनीति के क्षेत्र में काम में लाये जाते हैं।

साफिस्ट अपनी शिक्षा को उपयोगी, सामयिक तथा व्यवहारिक कहते थे और सत्य-खोजियों के प्रति उनकी राय अच्छी नहीं होती थी। साफिस्ट इसोक्रेटीज अरिस्टाटिल तथा प्लेटो को आकाश-दर्शी मानता था। उन्हें अनुपयोगी तथा व्यर्थ समझ कर घृणा भी करता था। इसके प्रत्युत्तर में दार्शनिकों का जो रुख साफिस्टों के प्रति था उसका उल्लेख ऊपर की पंक्तियों में किया ही जा चुका है। दार्शनिकों तथा साफिस्ट-शिक्षकों के बीच वैमनस्य-भाव का बहुत बड़ा कारण यही था वे एक दूसरे की उपयोगिता तथा कार्य-क्षेत्र समझने और स्वीकार करने में असमर्थ रहे। दार्शनिक साक्रेटीज ने सत्य के लिये अपना जीवन उत्सर्ग किया, प्लेटो कल्पना के बादलों में अपने आदर्श का निर्माण करता रहा, व्यवहारिक राजनीति में अरिस्टाटिल को भी सफल कहना कठिन ही है। किन्तु साफिस्ट राजनीति के क्षेत्र में कूदने वालों को व्यवहारिक शिक्षा ही देते थे। होनहार राजनीतिज्ञों को वे 'सोचना, बोलना और व्यवहार

करना सिखाते थे'। व्यवहारिक राजनीति के इतने निकट पहुंचकर वे शिक्षा का कार्य करते थे कि उनमें से कुछ को पत्रकार भी कहा जा सकता है। अपने समय के सबसे अधिक प्रभावशाली यूनानी, इसोक्रेटीज ने वस्तुतः एक पत्र का सम्पादन किया था। कुछ लोग अपने शिक्षक-कार्य के ही कारण जन-सभाओं में भाषण देने से वंचित कर दिये गये थे। उनकी वक्तृता के आगे कौन टिक सकता था सभा में? जनतंत्र में असाधारण व्यक्तित्व के लिये स्थान नहीं होता।

यूनान-जगत में साफिस्ट की उपयोगिता के कारण जो सम्मान उन्हे प्राप्त था, उसे देखकर प्रतीत होता है कि प्लेटो आदि दार्शनिकों ने उनका भोण्डा चित्र प्रस्तुत करके सर्वथा उचित नहीं किया। प्रोटागोरस, प्रोडिक्स आदि साफिस्टों का विभिन्न नगरों में स्वागत होता था। साफिस्ट के आगमन की सूचना देने के लिये, हिप्पोक्रेट्स इतना उतावला हो उठा कि उसने साक्रेटीज को बड़े भोर ही जगा दिया, जिससे साक्रेटीज भेंट करके उसकी शिक्षाओं से लाभ उठा सके। साफिस्टों का मूल्यांकन साक्रेटीज अथवा प्लेटो के उच्च आदर्श के धरातल से करना न्यायसंगत न होगा। उसमें में तो 'पेरिकिलस और किमोन भी जनता की वासनाओं एवं तृष्णाओं को ही तृप्त करते दिखाए गए हैं।' किन्तु तत्कालीन राजनैतिक जीवन की वास्तविक परिस्थिति में पेरिकिलस से भी अधिक साफिस्ट व्यापक और प्रभावशाली थे। वे अपने समय के सूत्रधार अथवा डब्लू० बी० स्टेस के शब्दों में 'अपने समय की सन्तान थे'। उनकी शिक्षाओं में वही अभिव्यक्त था जो यूनान के जीवन में घर कर चुका था।

साफिस्टवाद नाम से साफिस्टों ने किसी दर्शन-प्रणाली का निर्माण नहीं किया। सभी पृथक-पृथक मतावलम्बी थे। किसी एक दर्शन का निर्माण नहीं हो सका। इनके विचारों की कोई सीमा नहीं थी। विभिन्न विषयों पर, व्याकरण और वक्तृता से लेकर जीव-विज्ञान तक इनके चिंतन के विषय थे। किंतु एक बात में यह सभी समान थे। वह

यह कि प्रायः सभी साफिस्टों का दृष्टिकोण प्रत्येक विषय में, नवीन तथा निराला होता था। हर पद पर रूढ़िवादी प्रणाली छोड़कर चलते हुए यह क्रान्तिकारी शिक्षक देश को चौंका रहे थे।

विदेशी होते हुए भी, इनकी देन यूनान के समाज, जीवन एवं विचार भंडारके लिए असाधारण थी। सबसे सराहनीय कार्य जो इनसे बन पड़ा, वह था यूनान के भौतिकवाद की निर्जीव जड़ता से दर्शन का उद्धार कर उसे जीवन से स्पंदित कर देना।*अब चिन्तन का केन्द्र प्रकृति से हटकर मनुष्य हो गया। प्रोटागोरस के सिद्धान्त 'प्रत्येक वस्तु का मानदंड मनुष्य है' ने यूनान के दर्शन की दिशा ही घुमा दी। समस्त चिन्तन मनुष्य के लिये होने लगा। सामाजिक नियमों को नैसर्गिक समझना पुरानी मिथ्या धारणा हो चली; न्याय को भी कुछ लोग परम्परा एवं रुढ़ि का ही परिणाम समझने लगे। दास तथा नागरिकों का भेद कृत्रिम एवं अनुचित मानने वाले लोग प्रगट हो गये और यहां-वहां लोग कहते, 'प्रकृति किसी को दास नहीं बनाती, सभी समान और स्वतन्त्र हैं।' यूनान में साफिस्टों ने तहलका मचा दिया।

गारगियस

गारगियस लियोन्टिनी का निवासी था और ई० पू० ४२७ में एथेंस आकर रहने लगा था। उस समय यूनान का सर्वाधिक उन्नत नगर होने के कारण एथेंस बुद्धि-जीवियों के लिये तीर्थ हो चला था। गारगियस का लिखा केवल एक निबंध ही उपलब्ध है। उसके दार्शनिक विचारों के अनुसार किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है; यदि अस्तित्व है तो वह अज्ञेय

*एथेन्स में भौतिक विज्ञान लानेवाला व्यक्ति पेरिकिल्स के समय में अनेक्सगोरस था; किन्तु उसमें सर्वप्रथम मानववाद का समावेश करने का श्रेय कदाचित उसके शिष्य आर्केलस को मिलना चाहिये, पुनः उसका शिष्य साक्रेटीज उसी दिशा में और भी आगे बढ़ा। देखिये बार्कर कृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ ५३।

है, उसे जाना नहीं जा सकता; और यदि यह मान लिया जाय कि पदार्थों का अस्तित्व है तथा उन्हें जाना भी जा सकता है, तो उनका ज्ञान अभिव्यक्त नहीं हो सकता, अर्थात् किसी को बताया नहीं जा सकता। अवश्य ही गारगियस का यह घोर नास्तिवादी दर्शन स्वीकार करना मुश्किल है, लेकिन यदि इस पर जार्ज ग्रोटे की भांति विचार किया जाय तो बहुत कुछ वह बुद्धिग्राह्य हो सकता है। पूर्वगामी दार्शनिक पारमेनाइडोज, जेनो आदि विविध रूपात्मक जगत को मिथ्या कहते थे और किसी चिरन्तन तथा व्यापक तत्व का अन्वेषण करना चाहते थे। आयोनिया और एलिया के दर्शन द्वारा स्थापित इसी एक व्यापक तत्व की स्थापना पर गारगियस नास्तिवादी मत प्रगट करता है। जगत की वाह्य अनेकरूपात्मकता को तो वे भी अस्तित्वहीन कहते थे।

इसी प्रकार की विचार-भूमि पर खड़े हो कर यदि देखा जाय तो गारगियस का दार्शनिक तथ्य सारयुक्त प्रतीत होगा। उसके दार्शनिक विचारों का व्यवहारिक हेतु भी था। साफिस्ट तो दार्शनिक से अधिक व्यवहारिक शिक्षक थे ही। वह अपने शिष्यों को, अस्तित्वहीन तत्व के चिन्तन से प्रथक रहकर व्यवहारिक जगत में सक्रिय होने तथा कौशल प्राप्त करने की शिक्षा देता था। गारगियस प्रमुखतः वक्तृता-शिक्षक था और वक्तृता उदीयमान जनतंत्र में अग्रणी बनने के लिये परम उपयोगी साधन था।

प्रोटागोरस

ज्ञात साफिस्टों में यही सबसे प्राचीन माना जाता है। इसका जन्म अब्देरा नगरमें लगभग ४८०ई०पू० में हुआ। प्रोटागोरसने अपना अधिकांश जीवन भ्रमण करने में बिताया और अन्त में एथेंस में बस जाने के विचार से वहां रहने लगा। लेकिन इसके विचारोंमें अधर्मी होने की गंध थी, जिससे जन-विरोध उठ खड़ा हुआ और इसे एथेंस छोड़ देना पड़ा। इसकी किसी पुस्तक में लिखा था 'देवताओं के सम्बन्ध में मैं कुछ भी कहने में

असमर्थ हूं। मैं नहीं कह सकता उनका अस्तित्व है भी अथवा नहीं।' एथेंस के लोगों को विरुद्ध कर देने के लिये इतना पर्याप्त था। हो सकता है इसमें राजनैतिक हेतु भी हो, जैसा कि धर्म की नकाब में वह प्रायः हुआ करता है। एथेंस छोड़कर प्रोटागोरस सिसली में आबाद हुआ। कहा जाता है ई० पू० ४१० में उसे जल-समाधि प्राप्त हुई।

प्रोटागोरस अपने मानववाद के लिए प्रसिद्ध है। वह कहा करता था 'प्रत्येक वस्तु का मानदण्ड मनुष्य है।' उसका यह वाक्य बहुधा उद्धृत किया जाता है। साफिस्टों से पहले के दार्शनिक ऐन्द्रिक ज्ञान को गौण अथवा भ्रमात्मक तथा तर्कसिद्ध ज्ञान को वास्तविक कहते थे। किन्तु साफिस्टों ने इसके बिलकुल विपरीत माना कि ऐंद्रिक ज्ञान ही वास्तविक है। प्रोटागोरस के मत से प्रत्येक मनुष्य संसार को अपनी-अपनी दृष्टि से देखता है और वैसा ही संसार उसके लिए सत्य है।

गारगियस की ही भांति प्रोटागोरस आयोनिया के दर्शन का खण्डन करता हुआ किसी व्यापक तत्व के अस्तित्व को अस्वीकार करता तथा कहता था कि प्रत्येक पदार्थ का मानदण्ड मनुष्य है। वह अनुभववादी था। उसका अनुभववाद घोर व्यक्तिवाद में फंस जाता यदि 'सामान्य बुद्धि' की कल्पना से प्रोटागोरस ने उसे प्रशान्त बनाने की व्यवस्था न की होती। इसमें उसे सन्देह नहीं था कि प्रत्येक वस्तु वही है जैसा मनुष्य उसे जाने, किन्तु उसकी वास्तविकता का निर्णय बहुमत से होगा। अधिकांश मनुष्य किसी वस्तु को जैसा देखेंगे वह वस्तु वही स्वीकार की जायगी। इस प्रकार प्रोटागोरस का दर्शन जो अधिनायकवाद की ओर वैयक्तिक अनुभववाद के सहारे जा रहा था, सामान्य-बुद्धि को प्रधानता देकर जनतंत्र का समर्थक बन गया।

उसने अपनी एक पृथक तर्क-प्रणाली भी चलाई थी। उसका विश्वास था कि तर्क के द्वारा कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है। हर एक विषय के कम से कम दो पक्ष तो हो ही सकते हैं; जिस पक्ष को बहुमत का बल

प्राप्त हो, वह ठीक है । उसका ही समर्थन होना चाहिये । इससे स्पष्ट है कि जहां एक ओर वह तर्क को व्यापक शक्ति मानकर कहता है कि उससे सब कुछ सिद्ध किया जा सकता है, वहां दूसरी ओर वह व्यक्तिवादी नहीं हैं । व्यक्ति को तर्क द्वारा अपनी इच्छाओं को तर्कसंगत सिद्ध करने के स्थान पर बहुमत के समर्थन में उसका प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार सामान्य व्यक्ति की बुद्धि की प्रधानता को उसने स्थापित किया। सामान्य बुद्धि अधिकांश लोगों में होती है । बहुमत को ही सुदृढ़ करने के लिये विशेष बुद्धिवालों को अधिकाधिक तर्क ढूंढ़ने चाहिये । उसका खण्डन करने के हेतु नहीं ।

इस प्रकार का था उसका मानववाद और इस दृष्टिसे वह कहा करता था कि 'मनुष्य ही प्रत्येक वस्तु का मानदण्ड हैं ।' जड़ प्रकृति के स्थान पर उसके विचारों का केन्द्र मनुष्य था । वह आयोनिया के भौतिकवाद का कट्टर विरोधी था । क्योंकि आयोनिया का भौतिकवाद तो मानव-आचरण को जड़ प्रकृति के मानदण्ड से मापना चाहता था । उसके मन-प्राण को भी उन्हीं नियमों से नियंत्रित मानता था जिनका शासन जड़ प्रकृति पर छाया था । अतएव सामाजिक नियम भी, वह लोग उसी प्रकाश में बनाते थे ।

बहुमत के संमुख जिस प्रकार प्रोटागोरस ने, तर्क को गौण स्थान देकर व्यक्तिवाद से अपने विचारों की रक्षा की तथा अनुभववाद के आधार पर जनतंत्र को मान्यता दी; उसी प्रकार व्यक्ति की आवश्यकताओं को राज्य की स्थापना का मूल हेतु स्वीकार करते हुए भी, उसने प्रधानता कानून को ही दी । सदाचार में उसकी आस्था थी । अन्य साफिस्टों की भांति वह इन्हें कृत्रिम नहीं मानता था । अपने विचारों के समर्थन में उसने समाज के विकास तथा उत्पत्ति की एक एतिहासिक कल्पना का निर्माण किया । इसे उसने तीन चरणों में विभक्त किया । प्रथम में, मनुष्य, यद्यपि खेती बारी के कुछ उपाय जानता था, किन्तु सामाजिक

जीवन से बिल्कुल ही अपरिचित था; दूसरे में, व्यक्तिगत आवश्यकताओं की प्रेरणा पाकर समाज ने रूप ग्रहण किया, किन्तु सामाजिक जीवन के उपयोगी तथा आधारवत् नियमों से अपरिचित होने के कारण वह नव-निर्मित समाज शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गया। तब तीसरे चरण में, ज्यूस देवता ने दूतों के द्वारा, सामाजिक नियमों को धरती पर भेजा; जिन्हें पाकर मनुष्य सुखी हुआ। न्याय की स्थापना हुई; समाज बना और नये-नये नगर निर्मित हुए।

तृतीय चरण में, प्रोटागोरस ने यह दिखाया है कि कानून न केवल दैवी उद्गम से निःसृत हुए हैं, बल्कि मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है इनका निर्माण करना। द्वितीय चरण में समाज की असफलता इसी का द्योतक है। कानून की नैसर्गिकता के आधार पर भी वह आयोनिया के भौतिकवाद का विरोध करता था।

प्रोटागोरस मानता था कि राज्य का मूल कर्त्तव्य व्यक्ति को शिक्षा देना है। केवल इसलिये नहीं कि वह स्वयं एक शिक्षक था। उस समय तो यह यूनान की सामान्य धारणा थी। ज्यूस द्वारा दिये गये नियम-संयम की शिक्षा समाज के ही द्वारा व्यक्ति को प्राप्त हो सकती है। वह कहता था कि राज्य ही सच्चा शिक्षक है। इसके सभी कर्त्तव्य शिक्षा एवं संस्कृति के विचार से निश्चित हैं। माता-पिता, अध्यापक अथवा साफिस्ट आदि अनेक व्यक्तिगत शिक्षक समाज की ही शिक्षा के वाहन तथा राज्य के कर्त्तव्य में सहायक हैं एवं जनमत के प्रवक्ता हैं। इस कथन के द्वारा प्रोटागोरस ने व्यक्तिगत शिक्षकों के मत-स्वातंत्र्य को समाज तथा राज्य के आधीन कर दिया।

प्रोटागोरस के मत से मनुष्य का प्राकृतिक जीवन अत्यन्त कष्ट-मय था। उससे उद्धार पाने के लिये वह सतत इच्छुक था। पर समाज की स्थापना में वह तभी सफल हो सका जब नैसर्गिक कृपा प्राप्त हुई। अतएव 'प्रकृति' तथा 'कानून' की विषमता में प्रोटागोरस ने स्पष्टतया

कानून की श्रेष्ठता स्थापित की। एक ओर, प्लेटो की भांति, यद्यपि उसने राज्य को शिक्षा का सर्वोपरि साधन बताया, किन्तु दूसरी ओर असाधारण दार्शनिक शासकों को उसने कोई महत्व नहीं दिया। उसका विचार था कि ज्यूस देवता ने सबको सामान्य बुद्धि और योग्यता दी है कि वह समाज की शिक्षाओं तथा नियमों को ग्रहण कर सके; सुसंस्कृत जीवन व्यतीत कर सके। सामाजिक नियमों की नैसर्गिकता स्वीकार कर लेने के उपरान्त पण-सिद्धान्त (कॉन्ट्रैक्ट थ्योरी) के लिये गुंजाइश नहीं रह जाती। इसके अलावा, प्रतीत होता है इस मतका खोखलापन दिखाने के लिये ही उसने मानव-जीवन के विकास की कल्पना की थी।

संक्षेप में, कानून एवं जनमत की श्रेष्ठता में उसकी आस्था थी। वह कानून को नैसर्गिक तथा राज्य को विशाल शिक्षा-संस्था के रूप में देखता था। अपने सिद्धान्तों को उसने अनुभववाद तथा मानव-विकास की ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित किया था। प्लेटो ने 'प्रोटागोरस' नामक एक ग्रंथ लिखा, जिसमें साक्रेटीज तथा प्रोटागोरस के संवाद में राजनीति आदि विभिन्न सामाजिक विषयों पर विचार प्रगट किये गये हैं। विद्वानों का मत है कि प्रोटागोरस के नाम से उसमें जो मत व्यक्त किया गया है वह सचमुच प्रोटागोरस का मत था।* यद्यपि संवाद में साक्रेटीज ने उसके विचारों का विरोध कियाहै, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि साक्रेटीज की शिष्य परम्परा पर, प्लेटो और अरिस्टाटिल दोनों ही पर, प्रोटागोरस का प्रभाव पड़ा।

प्रोटागोरस एथेन्स की शासन-प्रणाली का समर्थक था। अपने 'सामान्य बुद्धि' के सिद्धान्त के आधार पर वह उसे अपने ढंग की सबसे अच्छी शासन-प्रणाली मानता था। ज्यूस देवता ने जैसी सब लोगों को

*देखिये बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ ६२ पर उद्धृत नैटार्प का मत।

बुद्धि दी है. उसी के अनुरूप वे अपना शासन चला रहे हैं। कोई राजनैतिक ढांचा, जो किसी विशिष्ट बुद्धि की उपज होगी, टिकाऊ नहीं होगा। उसका शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाना अवश्यंभावी है। इन्हीं तर्कों के आधार पर उसने एथेन्स के जनतंत्र का पक्ष-समर्थन किया है। यद्यपि साक्रेटीज ने इन्हें स्वीकार नहीं किया; किन्तु हम जानते हैं कि अरिस्टाटिल ने अपनी रचना 'पालिटिक्स' में कितनी तीव्र भाषा से इसकी स्थापना की है। प्रोटागोरस द्वारा राज्य को एक बृहत् शिक्षा-संस्था मानना, न्यूनाधिक प्लेटो तथा अरिस्टाटिल दोनों को ही स्वीकार था। प्लेटो ने तो अपने 'आदर्श राज्य' का पूरा ढांचा इसी विश्वास पर स्थापित किया।†

हिप्पियस

पांचवीं शती के साफिस्टों में हिप्पियस प्रमुख है। बार्कर के अनुसार हिप्पियस की बहुमुखी प्रतिभा साफिस्टों के लिये आदर्श थी। वह एक कवि था दार्शनिक तथा संगीतज्ञय भी था। सदाचार एवं धर्मशास्त्र का अधिकारी होते हुए वह जीव-विज्ञान तथा भौतिक शास्त्र में भी दखल रखता था; तात्पर्य यह कि वह क्या नहीं जानता था। एक बार वह अपने ही बनाये हुए वस्त्रों और जूतों में ओलम्पिक क्रीड़ा-महोत्सव में प्रगट हुआ। उसकी बौद्धिक विलक्षणता से सभी प्रभावित थे। उपलब्ध सामग्री के आधार पर माना जाता है कि कानून और प्रकृति के सम्बन्ध पर इसका अपना विशिष्ट मत था। वैसे तो वह कहता था कि न्याय और कानून एक ही है। जो कुछ न्याय-संगत होगा वही कानून में होगा, किन्तु जब इसने देखा कि कानून तो बार-बार बदलते रहते हैं, तो इसे कुछ शंका हुई। कदाचित इसके समाधान में ही इसने कानून तथा प्राकृतिक नियमों की विषमता स्वीकार की। इसने माना कि प्रकृति के नियम तो अपरिवर्तनीय हैं। इनके अनुकूल होकर ही न्यायानुकूल आचरण हो सकता है, यह चिरन्तन नियम राज्य के नियमों से श्रेष्ठ तथा अधिक माननीय हैं।

† देखिये बार्कर कृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ १३१।

इनकी प्राथमिकता है । राज्य का कानून स्थानीय तथा कृत्रिम होता है । किसी समय एथेन्स-वासियों को सम्बोधन करते हुए उसने कहा था, 'एक व्यापक प्रकृति के ही नागरिक होने के आधार पर मैं तुम सबको अपना सगा-सम्बन्धी मानता हूं, किन्तु कानून से नहीं; क्योंकि प्रकृति में तो एक जैसे व्यक्ति परस्पर सगे होते ही हैं । मानवता को संत्रस्त करने वाले राज्य-नियम प्रकृति के नियमों में हिंसा पूर्वक बाधा डालने वाले हैं ।'

हिप्पियसके ये शब्द बड़े महत्व पूर्ण थे; और उत्तरकालीन साफिस्टों के लिए पथ-प्रदर्शक थे । उनके विशिष्ट विचारों का यहीं से श्रीगणेश समझना चाहिये । प्रकृति तथा कानून की विषमता यहीं से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर बढ़ती दिखाई देती है ।अनेक विचार-धाराओं के घात-प्रतिघात से यूनान के अत्यन्त प्राचीन प्रचलन तथा विश्वास कांप उठे थे । यदि प्राकृतिक नियम ही श्रेष्ठ हैं, तो क्या समाजके कृत्रिम एवं अल्पजीवी नियमों की शिक्षा जैसा थोथा उद्देश्य ही राज्य का लक्ष्य हो सकता है । यदि प्रकृति की उन्मुक्त गोद में ही मानव का कल्याण है, तो क्या समाज के बंधन घातक नहीं हैं ? क्या उनसे मुक्त होने के लिये उसे राज्य और समाज के बंधनों को छिन्न-भिन्न नहीं कर देना चाहिये ? इस प्रकार के नये-नये प्रश्न, आने वाले दार्शनिकों की समस्या थे ।

प्रकृति तथा कानून की विषमता पर प्लेटो के मत तथा अर्नेस्ट बार्कर द्वारा उसके विश्लेषण की चर्चा यहां उपयोगी होगी । प्लेटो का कथन था कि यद्यपि साफिस्टों ने आयोनिया के भौतिकवाद का विरोध किया तथापि वे उससे प्रभावित थे । उनका प्रकृतिवाद भौतिकवाद से मुक्त नहीं था । उनकी समस्त धारणायें, सामाजिक अथवा वैज्ञानिक, सभी भौतिकवाद पर ही आश्रित थीं । आयोनिया के पूर्वकालीन दार्शनिकों ने विविधरूपात्मक प्रकृति में यद्यपि एक तत्व पाने की चेष्ठा की, किन्तु उनका चिन्तन आध्यात्मिक स्तर पर नहीं पहुंच सका । वे लगातार

किसी भौतिक एवं स्थूल पदार्थ की ही खोज करते रहे। सभी साफिस्ट व्यापक तत्व की पदार्थ रूप में ही कल्पना करते थे। अग्नि, जल, वायु के अतिरिक्त पायथागोरस की सर्वव्यापी 'संख्या' अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म होते हुए भी स्थानग्राही थी। अनेक्सगोरस का व्यापक तत्व हेतु (Reason) भी एक प्रकार का पदार्थ ही माना गया था।

इस प्रकार के दर्शन का अन्तिम रूप डिमोक्राइटस के कणवाद में प्रगट हुआ। उसका कहना था कि रंग, स्वाद इत्यादि पदार्थों के अनेक गुण कल्पित हैं। सृष्टि का मूल तत्व केवल असंख्य कण और शून्य हैं। इन्हीं के संघात से अनेकरूपात्मक सृष्टि का निर्माण हुआ है। आध्यात्मिक तत्व सर्वव्यापी होकर भी जगत की अनेकरूपता के विरुद्ध नहीं होता, किन्तु डिमोक्राइटस के कणवाद में शून्य और कण की कल्पना सृष्टि के संहार पर ही हो सकती है। अतएव उसमें, मूलतत्व तथा सृष्टि में विषमता है। यही बात सदाचार के सम्बन्ध में, कानून और प्रकृति की विषमता के लिए समझना चाहिए। यदि प्राकृतिक नियम भी कृत्रिम कानूनों की तरह ही विशिष्ट हैं, तो वे व्यापक न होकर समाज तथा राज्य द्वारा निर्मित कानूनों के विरुद्ध ही ग्रहण किये जा सकते हैं।

दोनों की विषमता उसी समय दूर हो सकती है जब दोनों के क्रीड़ा-तल अलग अलग हों। कृत्रिम नियम यदि भौतिक हैं तो व्यापक प्राकृतिक नियम आध्यात्मिक हों। किन्तु साफिस्टों के विचार आयोनिया के भौतिक-वाद से इतने प्रभावित थे कि वे इन दोनों तलों की प्रथक कल्पना नहीं कर सके और लगातार द्वैत की विषमता में उलझे रहे।

एन्टीफोन

यह अपने समय का गण्यमान साफिस्ट था। इसे कई ग्रंथों का लेखक माना जाता है, जिनमें 'स्वप्न-विचार', 'राजनीतिज्ञ' तथा 'सत्य' हैं। साफिस्ट एन्टीफोन की कुछ रचनाओं के कुछ अंश हाल ही में प्राप्त

हुए हैं । उनसे पता चलता है कि साफिस्टों के विचार पर भौतिक-वाद का कितना प्रभाव पड़ा । इसमें भौतिक विज्ञान के साथ-साथ सदाचार और राजनीति के अध्याय भी जुड़े हैं । इस ग्रंथ से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्लेटो ने अपनी रचनाओं में जिन विचारों को साफिस्टों का बताया वे सचमुच उनके ही थे ।

एन्टीफोन के लिये सत्य और प्रकृति समानार्थी शब्द हैं । सत्य और प्रकृति मनुष्य की इच्छाओं के आधीन नहीं हैं । वे मनुष्य-मनुष्य में भेद भी नहीं मानते । उसके लिये क्या यूनानी, क्या बरबर, सभी एक से हैं । प्रकृति के नियम अनिवार्य तथा अकाट्य हैं । जिस प्रकार जलाना अग्नि का स्वभाव है, यदि कोई उसे स्पर्श करेगा तो अवश्य दुखी होगा; उसी प्रकार प्रकृति से नियमों के विरुद्ध आचरण करनेवाला भी सुखी नहीं हो सकता । संसार का प्रत्येक प्राणी स्वभावतः आत्म-रक्षा चाहता है और मृत्यु तथा कष्ट से दूर रहना चाहता है । परिणामतः वे सभी पदार्थ जो जीवन के पोषक हैं, प्रिय तथा आकर्षक बन जाते हैं; प्रत्येक उन्हें प्राप्त करने का यत्न करता है ।

यह है एन्टीफोन का एकान्तिक व्यक्तिवाद, जिसमें, हाब्स की तरह प्रकृति को समाज का व्यवस्थापक नहीं माना गया है । हाब्स के अनुसार मनुष्य स्वभावतः व्यक्तिगत अधिकारों को परिसीमित कर सामाजिक जीवन में प्रवेश करता है । किन्तु एन्टीफोन इस प्रकार का मानव-स्वभाव नहीं मानता । उसका कहना है कि समाज तथा उसके नियम केवल कृत्रिम ही नहीं, कभी-कभी प्रकृति विरोधी भी होते हैं । उन नियमों को प्रचलित करने के लिए भयानक दण्डों की सृष्टि की गई तथा जन-मत के प्रभाव से भी व्यक्ति को प्राकृतिक पथ से विचलित किया जाता है । किन्तु इस मत के होते हुए भी एन्टीफोन राजद्रोह तथा समाजद्रोह की परामर्श नहीं देता । उसके अनुसार औचित्य इसमें है कि व्यक्ति, दण्डों से बचने के लिये, निगाह बचाकर प्राकृतिक आचरण कर ले । खुल कर विद्रोह

करने से दण्ड मिलेगा और प्राकृतिक उद्देश्य की अर्थात् जीवन-रक्षा आदि की क्षति होगी।

समाज और राज्य के नियम कृत्रिम हैं, इसलिये उनसे छिपकर आचरण संभव है। प्राकृतिक नियमों से छिपकर आचरण नहीं हो सकता। वे सर्वव्यापी हैं। उनकी अवहेलना करने वाला दण्ड से कदापि नहीं बच सकता। कृत्रिम नियमों में ऐसी शक्ति नहीं है। उनकी अवहेलना करके भी दण्ड से बचा जा सकता है। प्रकृति मनुष्य को आत्म-रक्षा के हेतु सुखदायी कार्य करने की ही प्रेरणा देती है। इस पथ से प्रथक करने वाले सदाचारादि के समस्त उपदेश व्यर्थ एवं मूर्खतापूर्ण हैं। वे सब सत्य-पथ से विचलित करने वाले हैं। राष्ट्रीयता एवं जातीयता के लिए सर्वस्व उत्सर्ग कर देने की भावनायें कृत्रिम और भ्रष्ट हैं। प्रकृति ने प्राणी को हर दशा में आत्मरक्षा का ही पाठ पढ़ाया है।

ग्लाकन

इसको प्लेटो और एडीमेन्टस का बड़ा भाई बताया जाता है। प्लेटो की 'रिपब्लिक' में इसे अत्यन्त महत्वांकाक्षी व्यक्ति बताया गया है।*
इसका कहना था कि स्वभावतः अन्याय करना ही अच्छा है। अन्याय भोगना बुरा है। जब मनुष्य एक को करके दूसरे से बच नहीं पाता तब वह समझौता करता है, अन्याय करनेवाले के साथ। उसी समय वह समाज तथा राज्य के नियमों का सम्मान करता है। उस समय राज्य-नियम ही न्याय है, वही सत्य है। इस प्रकार राज्य द्वारा मान्य न्याय, आदर्श तथा वास्तविक न्याय नहीं है। उससे प्राप्त होने वाला सन्तोष आदर्श नहीं है, क्योंकि उसका अस्तित्व तो एक व्यवहारिक आवश्यकता के वश होता है। 'वह सबल का प्राप्य नहीं, निर्बलों की आवश्यकता है।' अथवा, यदि शक्ति से ही प्राप्त है तो वह शक्ति, अल्प संख्यक सबलों के विरुद्ध निर्बलों के संगठन की शक्ति है।

---

* देखिये कार्नफोर्ड द्वारा अनूदित 'रिपब्लिक' पृष्ठ २६६।

केलिकिल्स

ग्लाकन, एन्टीफोन तथा प्रोटागोरस की गणना साफिस्टों के सौम्य-दल में हो सकती है। केलिकिल्स तथा थ्रेसीमेकस अपेक्षाकृत कहीं अधिक उग्रवादी थे। यह लोग शपथ की निष्ठा अथवा समाज और राज्य-नियमों को किसी प्रकार व्यक्तिके स्वाभाविक पथ पर रुकावट के रूप में नहीं देख सकते थे। केलिकिल्स का कहना था कि समाज और राज्य के नियम केवल निर्बलों का षडयंत्र है, जिससे वे सबलों को धोखा देकर उन्हें प्राप्य से वंचित रखते हैं। न्याय इसी में हैं कि सबल को अपनी इच्छा और सामर्थ्य भर मिले। राज्य तो निर्बलों की रक्षा और सबलों को स्वायत्त से वंचित रखने का साधन है। समानता का उपदेश तथा भ्रातृ-भाव आदि अनेक सदाचार संबंधी नियम सबलों को अधिकारहीन करने के उपाय हैं।

प्राकृतिक दशा में, जो वास्तविक न्यायपूर्ण दशा होती है, सबल को अपनी इच्छाएं दबाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। निर्बलों के समूह को वह अपनी इच्छापूर्ति का साधन बनाता है। उन्हें जिस अवस्था में रखना चाहता है, वे रहते हैं। जो कुछ उन्हें दे देता है, उसे वे पा लेते हैं। उसी में उन्हें संतोष करना पड़ता है। स्वतन्त्र राजनैतिक इकाइयों के पारस्परिक व्यवहार में यह नियम प्रचलित देखा जाता है। किन्तु जब समाज बन जाता है, उस समय जनसाधारण, जिसे अपनी निर्बलता का पता रहता है नियमों की स्थापना में ही अपना कल्याण देखते हैं। इसी से वे बलवान पर काबू पाते हैं। वे उसे सिंह-शावक की भांति पकड़ कर सामाजिक जीवन की शिक्षा देकर पालतू बना लेते हैं और इस प्रकार प्राकृतिक न्याय का बध कर डालते हैं। यदि न्याय की स्थापना हो और 'सिंह-शावक' को उचित अवसर मिले तो वह पुनः समाज के नियमों को ठुकरा कर तथा जन-मत की मोहक शृंखलाओं को तोड़कर अपने उचित स्थान पर समाज के शासक के रूप में प्रगट हो जाय। सामाजिक नियम और प्रकृति के नियम न केवल प्रथक हैं, वे परस्पर विपरीत हैं।

केलिकिल्स सात्रेटीज् को दोषी ठहराता है कि उसने इन दोनों में भ्रम उत्पन्न कर दिया ।

यद्यपि प्रकृति ने समानता नहीं बनाई; सृष्टि का प्राकृतिक नियम असमानता है; प्रकृति के राज्य में सबलों को निर्बलों की अपेक्षा अधिक मिलता है; किन्तु इस सम्बन्ध में केलिकिल्स केवल शारीरिक बल का ही उल्लेख नहीं करता। वह सबल उसे मानता है जिसके पास देह और बुद्धि दोनों के बल हों।

दो क्षेत्रों से केलिकिल्स को प्रेरणा मिली : प्रथम पशु-जगत दूसरा एथेन्स की साम्राज्यशाही शक्ति। पशुजगत में विशुद्ध बल-सिद्धान्त से ही निर्णय होते हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। कदाचित पशु-जगत से उदाहरण देना यूनान में बहुत प्रचलित था। दूसरा क्षेत्र राजनीति-जगत का है। एथेन्स की साम्राज्यशाही शक्ति पशुबल के आधार पर अन्य पराधीन नगर-राज्यों का दमन करती थी और उन्हें अपने सुख तथा विलास का साधन मात्र समझती थी। अर्नेस्ट बार्कर ने थ्यूसीडाइड्स से लेकर कुछ उदाहरण दिये हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है। एक स्थान पर एथेन्स का दूत मेलोस के पराधीनकृत निवासियों को सम्बोधन करते हुए कहता है; "तुम सब जानते हो और मैं भी जानता हूं कि जगत में न्याय का प्रश्न केवल समान स्थिति वालों के बीच उठता है। अन्यथा, शक्तिमान जो चाहते हैं, करते हैं और निर्बलों को जो कुछ सहन करना पड़ता है, सहते हैं।" उस समय एथेन्स की स्वार्थपरता से पीड़ित होकर ही केलिकिल्स ने बल-सिद्धान्त को जन्म दिया होगा।

इतिहासकार जार्ज ग्रोटे अन्य लेखकों के साथ केलिकिल्स को सोफिस्ट नहीं मानते और अपने मत के आधारस्वरूप निम्नलिखित तीन कारण प्रस्तुत करते हैं:

१. सात्रेटीज के साथ संवाद में जो विचार केलिकिल्स ने रक्खे उनका उच्चारण करना एथेंस में साहस की बात थी। स्वयं सात्रेटीज ने

उससे कहा, "जो कुछ तुम स्पष्ट रूप से कह रहे हो, दूसरे लोग उस बात का उच्चारण भी नहीं कर सकते।" एथेंस जनतंत्र और देवताओंके विरोधियों को कभी सहन नहीं कर सकता था और साफिस्ट जनतंत्र में ही प्रचलित धारणओं के आसपास के विचार प्रस्तुत कर तथा श्रीमानों की चाटुकारी करके धनोपार्जन करते थे। उन्हें साहसपूर्ण विचार प्रगट कर अपनी रोजी और जान दोनों खतरे में डालने की क्या जरूरत थी ? इसलिये जो विचार केलिकिल्स के हैं वे किसी साफिस्ट के होना संभव नहीं।

पिछले पृष्ठों में हम कई बार देख चुके हैं कि एथेंस को अपने विधान और कानून से कितना लगाव था। केलिकिल्स अपने विचारों में उसके प्रति स्पष्ट चुनौती घोषित करता है। किसी सार्वजनिक वक्ता के लिये यह एथेंस में संभव नहीं था। साफिस्टों के लिये तो और भी कम, जिन्हें अपने विचार पैसे के लिये गढ़ने पड़ते थे।

२. केलिकिल्स यदि वक्ता और शिक्षक होता तो अवश्य ही अपने विचारों को, चाहे मौलिक रूप में वे श्रोताओं के लिये कितने ही कर्णकटु क्यों न हों, उन्हें इस प्रकार से प्रस्तुत करता कि उनमें कठोरता न रहती और सहज ही श्रोताओं के गले के नीचे उतर सकते। जिस रूप में हम उन्हें पाते हैं, वे एथेंस के निवासियों को केवल भड़का ही सकते हैं, उनका संतुलन ही नष्ट कर सकते हैं। उनसे विचार करने की आशा नहीं कर सकते।

३. इससे यही प्रगट होता है कि केलिकिल्स साफिस्ट नहीं था। वह एथेंस-वासी सम्पन्न घरका एक युवक था, और शीघ्र ही राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए उत्सुक था। ग्रोट के अनुसार वह साफिस्टों से घृणा करता था। उनके उद्यम की ओर भी उसकी धारणा अनुकूल नहीं थी। फिर भी उसे साफिस्ट घोषित करना कहां तक उचित हो सकता है !

थ्रेसीमेकस

यह केलिकिल्स से भी अधिक उग्रवादी, अनुभववादी तथा आदर्श-हीन दार्शनिक प्रगट होता है । केलिकिल्स के बल-सिद्धान्त में नैसर्गिक होने की पवित्रता तथा आदर्शवाद था । उसकी दृष्टि में न्याय का कोई एक स्थाई, अटल एवं आदर्श मानदण्ड तो था ही; किन्तु थ्रेसीमेकस की परिभाषा में अन्यायपूर्ण शासन का अस्तित्व ही खत्म हो जाता है । उसका कहना था कि न्यायसंगत वही है जो किया जा सके । प्रत्येक कार्य के पीछे पर्याप्त बल होता है । अतएव बलवान जब जो अपने लिए हितकर समझ कर करे वही न्याय-पूर्ण है । न्याय-अन्याय की ऐसी वीभत्स परिभाषा उस समय के एथेन्स की राजनीति पर कलंक हैं । यह सिद्ध करती है कि उस समय बल के सहारे जीवन कि कितनी समस्याओं का फैसला कर लिया जाता था । केलिकिल्स और थ्रेसीमेकस में एक भेद और भी है । केलिकिल्स को अपने सिद्धान्त की स्थापना के लिये सामाजिक अवस्था का विघटन करना पड़ा । थ्रेसीमेकस ने समाज को ज्यों का त्यों ही स्वीकार करते हुए उसका अन्तरंग रहस्य प्रगट करने की चेष्टा की ।

जार्ज ग्रोटे के मत से थ्रेसीमेकस का दर्शन दोषयुक्त होते हुए भी वैसा वीभत्स नहीं था जैसा प्लेटो के ग्रंथ में उसे प्रस्तुत किया गया । इसका उत्तरदायित्व ग्रंथ-लेखक पर है, जिसने उसके विचारों को इस विधि से प्रस्तुत किया, जिसमें न्याय-प्रिय व्यक्ति दयनीय और अन्यायी की स्थिति उज्वल तथा श्रेष्ठ प्रतीत होती है । जनसाधारण में जो स्थापित एवं परम्परागत संस्कार इन दो कोटिके व्यक्तियों के प्रति होते हैं, उनको यह विचार कष्ट कर आघात के रूप में प्राप्त हुआ । थ्रेसीमेकस वक्ता और शिक्षक होकर अपने विचारों को इस भोंडे रूप में प्रस्तुत करेगा यह विश्वास की बात नहीं है । जार्ज ग्रोटे आधारपूर्वक स्थिर करते हैं कि प्लेटो ने थ्रेसीमेकस के विचारों को न केवल विकृत रूप में प्रस्तुत

करने का अन्याय ही किया, वह स्वयं इस अनौचित्य का अनुभव करता था और यदि 'रिपब्लिक' में ग्लाकन और एडीमेंटस का संवाद ध्यान-पूर्वक पढ़ा जाय तो उक्त तथ्य स्पष्ट हो सकता है।
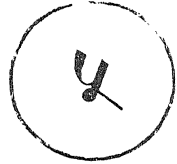
साक्रेटीज

जीवन-वृत्त

एथेन्स के छायादार पथों पर, क्रीड़ा स्थलों में, बाजार-हाटमें, सभी जगह कुरूप किन्तु हृष्ट-पुष्ट वह व्यक्ति किसी न किसी से बातचीत करता देखा जा सकता था। एथेंस शारीरिक यष्टि एवं सुन्दरता का पुजारी था, किन्तु इस चपटी, उठी हुई नाक वाले, खल्वाट शिर की उपेक्षा वह नहीं कर सका। साक्रेटीज की वाक्-चातुरी तथा प्रतिभा से सभी आकृष्ट हो जाते, और उसकी बातें सुनने के लिये अच्छा-खासा जन-समूह इकट्ठा हो जाता। साक्रेटीज के पास अब कोई काम नहीं था। उसने अपना शेष जीवन ज्ञान-चर्चा में ही व्यतीत करने का निश्चय कर लिया था।

साक्रेटीज का जन्म लगभग ४६९ ई० पू० तथा मृत्यु ३९९ में हुई थी। उसके पिता मूर्तिकार साफ्रानिकस थे और माता फेनारेटे एक दाई थी। उसकी पत्नी जैन्थाइप अत्यन्त कलह-प्रिय बताई जाती हैं; किन्तु

चंचला को गंभीर मेघ की गोद सहज ही सम्हाले रहती थी। साक्रेटीज का धैर्य अगाध था। मृत्यु के समय तक साक्रेटीज के तीन पुत्र हो चुके थे। मातृ-पक्ष से उसका एक सौतेला भाई भी था। परिवार के सम्बन्ध में इतना ही। शिल्पकार का पुत्र होने के न ते साक्रेटीज ने स्वभावतः अपना प्रारंभिक जीवन पिता के उद्यम में ही बिताया। उसकी गढ़ी हुई मूर्तियां बहुत समय तक एक्रोपोलिस के अजायबघर में सुरक्षित रहीं। किन्तु भविष्य ने उसके लिये कुछ और ही निश्चित कर रक्खा था।

साक्रेटीज जैसा बुद्धि से प्रबल था, शरीर से कष्ट झेलने की अपूर्व शक्ति भी वैसी ही रखता था। दो बार सैनिक सेवाके लिये बाहर जाने के अतिरिक्त उसका जीवन एथेंस में ही बीता। उत्तरी प्रदेश के बर्फीले मैदानों में साधारण-से गर्मी के वस्त्र पहन कर वह नंगे पाव निकल पड़ता था जब कि दूसरे सिपाही मोटे-मोटे जूते और लबादे में लिपटे रहकर भी ठिठुरन महसूस करते थे। कभी-कभी उन्हें लगता कि साक्रेटीज इस बात पर उनका मखौल उड़ाता है और तब वे उसे करौली दिखाते। सर्दी और गर्मी की परवाह साक्रेटीज को नहीं थी। जब-तब सैनिक जीवन में अन्नाभाव भी हो जाता था। उस समय दूसरे सिपाही शिथिल होने लगते थे। किन्तु साक्रेटीज के चेहरे पर किसी ने चिन्ता की रेखा तब भी नहीं देखी। उसका भोजन अत्यन्त साधारण होता, शराब पीने का वह कभी आदी नहीं रहा। किन्तु भोज के समय, मित्रों के बीच वह सबसे अधिक खाता, सबसे अधिक पीता। नशे में सब झूमने लगते, पर वह ज्यों का त्यों, विवेकयुक्त बना रहता। निर्धन होने के कारण उसका जीवन जागतिक अभावों से भरपूर था। इसके लिये उसे कोई दुख न था। उसका सिद्धान्त था अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम रखना। बाजार में जब उसके मन में किसी वस्तु के खरीदने की इच्छा होती, वह सोचता 'क्या इसके बगैर काम नहीं चल सकता?' बस तभी उस वस्तु की अनावश्यकता उभर आती।

साक्रेटीज राज-नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने में विश्वास करता था। पर उसके विचार से राज-सत्ता से भी बड़ी कोई सत्ता है, राज-नियमों से भी अधिक व्यापक एवं प्रभावशाली कुछ नियम हैं, जिनका पालन करना अधिक श्रेयस्कर है। दोनों में विरोध होने पर राज-नियम उपेक्षणीय हैं। उसके जीवन में ही तीन बार इस विश्वास की परीक्षा हुई और तीनों बार अपने साहस से उसने नगर को आश्चर्य में डाल दिया। एक बार अर्गनूसी के युद्ध में एथेंस के पचीस पोत जलमग्न हो गये। उनके साथ सभी नाविक तथा सैनिक सामग्री भी। इसके लिये नौ सेना-नायकों को उत्तरदायी ठहरा कर उन सब पर एथेंस की न्याय-सभा में मुकदमा चलाया गया। एथेंस की परम्परा के अनुसार प्रत्येक पर अलग-अलग मुकदमा चलना चाहिये था। उक्त अवसर पर साक्रेटीज भी न्याय-सभा का सदस्य था। उसकी अकेली आवज ने एथेंस की न्याय-परम्परा के खण्डन का विरोध किया। साक्रेटीज कहता है, "उस समय तुमने हुल्लड़ मचाने वाले और मुझे बन्दी बना लेने के विचार वाले वक्ताओं को बढ़ावा दिया, पर मैंने सोचा कि तुम्हारा विरोध करते हुए मुझे न्याय और का ून का पक्ष लेकर खतरा उठाना चाहिये। मृत्यु और कारागार के भय से तुम्हारे अन्याय-पूर्ण पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहिये।"

दूसरा अवसर वह था जब शासकों ने लियों का वध करने के विचार से उसे सालामिस द्वीप से पकड़ लाने के लिये चार व्यक्ति भेजे। उनमें एक साक्रेटीज भी था। साक्रेटीज अब तक अपने चरित्र की महानता और सच्चाई की प्रसिद्धि पा चुका था। अतएव शासकों ने उसे कुकर्म में हिस्सेदार बनाकर अपनी कालिमा छिपानी चाही। साक्रेटीज के ही शब्दों में, "उस समय न केवल शब्दों में, आचरण से भी मैंने स्पष्टतया घोषित कर दिया कि मैं मृत्यु की किंचिन्मात्र परवाह नहीं करता। दुष्ट और अन्यायपूर्ण कार्य न करने की मुझे चिन्ता थी।" इसलिये अन्य नियुक्त

किये गए व्यक्ति तो सालामिस के लिये रवाना हो गये और लियों को पकड़ लाये, किन्तु साक्रेटीज सीधे अपने घर चला गया। यदि उस समय के शासकों का शीघ्र ही पतन न हो गया होता तो संभवतः इसी राज अवज्ञा पर उसकी मृत्यु से भेंट हो जाती।

तीसरा अवसर उसके जीवन का अन्तिम अवसर था। एथेंस के शासकों ने उसे हेमलाक (विष) का प्याला दिया, मिथ्या आरोप लगा कर। कारागार से भाग निकलने का मित्रों ने प्रबंध किया था। इससे पहले पेरिकिलस की सहायता से अनेक्सागोरस ने इसी प्रकार अपनी प्राण-रक्षा की भी थी। किन्तु अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हुए साक्रेटीज ने अभियोग का उत्तर दिया और साहसपूर्वक मृत्यु वरण की।

अभियोग और दंड

ई० पू० ३९९ की बात है। मेलिटस तथा उसके दो सहायक अनीटस और लीकन ने मिलकर साक्रेटीज के विरुद्ध आरोप लगाया कि 'साक्रेटीज अपराधी है, प्रथमतः नगर के देवताओं का पूजन न करने के लिये, पुनः नये देवों का प्रचलन करने के लिये, और अन्त में नवयुवकों को भ्रष्ट करने के लिये। इसका उचित दण्ड मृत्यु है।' यह लिखकर राजद्वार पर टांग दिया गया। आरोप लगाने वालों में मेलिटस टेढ़ी नाक, लम्बे लटकते हुए बालों वाला नौजवान साधारण कवि था; लीकन था एक साधारण वक्ता, किन्तु तीसरा अनीटस ईमानदार जनतंत्रवादी राज-नीतिज्ञ था।

इन आरोप कर्त्ताओं के अतिरिक्त ऐसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी थी जो साक्रेटीज से अप्रसन्न थे। जब डेल्फी के भविष्य-वक्ता ने उसे यूनान का सबसे अधिक विवेकशील व्यक्ति घोषित कर दिया तो सहसा उसे विश्वास नहीं हुआ और देववाणी की परीक्षा करने के लिये

वह नगर के बड़े-बड़े नामी राजनीतिज्ञों, विद्वानों और कवियों से मिला।*
भेंट करने के उपरान्त जो मत उसने स्थिर किया वह इस प्रकार था :
'मैं तो कुछ नहीं जानता; वे भी नहीं जानते। किन्तु अन्तर इतना अवश्य
है कि वे कुछ न जानकर भी अपने को सर्वज्ञ मानते हैं; और मैं यह
जानता हूं कि मैं कुछ नहीं जानता।' अवश्य ही इस मत से वे लोग,
विशेषतः साफिस्ट लोग, बहुत अधिक चिढ़ गये होंगे। उनकी साख को
धक्का पहुंचा होगा और आमदनी को भी।

साक्रेटीज की तर्क-प्रणाली ने उसके विरोधियों की संख्या बढ़ाने
में बड़ा योग दिया। वही तर्क-प्रणाली सम्पन्न घर के नवयुवकों के
हाथ पड़कर और भी अधिक चिढ़ानेवाली तथा विपरीत बनकर
साक्रेटीज के विरुद्ध लोगों को भड़काने लगी। स्वयं साक्रेटीज अज्ञ बनकर
दूसरे के सामने प्रस्तुत होता और उसकी विज्ञता को शिरोधार्य करके
विवाद आरंभ करता। आरंभ में तो यह उसकी विनम्रता मानी जाती,
किन्तु बातचीत ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती, साक्रेटीज के तीक्ष्ण प्रश्नों के आगे
विपक्षी की विज्ञता का बालुका भवन ज्यों-ज्यों धराशायी होने लगता,
उसी गति से विपक्षी अपना बौद्धिक संतुलन भी खोने लगता और बहुधा
अत्यन्त कटु भाव से वह साक्रेटीज से बिदा लेता। कालान्तर में जब
साक्रेटीज अपनी प्रतिभा के लि` चारों ओर प्रसिद्ध हो गया, उस समय
उसकी विनम्रता एवं अज्ञ-भाव से प्रस्तुत होना ढोंग माना जाने लगा, जिससे
लोगों का विरोध और भी तीव्र हो उठा। राटाइमन, जो एक व्यंग्य

---

*साक्रेटीज के मित्र और प्रशंसक शिरेफोन ने डेल्फी के पुजारी
से प्रश्न किया : क्या साक्रेटीज से अधिक विवेकशील कोई मनुष्य
है? प्रश्न का उत्तर नकारात्मक मिला। साक्रेटीज को डेल्फी
पर आस्था थी, इसलिये यह बात सुनकर उसे आश्चर्य हुआ।
ग्रोटे कृत 'हिस्ट्री आव ग्रीस' खंड ८, पृष्ठ ५६१।

लेखक था, उसने साक्रेटीज का एक ऐसे 'जोकर' के रूप में उल्लेख किया है, जो प्रसिद्ध व्यक्तियों का मजाक उड़ाया करता है।'

जेनोफोन ने अपनी पुस्तक 'मेमोराबिलिया' में दिखाया है कि आरंभ में तो साक्रेटीज संहारात्मक प्रश्नों से विपक्षी के स्थिर अंध-विश्वासों को उखाड़ता था, और उसका यह कार्य अवश्य ही किसी प्रकार प्रिय नहीं हो सकता था; किन्तु आगे चलकर उसके प्रश्न निर्माणात्मक एवं पथ-प्रदर्शक होते थे। ऐसे समय उसकी ध्वनि और शैली दोनों ही बदल जाती थी; अर्थात् उनमें मखौल उड़ाने का ढंग नहीं रहता था। जार्ज ग्रोटे का मत है कि भले ही साक्रेटीज के संहारात्मक प्रश्नों में मखौल उड़ाने का आभास मिलता रहा हो; और अधिकांश संभावना इसी की है भी, सिसरो का भी यही विश्वास था तथा प्लेटो की लेखनी से ऐसा ही प्रतीत होता है; फिर भी साक्रेटीज जैसे व्यक्ति का यह उद्देश्य नहीं हो सकता था कि वह दूसरों का मखौल उड़ाये।

साक्रेटीज के विरुद्ध जन-मत उभारने में नाट्यकार अरिस्टोफेंस का भी हाथ था। अरिस्टोफेंस स्वयं एक दकियानूस, प्रतिक्रियावादी व्यक्ति था। उससे यह तो आशा नहीं की जा सकती कि वह दार्शनिक साक्रेटीज को समझ सका होगा, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने जो कुछ लिखा वह लोक-भावना का ही प्रतिबिम्ब था और साथ ही उसे उग्रतर बनाने वाला था। अरिस्टोफेंस ने उसके लिए लिखा कि वह बुरी बातों को भला सिद्ध कर दिखाता है। अपने वक्तव्य में साक्रेटीज ने नाट्यकार की बातों का खण्डन किया है, जिससे प्रगट होता है कि अरिस्टोफेंस प्रभावहीन नहीं था।

न्याय-परिषद द्वारा साक्रेटीज पर तीन आरोप लगाये गये थे:

१. नगर के देवताओं पर अविश्वास। अरिस्टोफेंस ने 'क्लाइड्स' नामक नाटक में भी साक्रेटीज को ज्यूस देवता पर अविश्वास करने वाला दिखाया है। किन्तु प्रतीत होता है विरोधियों द्वारा फैलाया हुआ यह केवल जन-

साधारण का भ्रम ही था। क्योंकि जेनोफोन और प्लेटो दोनों के आधार पर, साक्रेटीज देवताओं को मान्यता देने वाला ही प्रतीत होता है। हेमलाक पी लेने के उपरान्त जब उसे देव-ऋण का स्मरण हुआ तो उसने तुरन्त ही क्राइटो से कहा, "क्राइटो, एस्कुलेपियस देवता का हमारे ऊपर एक मुर्गे की बलि का ऋण है। इसे चुका देना, उपेक्षा न करना।"

२. दूसरा आरोप था, नये देवताओं का प्रचार करना। साक्रेटीज द्वारा किसी नये देवता की स्थापना का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। हो सकता है, उसकी अन्तर्वाणी को ही लोग उसका नया देवता मान बैठे हों। साक्रेटीज को अन्तर्वाणी से पथ-प्रदर्शन मिला करता था। यह शक्ति बचपन से ही उसका साथ दे रही थी और अपनी चर्चाओं में साक्रेटीज अत्यन्त सामान्य भाव से उसका उल्लेख कर दिया करता था। इसी अन्तर्वाणी की प्ररणा से साक्रेटीज ने दार्शनिक जीवन में प्रवेश किया और सक्रिय राजनीति से अपने को पृथक रक्खा। इसी की प्रेरणा से उसने मृत्यु-दण्ड के विरुद्ध पैरवी करने से इन्कार कर दिया था। साक्रेटीज का इस पर अटल विश्वास था।

यह कहना कठिन है कि साक्रेटीज की अन्तर्वाणी वस्तुतः वाणी के रूप में सुनाई पड़ती थी अथवा गांधी जी की तरह केवल अन्तःकरण की प्रेरणा थी। बर्ट्रेण्ड रसेल साक्रेटीज की अन्तर्वाणी को एक प्रकार के पागल का लक्षण कहते हैं और इस सम्बन्ध में उन्होंने उसकी मूर्छाओं की ओर संकेत किया, जिनमें वह कभी-कभी डूब जाया करता था। एक बार तो वह एक दिन और दो रात लगातार खड़ा-खड़ा सोचता ही रहा।

३. तीसरा आरोप था नवयुवकों को भ्रष्ट करने का। इस सम्बन्ध में यौन-व्यभिचार का सन्देह सारहीन प्रतीत होता है। इस सन्देह का पहला आधार अल्किबायडीस के प्रति साक्रेटीज का लगाव बताया जाता है। अल्किबायडीस अत्यन्त रूपवान युवक था और प्रतिभाशाली भी।

किन्तु वह राजनैतिक धोखेबाज निकला और देशद्रोह का भी आरोप उस पर लगाया गया। साक्रेटीज उसकी उद्दण्डता की उपेक्षा करके भी अपने साथ उसे रखता था। दूसरे प्लेटो का यह उल्लेख कि सभी यूनानी युवकों के सौंदर्य से अधिक प्रभावित हो जाते थे और स्त्री-सौन्दर्य से कम। साक्रेटीज में यह गुण विशेष था।† जेनोफोन ने इस आरोप का न केवल जोरदार खण्डन किया इस पर आश्चर्य भी प्रगट किया। स्वयं साक्रेटीज ने अपने को द्विधा रहित शब्दों में पूर्ण सदाचारी कहा है। साक्रेटीज मिथ्या भाषण करेगा, यह कभी कोई स्वीकार नहीं कर सकता। अतएव यौन-व्यभिचार की बात केवल निराधार सन्देह है। इस सम्बन्ध में प्लूटार्क द्वारा लिखित जीवन-चरित्र (बेनोडोटेप्रेरिन द्वारा अंग्रेजी में अनूदित खण्ड ४ पृष्ठ ३) के कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद पाठकों के मनोरंजन के लिये दे रहे हैं, जिनसे साक्रेटीज के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ेगा:

'पर्याप्त आधारपूर्वक कहा जाता है स्नेह और कृपा ने, जो साक्रेटीज से उसे (अल्कीबाइयडीस को) प्राप्त थी, उसके यश की कोई साधारण वृद्धि नहीं की।' पुनः

'और शीघ्र एक ऐसे साथी का चुनाव करना, एक ऐसे प्रेमी की बातों को कान देना जो पौरुषहीन सुख के लिए यत्न नहीं करता, आलिंगन एवं चुंबन की कामना नहीं करता, वरन् उसकी आध्यात्मिक दुर्बलताएं प्रकाशित कर देता है और मूर्खतापूर्ण दम्भ के लिये कठोर वचन कहता है।'

युवकों को भ्रष्ट करने के दो तात्पर्य हो सकते हैं, जिन्हें साक्रेटीज अस्वीकार भी नहीं कर सकता था। पहला कि वह उन्हें इस प्रकार की शिक्षा देता था जिससे बड़े बूढ़ों के शासन पर आघात पहुंचता था। साक्रेटीज विवेक के आगे श्वेत-केश को गौण ठहराता था। इसका परिणाम

†जार्जग्रोटेकृत 'हिस्ट्री आव ग्रीस' खण्ड ८ पृष्ठ ६३७ ;

यह हुआ कि नवयुवक अपने पिता-पितामह से जबान लड़ाते और उनकी अवज्ञा करते। इस आरोप का दूसरा तात्पर्य यह होगा कि साक्रेटीज नवयुवकों को नगर की परम्पराओं के विरुद्ध शिक्षा देता था। यह भी सच ही था। एथेंस की शासन-प्रणाली के प्रति उसको कोई सहानुभूति नहीं थी। जैसा कि हम आगे देखेंगे, वह जन-तंत्र का सैद्धान्तिक विरोधी था। क्रीटियस और अल्किबायडीस के आचरण इसके प्रमाण थे। क्रीटियस के शासन में नगर ने घोर अत्याचार सहे और अल्किबायडीस देशद्रोही निकला।

साक्रेटीज पर लगाये गये अभियोगों के पीछे अवश्य ही राजनैतिक कारण थे, जो अभियोग नं० ३ में तो कुछ-कुछ सतह पर दिखाई देते हैं; किन्तु पहले और दूसरे में जन-मत संग्रह के लिये उन्होंने धर्म को अपना साधन बनाया। धर्म सदा से ही राजनीति की इस प्रकार से सेवा करता चला आया है। साक्रेटीज के सम्बन्ध कुलीन वर्ग के लोगों से घनिष्ट थे। इसके अतिरिक्त उसके विचार जन-तंत्र के मूल पर ही कुठाराघात करते थे। नायकों के निर्वाचन में पांसा फेंकने का वह घोर विरोधी था। वह ऐसी प्रणाली को विवेकहीन कहता था, जिसमें उचित एवं अनुचित दोनों को समानता दे दी जाती है।

अभियोगों के पीछे प्रमुख तीन अभियोग-कर्ताओं के निजी मनोमालिन्य भी सक्रिय दिखाई देते हैं। अपनी तर्क-प्रणाली से साक्रेटीज ने नगर के सभी कविओं, वक्ताओं और साफिस्टों का विरोध पा लिया था। वक्तृता सिखानेवालों की रोजी पर इसका प्रभाव पड़ा। लीकन के असंतुष्ट होने का तो यही कारण हो सकता है। मेलिटस भी कुछ ऐसे ही कारणों से असंतुष्ट होगा; किंतु अनीटस के मनोमालिन्य का रंग गहरा था। स्वयं एक दृढ़ जन-तंत्रवादी होने के कारण राजनैतिक विरोध तो रहा ही होगा; इसके अतिरिक्त अनीटस का पुत्र साक्रेटीज का अनुयायी हो गया था, जिससे साक्रेटीज ने उसके संमुख कौटुम्बिक कठिनाई भी प्रस्तुत कर दी थी।

अनीटस के चमड़ा-व्यापार को विगत शासन में गहरा धक्का लग चुका था। अब अनुकूल समय आने पर वह चाहता था कि पुत्र अपनी पूरी शक्ति से घर की खोई सम्पदा वापस प्राप्त कर ले। लेकिन वह तो साक्रेटीज के पीछे दार्शनिक होने जा रहा था। इससे अनीटस साक्रेटीज से बहुत चिढ़ गया था। युवकों को भ्रष्ट करने का आरोप भी इसके प्रकाश में देखना चाहिये।

अभियोगों के खण्डन करने तथा दण्ड से अपनी रक्षा करने का साक्रेटीज ने कोई उचित प्रयत्न नहीं किया। कुछ लोगों का विश्वास है प्राण-दण्ड से रक्षा पा जाना साक्रेटीज के ही हाथ में था। किंतु न केवल मृत्यु के प्रति उसका उपेक्षाभाव था, उस समय जीवन से मृत्यु ही उसे अधिक श्रेयस्कर दिखाई दे रही थी। एक तो साक्रेटीज अधिक बूढ़ा होकर पंगु-जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता था, दूसरे अपने विश्वास पर बलिदान हो जाने का परिणाम वह भलीभांति समझता था। उसने अभियोग लगाने वालों से कहा भी था कि 'जो कुछ पैरवी मैं कर रहा हूं, अपने नहीं तुम्हारे लिये कर रहा हूं। मुझे मारने के उपरान्त तुम्हें भयंकर परिणाम भोगने पड़ेंगे।' अन्त में उसने कहा, 'विदा होने की घड़ी आ पहुंची है, हम अपनी-अपनी दिशा को चलते हैं, मैं मृत्यु की ओर और तुम जीवन की ओर। दोनों में कौन श्रेष्ठ है, केवल ईश्वर जानता है।'

साक्रेटीज के मृत्युदण्ड के औचित्य एवं प्रभाव दोनों पर ही विद्वानों में मतभेद हैं, ग्रोटे द्वारा उद्धृत एम. फार्कहैमर का मत है कि साक्रेटीज वस्तुतः अभियोगों का पात्र था और जो दण्ड उसे मिला ठीक ही मिला।‡ प्रोफसर जे० बी० बूरी का मत इससे भिन्न होकर भी समान निष्कर्ष पर पहुंचता ह। उनके अनुसार ,विधर्म के प्रचार के अभियोग का साक्रेटीज भलीभांति उत्तर नहीं दे सका। अतएव कानन के विचार से उसे दण्ड

‡ग्रोटेकृत 'हिस्ट्री आव ग्रीस' खण्ड ८ पृष्ठ ५४५।

न्यायपूर्ण ही मिला। साक्रेटीज से श्रेष्ठ कोई पुरुष नहीं था, फिर भी उसे दण्ड देने वाले न्याय-पथ पर थे। इससे दुखान्त की गहनता और भी तीव्र हो जाती है।*

मृत्यु के प्रभाव के संबंध में ग्रोट कहते हैं, 'जेनोफोन कृत मेमोराबिलिया की ध्वनि से पता चलता है कि एथेंस में उस समय (मृत्यु के उपरान्त) भी साक्रेटीज की स्मृति लोक-भावना में कटु प्रतीत होती है।' स्वयं प्लेटो गुरु की हत्या के उपरान्त तत्काल एथेंस छोड़ कर चला गया और अनेक वर्ष तक बाहर ही रहा। घटना के लगभग पचास वर्ष के बाद वक्ता अस्काइंस ने भी ऐसे ही विचार प्रगट किये थे। किन्तु प्रो० बूरी के मत से, 'एथेंस में साक्रेटीज का स्मरण अभिमान और खेदपूर्वक किया गया। उसके चिन्तन का प्रभाव मृत्यु की घटना से प्रबलतर हो उठा। उसके साथियों ने अपने गुरु के वध के लिए जनतंत्र को कभी क्षमा नहीं किया। उन्हीं की कल्पना में साक्रेटीज विकसित हुआ और जीवित रहा। उन लोगों ने अपना जीवन उसका कार्य करने में ही व्यतीत किया।'

साक्रेटीज की मृत्यु पर एथेंस के कानून और विद्वानों के मत में भले ही अनिश्चय हो, किन्तु आज एथेंसवासियों की काली करतूत के लिए हमारा हृदय दुःख से भर आता है। जो भी लांछन लगाये गये उनमें से कोई भी ऐसा नहीं जो साक्रेटीज के सत्तरवें वर्ष ही सहसा प्रगट हुआ हो। वह इस प्रकार का जीवन पिछले कितने ही वर्षों से बिता रहा था। इतनी वृद्धावस्था में उस महापुरुष को जो व्यवहार अपने देश-वासियों से मिला उसके पीछे दुरभिसंधि तथा कलुषित भावनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था। साक्रेटीज को अन्तकाल में जो कुछ क्षोभ था वह यही था कि न्याय के नाम पर उसके जैसे न्याय-प्रिय व्यक्ति को प्राण-दण्ड दिया गया।

---

*जे० बी० बूरी कृत 'हिस्ट्री आव ग्रीस' पृष्ठ ५८१।

जीवन-लक्ष्य

अपना पैतृक उद्यम त्याग देने के पश्चात साक्रेटीज ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों के अध्ययन में प्रवृत्त हुआ। किंतु इस क्षेत्र में वह अधिक समय न दे सका। सांसारिक ज्ञान-विज्ञान की उपयोगिता को वह अत्यन्त सीमित मानता था तथा उनके लिये अधिक श्रम और समय व्यय करने का वह विरोधी था। साक्रेटीज ने प्रारंभ में भौतिक दार्शनिकों से शिक्षा ग्रहण की थी। अनेक्सागोरस का शिष्य आर्केलस उसका गुरु था। प्लेटो की रचना 'पारमेनाइडीज़' में वह जेनो तथा पारमेनाइडीज़ से भी शिक्षा लेता बताया गया है। किन्तु पदार्थ-विज्ञान अपने शैशव काल में इतना विकसित न हो सका था कि साक्रेटीज जैसे मेधावी को संतुष्ट कर सकता अथवा उसकी बुद्धि के लिए उपयुक्त क्रीड़ा-क्षेत्र ही बन सकता। अतएव उसने घोषित कर दिया कि मानव-वर्ग के अध्ययन के लिये मनुष्य ही उपयुक्त क्षेत्र है। एक स्थल पर वह कहता है, "मैं नगर के बाहर कभी टहलने नहीं जाता क्यों कि खेतों और वृक्षों से सीखने के लिए कुछ है ही नहीं।*

साक्रेटीज के ही अनुसार उसके अध्ययन में इस दिग्परिवर्त्तन के पीछे ईश्वरीय प्रेरणा थी, जिसने पदार्थ-विज्ञान को दैवी क्षेत्र बताकर अध्ययन के लिये वर्जित कर दिया था। इस प्रकार ईश्वरीय प्रेरणा से ही उसने मनुष्य और उसके जीवन को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया तथा अपना सम्पूर्ण जीवन उसकी उन्नति एवं सुधार के लिये उत्सर्ग कर दिया। न्याय-परिषद में खड़े होकर वह कहता है, "एथेंस के निवासियो, मैं तुमसे प्रेम करता हूं, और तुम्हारी इज्जत करता हूं; लेकिन मैं तुम्हारी आज्ञा मानने की अपेक्षा ईश्वरीय निर्देश मानूंगा। जब तक मुझमें जीवन एवं शक्ति है, दर्शन की शिक्षा बराबर देता रहूंगा, जिससे मिलूंगा, उसे ही

---

*डब्लू० टी० स्टेस कृत 'ए क्रिटिकल हिस्ट्री आव ग्रीक फिलासफी' पृष्ठ १४२।

समझाऊंगा.....क्योंकि, जान लो, यही ईश्वर का आदेश है। मेरा विश्वास है, ईश्वर के प्रति मेरी सेवाओं से बढ़ कर इस राज्य में कभी कोई सद्कार्य नहीं हुआ।" पुनः वह न्यायाधीशों से कहता है, "भले ही सहसा जगा दिये गये व्यक्ति की भांति तुम उन्माद-वश हो जाओ; और जैसी अनीसटस परामर्श देता है, तुम समझते हो तुम मुझे सहज ही मार भी सकते हो; किन्तु तब तो तुम शेष-काल के लिए पुनः सो जाओगे, जब तक ईश्वर ही तुम्हारे लिए चिन्तित होकर फिर से तुम्हें जगाने के लिए किसी दूसरे को न भेजे।"

मनुष्य को अपने सामाजिक कर्तव्यों तथा आध्यात्मिक उत्थान की ओर जागरूक कर देना साक्रेटीज का लक्ष्य बन गया था। वह इसे धार्मिक निष्ठापूर्वक ईश्वरीय आदेश मान निर्भय होकर सम्पन्न करने में लगा था। उसका उद्देश्य उसके संमुख दीपक की स्थिर ज्योति की भांति प्रभावान एवं स्पष्ट था।

अब तक साक्रेटीज के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इससे पहले कि हम उसके दर्शन पर प्रकाश डालने का यत्न करे, आवश्यक है पाठकों को विदित हो जाना कि साक्रेटीज सम्बन्धी विविध जानकारी का आधार अरिस्टोफेंस की नाटकीय रचना के अतिरिक्त जेनोफोन कृत 'मेमोराबिलिया' तथा प्लेटो द्वारा लिखे गये कई संवाद हैं। अरिस्टोफेंस का क्या मूल्य है पहले ही लिख चुके हैं। प्लेटो और जेनोफोन दोनों ही साक्रेटीज के अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहे और उसके भक्तों में रहे। अतएव उन्होंने जो कुछ साक्रेटीज के विषय में लिखा, उससे अधिक यथातथ्य वर्णन किससे मिल सकता था! स्वयं साक्रेटीज ने कभी 'कागद मसि छूओ नहीं'। ऐसी अवस्था में साक्रेटीज के उक्त दोनों शिष्यों का ही सहारा रह जाता है। किन्तु खेद तो यह है कि इनमें से किसी ने भी इतिवृत्त लिखने के विचार से कलम नहीं उठाई। अतएव इनकी सामग्री से साक्रेटीज का अन्वेषण करना सतर्कता की अपेक्षा रखता है।

जेनोफोन एक सैनिक था। वह साक्रेटीज के प्रति दार्शनिकता के कारण श्रद्धालु नहीं था। कदाचित साक्रेटीज के दर्शन की बारीकियों को समझ भी नहीं सकता था। किन्तु उसके चरित्र, वीरता, शील और उदारता से वह अत्यधिक प्रभावित हो गया था। कुछ लोगों ने जेनोफोन की बौद्धिक असमर्थता के ही कारण उसके वर्णन को अधिक ऐतिहासिक माना। उसमें इतनी योग्यता कहां कि वह अपनी ओर से साक्रेटीज के विचारों से कुछ घटा-बढ़ा सके। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि स्थूल बुद्धि गुरु का दर्शन प्रस्तुत करने में भोंडी त्रुटियों तो कर ही सकती है। हां, घटनाओं के वर्णन में भले ही उसका सहारा लेने में कम आपत्ति हो। प्लेटो की रचनाओं में पाये जाने वाले साक्रेटीज को भी ऐतिहासिक मानने में थोड़ी सी कठिनाई है। यहां लेखक की सूक्ष्म बुद्धि और विशाल कल्पना-शक्ति कठिनाई का कारण है। उसकी रचनाओं में पाये जाने वाले-साक्रेटीज जैसे महान व्यक्तित्व की काल्पनिक श्रृष्टि कर लेना प्लेटो के मस्तिष्क के लिए असंभव नहीं। अतएव यह कहना कठिन हो जाता है कि इसमें इतिहास कितना है और कितनी कल्पना है। अस्तु, जो भी विचार साक्रेटीज की ओर से उक्त दोनों लेखकों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं, उन्हें सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

सदाचार-शास्त्र और ज्ञानवाद

साक्रेटीज के जीवन-लक्ष्य की चर्चा करते समय हम कह चुके हैं कि उसने मनुष्य को चिन्तन का केन्द्र स्थापित कर आयोनिया की दार्शनिक परम्परा को गहरा धक्का पहुंचाया।‡ पदार्थवादी दर्शन भौतिक सीमाओं

‡यद्यपि साक्रेटीज ने पदार्थ-विज्ञान का अध्ययन स्थगित कर दिया था; किंतु उसकी तर्क-प्रणाली के रूप में एक ऐसा साधन मिल गया जो अरिस्टाटिल के हाथों अधिक विकसित होकर, भौतिक विज्ञान की विशेष उन्नति का कारण बना।

में प्रारंभ होकर वहीं समाप्त भी हो जाता था। किन्तु मानवीय दर्शन समाज की विभिन्न मान्यताओं की परिभाषा करने तथा उनका हेतु स्थिर करने में पार्थिव सीमाओं में परिसीमित न रह सका। श्रेय एवं प्रेय के प्रश्नों को लेकर बुद्धि गंभीर चिन्तन में उतर पड़ी। सद्-असद् का अन्तर जानने के लिए उसे वाह्य जगत से पराङ्मुख होना पड़ा। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के उस समूह से जो अब तक बहुत प्रचुल एवं अव्यवस्थित हो चुका था, जिसमें आकाश-पाताल की सभी बातें आ गई थीं, और जिसमें थोड़ा बहुत विभाजन साफिस्टों द्वारा किया भी गया था, उसमें से सदाचार शास्त्र को साक्रेटीज ने पृथक् करने की चेष्टा की। उसने सदाचार के लिए दूसरी ही मान्यताएं और मानदण्ड स्थिर किये। नई-नई परिभाषा करने की आवश्यकता उसने लोगों के संमुख प्रस्तुत की। लोगों के सामने प्रश्न उठने लगे: शुचिता क्या है? अशौच कौन है? संयम, साहस, नागरिकता आदि क्या हैं?‡ इन्हें भलीभांति जाने बिना कोई सदाचारी नहीं बन सकता। अतएव इनका ज्ञान प्राप्त करना श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक है। साक्रेटीज के मत से, संयम, विवेक, दूरदर्शिता, उदारता आदि जो अनेक नामों से सदाचार को पहचाना जाता है, वे सब मूलतः एक ही हैं। सदाचार एक ही है, और वह ज्ञानरूप है।

‡इन प्रश्नों के उत्तर पायथागोरसी एवं आयोनियावासी दार्शनिकों ने भी दिये थे। किन्तु उनमें पार्थिव जगत के नियमों की भाषा प्रयोग की गई थी। मनुष्य का गौण स्थान था। जैसे-पायथागोरसी मत से न्याय किसी संख्या का वर्गमूल था। किन्तु साक्रेटीज के उत्तरों में मानवीय अस्तित्व पर वाह्य प्रकृति के नियम नहीं आरोपित किये गये, वरन् प्रश्नों का उत्तर मानव-समाज एवं अन्तःकरण में टटोला गया।

ज्ञानवाद साक्रेटीज के दर्शन की आधार शिला है। किन्तु साफिस्टों की भांति वह इन्द्रिय एवं पदार्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रमाण नहीं मानता था। साक्रेटीज का ज्ञानवाद तर्क पर आधारित था। जिससे उसका सत्य प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी और पृथक नहीं हो सका। सत्य के निरपेक्ष अस्तित्व में वह विश्वास करता था। प्रत्यक्ष ज्ञान, संभव और सत्य, केवल व्यक्तिगत और पृथक-पृथक ही नहीं, एक ही व्यक्ति के साथ समय-समय पर विभिन्न प्रकार का हो सकता था। क्योंकि उसके आधार, इन्द्रियों की ग्रहण-शक्ति में परिवर्तन अवश्यंभावी है। तर्क-सिद्ध निरपेक्ष सत्य स्थिर एवं अपरिवर्तनीय है। उसको ग्रहण करनेवालों का बुद्धि-तत्व इन्द्रियों की भांति स्थूल न होकर सूक्ष्मतम है।

यदि ज्ञान का आधार तर्क है तो 'अव्यभिचरित साहचर्य' के आधार पर 'सप्रकार' ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। उक्त दोनों तर्क के आवश्यक अवयव हैं। इसे कुछ विस्तार से स्पष्ट करने की आवश्यकता है। 'सप्रकार' ज्ञान में व्यक्तिगत एवं जातिगत लक्षण दोनों ही उपस्थित होते हैं। जैसे 'घोड़ा' के 'सप्रकार' ज्ञान में विशिष्ट घोड़े को अन्य घोड़ों से पृथक करने वाले लक्षण अर्थात् 'व्यक्तिगत लक्षण' के साथ-साथ उसके वे लक्षण जिनके कारण वह संसार के समस्त घोड़ों से समानता रखता है, अर्थात् 'जातिगत लक्षण' भी ग्रहण होते हैं।

जातिगत लक्षणों की प्राप्ति अव्यभिचरित साहचर्य से होती है। उदाहरण के लिये: कच्चा आम हरा होता है। हरापन कच्चे आम का जातिगत लक्षण हुआ। किन्तु इसे प्राप्त करने के लिए अनेक अवसरों पर हरापन और कच्चे आम का साथ (भूयोदर्शन) मिलना चाहिये और जहां पर पहले का अभाव मिले वहां दूसरा भी अनुपस्थित हो। इस साहचर्य का कोई अपवाद न हो तो उसे 'अव्यभिचरित साहचर्य' कहेंगे। किसी वस्तु का जातिगत रूप ग्रहण करने के लिये

यह आवश्यक है । इस तरह 'सप्रकार' अनुभव को ज्ञान का आधार मानकर साक्रेटीज ने ज्ञान-प्राप्ति के लिए तर्क का साधन स्थिर किया । उसका यह सिद्धान्त साफिस्टों से बिल्कुल विपरीत था, जो प्रत्यक्ष को ही ज्ञान का आधार मानते थे और जिनकी दृष्टि से सम्पूर्ण ज्ञान इन्द्रिय-सन्निकर्ष का ही परिणाम था ।

लोगों के निकट सदाचार की विभिन्न धारणायें अत्यन्त अस्पष्ट और धुमैली थीं; जिससे उनके आचरण पर मतभेद था । इस अस्पष्टता के निवारणार्थ और तर्क की आवश्यकता पूरी करने के लिए साक्रेटीज ने उन धारणाओं की स्पष्ट परिभाषा करने पर जोर दिया। वह अपने विचार में स्पष्टीकरण मांगता : न्याय क्या है ? सदाचार क्या है ? पाप और पुण्य क्या हैं ?

साक्रेटीज का ज्ञानवाद बुद्धि-विलास के निमित्त नहीं था । वह एक समस्या सुलझाने का उपाय था । समस्या थी कि मनुष्य सद् और असद् कर्मों का निर्णय कैसे करे ? बिना यह भेद प्रगट हुए असद् से निवृत्ति और सद् की ओर प्रवृत्ति नहीं हो सकती । इस प्रकार तर्क-सिद्ध ज्ञान उपार्जन करने की आवश्यकता उठी । किंतु रोचकता की बात तो यह है कि साक्रेटीज ज्ञान-कर्म में साधन-साध्य संबंध नहीं मानता था। वह और भी आगे बढ़कर कहता था कि ज्ञान और कर्म पर्याय हैं । तत्वज्ञान और सदाचार अभिन्न हैं। वैसे ही मिथ्या ज्ञान तथा आडम्बर भी। इसी के आधार पर उसका कहना था कि कोई मनुष्य जानबूझ कर दुष्कर्म नहीं करता । मृत्युदण्ड का निर्णय देनेवाले न्यायाधीशों से उसने कहा कि यदि वह दुराचरण करता है तो अज्ञानी समझ कर उसे शिक्षा दें और मुक्त करें ।

साक्रेटीज ज्ञान के दो भेद मानता था : तात्विक ज्ञान और मिथ्या ज्ञान । किसी परिस्थिति में उचित आचरण करने के लिये उसका तात्विक ज्ञान अपेक्षित होता है । यही वास्तविक एवं बुद्धि की स्थाई सम्पत्ति

है। जिस व्यक्ति का आचरण इस पर आधारित होता है वह स्थिरप्रज्ञ है एवं दृढ़ है। इसके विपरीत मिथ्याज्ञान के आधार पर कर्म करनेवाला व्यक्ति चंचल-चित्त एवं व्यग्र रहता है। इस तरह के लोगों के विचार और कर्म परिस्थिति तथा समय के साथ साम्य रखकर परिवर्तित नहीं होते, बल्कि अस्तव्यस्त हो जाते हैं। कर्म में परिणत हुए बिना ज्ञान को साक्रेटीज ज्ञान नहीं मानता। उसे तो तोते की भांति कण्ठ किये हुए कुछ वाक्यों के समान ही समझना चाहिये।

साक्रेटीज के दर्शन में आचार के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण सत्य एवं शिव के एकाकार पर आश्रित है। शिव अर्थात् कल्याणकारी वृत्ति ही एक मात्र शक्ति है, जो मनुष्य के समस्त कार्यो की प्रेरणा है। कोई कभी अकल्याणकारी वृत्ति लेकर काम नहीं करता। यह बात तभी कही जा सकती है जब कर्त्ता की, दोनों व्यक्त एवं अव्यक्त, निर्णायक बुद्धि को दृष्टि में रक्खा जाय। उसकी कल्याणकारी वृत्ति का श्रोत बुद्धि में स्थित सत्यांश है। अथवा, हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं, कि सत्य का सक्रिय रूप ही शिव है। साक्रेटीज के इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में ईसा के अन्तिम शब्दों का उल्लेख अरुचिकर न होगा। फांसी के क्रास पर से उसने कहा था: "हे ईश्वर, तू इन्हें क्षमा कर देना। इन्हें पता नहीं यह कर क्या रहे हैं।" जो कुछ उन्होंने किया, अपने ज्ञान-कोष के आधार पर उसे ही शिव समझा। किन्तु इस कथा से शिवत्व व्यक्तिगत नहीं हो जाता। इसका तो केवल यही तात्पर्य है कि जानबूझ कर उन्होंने अशिव कार्य नहीं किया।

इस सम्बन्ध में अरिस्टाटिल का मत है कि साक्रेटीज ने मानव-बुद्धि के तर्कहीन अंश की उपेक्षा की। मनुष्य बहुत से ऐसे कार्य करता है जिनके पीछे उसका तर्कसंगत विश्वास न होकर केवल भावांध प्रेरणा ही होती है। अरिस्टाटिल की यह आलोचना बहुधा उचित ही मानी जाती है।

मिथ्याचार वह है जिसका आधार अंधानुसरण है; प्रभावशाली लोग अथवा बहुत से लोग जो कहें उसे ही मानकर आचरण करना है। किन्तु इस प्रकार का ज्ञान तथा सदाचार दोनों ही अस्थाई होते हैं और परिस्थिति के दबाव से बदलते रहते हैं। मिथ्याचार केवल अभ्यासवश आचरित होते हैं, अन्यथा उनमें कोई सार नहीं होता। कर्त्ता की आत्मा से वे संलग्न नहीं होते। इसके विपरीत बुद्धिसंगत सदाचारों को कर्त्ता की श्रद्धा और विश्वास के रूप में, उसका आत्मबल प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार के व्यवहार मन-प्राण द्वारा स्फुरित होते हैं। उन्हें परिस्थिति के बाह्य प्रभाव से बदला नहीं जा सकता क्योंकि वह केवल अभ्यास का बल प्राप्त करके नहीं होते हैं; अतएव साक्रेटीज जो बहुतेरे प्रचलनों का विरोध करता था वह इसलिये नहीं कि उनके आधारभूत हेतु मिथ्या हैं, बल्कि इसलिये कि या तो उनका पता नहीं लगता अथवा लम्बे इतिहास में अब उनका लोप हो चुका है। वे अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुके हैं। चीजों को समझे बिना लकीर पीटने का साक्रेटीज घोर विरोधी था।

इस प्रकार के आचरण सिद्धांत-मूलक न होने के कारण शब्दों में व्यक्त नहीं किये जा सकते, अतएव वे अज्ञान एवं अशिव हैं। त्याज्य हैं। जो कुछ शिव है, कल्याणकारी है, उसे शब्दों में कहा जा सकता है, वह ज्ञान है। साक्रेटीज के मत से ज्ञान और सदाचार दोनों ही शब्दों में व्यक्त किये जा सकते हैं; और शिक्षा का विषय हो सकते हैं। एक लोक-शिक्षक के ऐसे विचार होने ही चाहिये, अन्यथा उसका कार्य ही निरर्थक हो जाता है। किन्तु न्याय, संयम आदि सदाचार जिस शक्ति से अपना अपना शिवत्व प्राप्त करते हैं वह, साक्रेटीज के विचार से, आत्यंतिक शिवत्व (सुप्रीम गुड) अनिर्वचनीय है। वह शिक्षा द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। उसके लिये साधना की आवश्यकता है, जिसके उपरान्त वह प्रगट होता है।*

*देखिये कार्नफोर्ड द्वारा अनूदित प्लेटोकृत रिपब्लिक का आक्सफोर्ड

साक्रेटीज का मत था कि विवेक के लिये किसी विशिष्ठ शिक्षण की उस प्रकार से आवश्यकता नहीं होती जिस प्रकार से अन्य कलाएं अथवा शिल्पादि सीखने के लिये होती है। सदाचार तथा उसके तत्व ग्रहण करने की योग्यता प्रायः सभी मनुष्यों में प्राकृतिक रूप से विद्यमान रहती है। सभी मनुष्य इस योग्य होते हैं कि वे संसार के प्रति एक तर्क-संगत दृष्टिकोण बना सकें तथा अपने जीवन में शिवत्व ला सकें। जीवन की शुचिता एवं श्रेष्ठता को ज्ञान का एक खण्ड मान लेना उचित नहीं; वह तो समस्त जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। अतएव, साफिस्टों की भांति वह स्वीकार नहीं करता था कि जीवन-कला की शिक्षा वैसे ही लेनी चाहिये, जिस प्रकार से अन्य शिल्प-कलाओं की शिक्षा ली जाती है। अन्य कलाओं के सद् एवं असद् दोनो हेतु हो सकते हैं; यथा चिकित्सक अपनी कला का प्रयोग रोगी को मारने तथा निरोग करने, दोनों में कर सकता है। इसी प्रकार राजनीति को भी एक कला मानना चाहिये। वह जनता के हित तथा अहित दोनों करने में समान रूप से समर्थ है। अतएव राजनीति विशेषज्ञ का विषय है।

प्रत्येक व्यक्ति राजनीति में हस्तक्षेप करने योग्य नहीं होता। यह एक कला है जो नैसर्गिक योग्यता होने पर शिक्षा द्वारा सिद्ध की जा सकती हैं। किन्तु श्रेष्ठ जीवन का कौशल इस द्विधा से मुक्त है। उससे केवल सद्परिणाम ही संभव है, असद् नहीं। इसलिये, उसे कला नहीं माना जा सकता। जहां, सदाचार और श्रेष्ठ-जीवन को, अन्य कलाओं की भांति एक पृथक कला न मानकर साफिस्टों से साक्रेटीज भिन्न-मत था, वहां राजनीति को कला मानने में उनसे

संस्करण पृष्ठ २०८। पुनः उक्त ग्रंथ के प्रष्ठ २५६ पर साक्रेटीज कहता है कि जब दार्शनिक शासकों की साधना पूरी हो जायगी और उनमें जो खरे उत-रेंगे वे अपने नेत्र उठाकर उस महाशिव (सुप्रीम गुड) के दर्शन करेंगे जिसकी झलक पड़ने से ही संसार के विभिन्न पदार्थों में शिवत्व भासित होता है।

सहमत भी था। तर्कसिद्ध ज्ञानाश्रयी कर्म-प्रणाली पर साक्रेटीज का जोर था। किन्तु परम्परागत आचार व्यवहार का वह विरोधी नहीं था। चाहता था उन्हें अधिक व्यापक बना देना। सदाचार की उसने किसी नई नियमावली का आविष्कार नहीं किया और न कोई नया पंथ ही चलाया। पुरानी चीजों की ओर उन्नत दृष्टिकोण रखने का ही उसका आग्रह था।

एथेन्स के जनतंत्र में मूर्खता का ताण्डव देखकर यदि साक्रेटीज ने ज्ञान की महत्ता सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में भी स्थापित की तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। एथेन्स में नत्थू-खैरों की हुकूमत देखकर वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा था और खुलकर आलोचना करता था। उसके दो शिष्य क्रीटियस तथा इसोक्रेटीसने राज्यक्रान्ति भी की थी। वह स्वयं किसी प्रकार की राजनैतिक आकांक्षा का शिकार नहीं था। यह उसका सत्य का ही आग्रह था जिसके कारण वह जिस प्रकार जीवन की अन्य समस्याओं की हर तरह से परीक्षा करता था वैसे ही राजनैतिक प्रश्नों को भी तोलता था। साहस का अभाव न होने के कारण वह अपनी बात कहने से चूकता कदापि न था, चाहे वह राज्य के ही विरुद्ध क्यों न हो। राजनैतिक क्षेत्र में ज्ञान की प्रधानता स्थापित करने वाले, साक्रेटीज से पहले, पायथागोरस तथा अन्य पायथागोरसी दार्शनिक हो चुके थे। साक्रेटीज पर इस प्राचीन दर्शन का न केवल प्रभाव पड़ा, माना तो यह जाता है कि वह एथेन्स के पायथागोरसी दार्शनिकों का नेता था और किसी विद्यालय का अध्यक्ष भी। पायथागोरसी दर्शन का प्रभाव साक्रेटीज पर बहुत स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है, और उसके जीवन-काल में ही, उसके अनन्य शिष्य प्लेटो ने तो अपना सम्पूर्ण दर्शन पायथागोरस के ही आधार पर विकसित किया। यदि प्रो० बर्नेट का विचार ठीक है, तो प्लेटो द्वारा लिखित साक्रेटीज के संवादों में जो विचार साक्रेटीज के मिलते हैं, वे वास्तव में साक्रेटीज के ही हैं। तब तो पायथागोरसी दर्शन के प्रभाव की कोई सीमा नहीं। क्योंकि, राजनीति, शिक्षा, मनोविज्ञान,

शासन-प्रणाली सभी कुछ जो हमें प्लेटो के संवादों में मिलता है, अपने बीज-रूप में पायथागोरसी दर्शन में विद्यमान है।

सामाजिक संस्थाओं के प्रति प्रयोजनवाद साक्रेटीज का आग्रह था। प्रत्येक अस्तित्व, व्यापार तथा घटना के प्रयोजन की खोज करना उसका उद्देश्य था। किसी विषय का प्रयोजन बिना समझे उसका पूर्णरूप से ग्रहण नहीं हो सकता। जो लोग इसकी उपेक्षा करके भी बातों को मान लेते हैं, वे वस्तुतः उन्हें समझते नहीं। केवल अन्धानुकरण करते हैं। यूनान की प्राचीनतम सामाजिक परम्पराओं के हेतु को वह प्रकाशित कर देना चाहता था। उसका यह नवीन दृष्टिकोण लोगों को चौंका देने वाला था। वैसे तो वह परम्पराओं को स्वीकार करने के लिये हमेशा तत्पर था किंतु उसके तर्क से बहुतेरे प्रचलन अत्यन्त खोखले तथा अनुपयोगी सिद्ध हो चुके थे। अपना समय व्यतीत कर, बन्दर के मृत शिशु की भांति वे अब भी समाज के साथ संलग्न थे। साक्रेटीज का प्रयोजनवाद रुढ़िवादियों के लिये असह्य हो रहा था। उस समय की राजनैतिक शक्ति ने साक्रेटीज की इस भीषण एवं क्रान्तिकारी ज्ञानाग्नि से अपनी रक्षा करने के लिए ही उसे प्राणदण्ड दिया था। यूनान के अगले दार्शनिकों पर साक्रेटीज के प्रयोजनवाद का असाधारण प्रभाव पड़ा। न केवल अध्यात्मवाद का ही नया क्षेत्र इससे खुल गया, बल्कि भौतिक विज्ञान पर भी इसका कम प्रभाव नहीं पड़ा। अरिस्टाटिल के विकासवाद को इससे प्रेरणा मिली।

तर्क-प्रणाली

अपनी बात प्रस्तुत करने का ढंग भी साक्रेटीज का निराला ही था। आयोनियां के दार्शनिकों की भांति वह अपनी बात को जटिल तथा दुरूह वाक्यों में पहेलियों की तरह नहीं कहता था। न साफिस्टों की भांति, उसने विभिन्न विषयों को बांट कर प्रभावशाली अनुरंजित भाषा में उन्हें प्रस्तुत

करनाही सीखा था। अपनी बात समझाने के लिए स्पष्ट और नुकीले प्रश्नों का वह प्रयोग करता था। शंकालु उन्हीं के सहारे निर्दिष्ट दिशा की ओर बंधा हुआ-सा चला जाता। इससे विपक्षी को कुछ परेशानी और झुंझलाहट अवश्य होती होगी। परन्तु साक्रेटीज की प्रतिभा के आगे लाचार होने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह जाता था।

साक्रेटीज के तर्क करने के ढंग की चर्चा पीछे कई स्थलों पर की जा चुकी है। उसके कारण साक्रेटीज, जनता में कितना अप्रिय हो गया था; वे लोग, जो उसके प्रश्नों का शिकार बनते थे, बहुधा कितना चिढ़ जाते थे, हम देख चुके हैं।* विचित्र बात थी कि वह अज्ञ बनकर विपक्षी के संमुख प्रस्तुत होता और अन्त में विपक्षी विज्ञ का भंडाफोड़ हो जाता। पाश्चात्य तर्कशास्त्र में यह 'साक्रेटिक आयरनी' कहकर प्रसिद्ध है। इसके द्वारा श्रोताओं के विचार स्फूर्त हो उठते और वे स्वतन्त्र चिन्तन के लिये सबल प्रेरणा का अनुभव करने लगते थे। साक्रेटीज अपने पकेपकाये सिद्धान्त लादने में विश्वास नहीं करता था।

साक्रेटीज के तर्क अनुभव पर आधारित थे। संकलित अनुभव (भूयोदर्शन) के आधार पर वह जाति (जेनेरा) एवं वर्ग (स्पिसीज) का निर्णय करता था। उसकी तर्क-प्रणाली, इस प्रकार से, इन्डक्शन प्रणाली का प्रयोग करती और पुनः जब वह प्राप्त सिद्धान्तों का प्रयोग करता तो निगमन-प्रणाली (डिडक्शन प्रणाली) भी उसके चिन्तन में प्रयुक्त हो जाती। साक्रेटीज पहला व्यक्ति था जिसने सत्य की परीक्षा में इन तर्क-प्रणालियों का प्रयोग किया। स्वयं उसने इसके बीज जेनो से प्राप्त किये थे।

यद्यपि बहुतांश में साक्रेटीज बुद्धिवादी ही माना जाता है तथापि उसका निजी जीवन अंध विश्वास एवं धारणाओं से शून्य

*देखिये पृष्ठ संख्या ११८।

नहीं था। विषपान के उपरान्त उसे अपोलो देवता को मानी गई एक बलि का स्मरण हो आया। अतएव उसने अपने शिष्य से कहा कि वह बलि अवश्य सम्पन्न कर दी जाय। प्लेटो के अनुसार साक्रेटीज यदाकदा अन्तर्मुखी होकर विमुग्ध सा हो जाया करता था। यही नहीं, साक्रेटीज तो आरंभ में भौतिकवादी विचारक था और दार्शनिक मार्ग का अवलम्ब उसने डेल्फी देवता के ही आदेश से लिया था। डेल्फी की रहस्यमय आज्ञा उसके जीवन की महानतम प्रेरणा थी। इसका कारण आरफ्यूसी प्रभाव ही समझना चाहिये क्योंकि पायथागोरसी दर्शन और दार्शनिकों से साक्रेटीज के सम्बन्ध थे।

राजनैतिक विचार

एथेंस का शासन इतना कायर और निर्बल हो चुका था कि उसे अपने सबसे सच्चे नागरिक से ही भयभीत होने लगा। साक्रेटीज ने अपने सम्पूर्ण जीवन से, उससे भी अधिक अपनी मृत्यु के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि वह प्राण-पण से नगर के कानून की रक्षा करेगा। केवल दैवी नियम ही हैं जो समाज के नियमों से अधिक श्रेष्ठ माने जा सकते हैं। साफिस्टों की भांति साक्रेटीज के संमुख भी व्यापक नैसर्गिक एवं सामाजिक नियमों की विषमता आई। किन्तु उसे दूर करने का जो रास्ता उसने अपनाया वह साफिस्टों से विपरीत था। उक्त विषमता की परिस्थिति में साफिस्टों का मत था कि समाज और शासन के नियमों की अवहेलना होनी चाहिये। खुलेआम या कानून की आंख बचाकर। पर इससे विषमता दूर तो नहीं होती, एक को नष्ट करके ही दूसरे को जीवित रक्खा जाता है। विवेक की प्रधानता स्थापित कर, साक्रेटीज ने राजनैतिक जीवन से इस विषमता का बहिष्कार करने का जोरदार प्रयत्न किया। विवेकवान व्यापक नियमों से अवगत होता है। यदि कानून बनाने का काम उसे ही करना होगा तो अवश्य ही वह दोनों में समन्वय स्थापित करेगा। साक्रेटीज जिस

प्रकार के शासनतंत्र का समर्थक था, वह आगे चलकर प्लेटो के दार्शनिक शासकों में स्पष्ट रूप-रेखा प्राप्त करता है।

एथेंस के जनतंत्रीय शासन के साथ उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी। समूह-शासन में उसे आस्था नहीं थी। उसका कहना था कि जब जूता गांठने, कपड़े धोने, चिकित्सा आदि जैसे अल्प महत्व के विषयों में हम विशेषज्ञों की मांग करते हैं तो राजनीति जैसे महत्वपूर्ण विषय में, जिस पर हमारा ही नहीं पूरे समाज का जीवन आश्रित है, हम साधारण लोगों का भरोसा क्यों कर लेते हैं। राजनीति में केवल विशेषज्ञ को ही हाथ डालना चाहिये। इस प्रकार के विचारों के कारण साक्रेटीज की ओर कुलीन वर्ग के लोग अधिक आकृष्ट थे, और उसे बहुधा कुलीनतावाद का ही समर्थक माना जाता था।

यूनान के कुछ राज्यों में पांसा फेंक कर राजनैतिक निर्णय करने की प्रणाली का भी वह घोर विरोधी था। एथेंस में सेनानायकों का निर्वाचन इस प्रणाली से होता था। उसकी वह खुल कर आलोचना करता था। सिद्धान्तः, वह कहता था, पांसा फेंकने में उचित और अनुचित दोनों ही पक्ष समान स्थिति में रख दिये जाते हैं। विवेक से ही क्यों नहीं योग्यता का निश्चय करके नियुक्ति की जाती ?

लघु अनुयायी

साक्रेटीज ने अपने विचारों को कभी लिपिबद्ध तो किया नहीं, और न कभी उस प्रकार से एकान्त-सेवन ही किया जिस प्रकार से उसके दार्शनिक शिष्यों ने किया, जिससे उसका दर्शन एक सुसम्बद्ध श्रृंखला में पिरोये हुऐ विचारों द्वारा निर्मित नहीं हो सका। बाजार-हाट के वाद-विवाद से किसी दार्शनिक-प्रणाली का निर्माण नहीं होता। किन्तु इससे उसकी बौद्धिक उर्वरता को विविध प्रकार के लोगों को प्रभावित करने का मुक्त अवसर अवश्य मिला। किसी दार्शनिक प्रणाली से बंधा न होने के कारण तथा उसके कथन अत्यन्त सारगर्भित होने के कारण, वह अपनी

शिष्य परम्परा द्वारा कई प्रकार से समझा गया और उसके दर्शन को कई दिशाओं में बढ़ाया गया। मेगारा में उसके एक शिष्य यूक्लिडने गणित-प्रधान दर्शन की परम्परा स्थापित की; 'काइनिक'* दार्शनिकों ने उसकी सादगी और तप को विशेषता दी और अनुकरण करने में उससे भी आगे बढ़ गये। काइरीन† निवासी 'काइरिनायक' दार्शनिकों ने जीवन-सुख को ही अपनी सम्पूर्ण साधना अर्पित कर दी; जेनोफोन और ईसोक्रेटीस उन शिष्यों में थे जिन्होंने गुरु की व्यवहारिकता को उनका मुख्य उपदेश जाना, किन्तु प्लेटो ने साक्रेटीज के दार्शनिक पक्ष को ही विकसित करने में अपना जीवन लगा दिया।

साक्रेटीज जैसे योग्य गुरु के योग्य शिष्य और मित्र प्लेटो को ही प्रथम स्थान मिलना चाहिए; किन्तु उसका अकेले ही इतना प्रचुर साहित्य तथा विशद दर्शन है कि उसके लिये पृथक एक नहीं, अनेक अध्यायों का स्थान देकर भी संभवतः न्याय न किया जा सके। अतएव इस अध्याय के अन्तर्गत प्लेटो के अतिरिक्त, साक्रेटीज के लघु अनुयायियों में प्रमुख दो की चर्चा की जायगी।

जेनोफोन

साक्रेटीज तथा प्लेटो की ही भांति यह भी एथेन्स के जनतंत्र का विरोधी था। स्वयं एक सैनिक था और अनेक बार युद्धक्षेत्र में हो आया था। कई बार फारस के विरुद्ध भी लड़ा तथा पारसियों से बहुत प्रभावित हुआ। इस कारण से यह एकराजतंत्र के साथ-साथ सैनिक राजतंत्र का पक्षपाती था। यह चाहता था कि राज्य में वैसी ही कठोरता के साथ

*यह शब्द 'केनाइना' संज्ञा से विशेषण बना है। केनाइना का अर्थ है कुत्ता। यूनान में कुत्ते की जिद और लगन का उदाहरण दिया जाता था। स्वयं प्लेटो ने साक्रेटीज के लिये इस उदाहरण का प्रयोग किया था। 'काइनिक' दार्शनिक अपने हठ के ही कारण इस सम्बोधन के पात्र बने।

†उत्तरी अफ्रीका में यूनानियों का एक उपनिवेश।

नियम पालन कराये जांय जिस प्रकार सैनिक संगठन में होते हैं। राज्य केवल अपराध-निरोधक कानून न बनाये बल्कि ऐसे कानूनों की भी सृष्टि करे जो जनता का चारित्रिक स्तर उठाने में सहायक हों। इस प्रकार जेनोफोन, अपने गुरु साक्रेटीज तथा प्लेटो के साथ, प्रोटागोरस की बात मानने वाला था कि राज्य एक बड़ी शिक्षा संस्था के रूप में कार्य करे। जेनोफोन के दो ग्रंथ प्राप्य हैं, साइरोपीडिया तथा हीरो। दोनों राजनैतिक उपन्यास हैं, जिनमें लेखक ने अपनी राजनैतिक तथा सामाजिक कल्पनाओं को साकार किया है। पहिले में लेखक ने दिखाया है किस प्रकार शिक्षा के द्वारा साइरस श्रेष्ठ शासक के रूप में प्रगट होता है तथा उसके शासन के द्वारा राज्य के समस्त निवासी अधिक बुद्धिमान तथा सुखी हो जाते हैं।

उक्त वर्णन से ही स्पष्ट होगा कि जेनोफोन साक्रेटीज की ही भांति राजनीति में योग्यता-सिद्धान्त तथा ज्ञान की महत्ता में विश्वास करता था, किन्तु प्लेटो से भिन्न वह सैनिक शासन की स्थापना करना चाहता था; स्पार्टा की जीवन-प्रणाली का भी उस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।

इसोक्रेटीस

इसोक्रेटीस का जन्म ई० पू० ४३६ में और मृत्यु ३३८ में हुई थी। इस प्रकार वह ९८ वर्ष की आयु में मरा। प्लेटो से पहले जीवन प्रारंभ कर प्लेटो के बाद तक संसार में रहा। अपनी युवा अवस्था में वह सोक्रेटीज के सम्पर्क में आया था। यद्यपि साक्रेटीज का निकट का शिष्य था किन्तु वह गुरु के विचारों का गांभीर्य समझ नहीं सका। इसोक्रेटीस ज्ञान की प्रधानता का पक्षपाती न होकर जनमत का ही पोषक था। साक्रेटीज कहता था कि जनसाधारण राजनीति का गंभीर विषय नहीं समझ सकते, वे सत्य का ग्रहण नहीं कर सकते, किन्तु इसोक्रेटीस कहता था कि 'अनुपयोगी बातों में, सच्चाई की खोज में, व्यर्थ समय और श्रम नष्ट

करना बुद्धिमानी नहीं, 'लगभग सत्य तथा उपयोगी कार्य' में लगना चाहिये ।

प्लेटो से भी उसका कुछ मौलिक विषयों पर गहरा मतभेद था। प्लेटो विज्ञान तथा गणित की निश्चयात्मक शिक्षा पर जोर देता था और यह राजनीतिक परिस्थिति पर सही राय कायम कर लेनेकी योग्यता को ही उचित शिक्षा का लक्षण समझता था। इसोक्रेटीज राजनीति में वक्तृता को बहुत महत्व देता था; यह उसके लिये स्वाभाविक भी था, जब कि वह समय पहचानने वाला समयसेवी तथा व्यावहारिक राजनीतिज्ञ था। उसने राज्य-दर्शन की शिक्षा देने के लिए, प्लेटो तथा अरिस्टाटिल की भांति एक विद्यालय की स्थापना की थी, किन्तु वह मुख्यत: व्यवहारिक राजनीति तथा वक्तृता की ही शिक्षा देता था। इसोक्रेटीस साफिस्ट गार्गियस से बहुत प्रभावित था। उसी की तरह वह भी भाषा और शैली पर जोर देता था और उत्तर के बरबरों का दमन करना चाहता था।

यूनानी सभ्यता-संस्कृति की रक्षा, उनका विदेशो में विस्तार तथा उत्तर के बरबर एवं पूर्व क एशियाई देशों पर सैनिक आक्रमण इसोक्रेटीस की मुख्य प्रेरणायें दिखाई देती हैं। विशाल पारसी साम्राज्य के पड़ोस से तो वह आतंकित था ही, साथ ही उसका विचार था कि पूर्व के साम्राज्यों को तोड़ कर वहां के जनपदोंको मुक्त कर देना चाहिये। अपनी इन आकांक्षाओं को पुष्पित-पल्लवित देखने के लिये उसने सम्पूर्ण यूनानी नगर-राज्यों के सैनिक संगठन की आवश्यकता अनुभव की और इसके लिये मैसिडोनिया के नरेश को सम्बोधन करके लिखा भी। यद्यपि उस समय तो उसके प्रयत्न का कोई फल नहीं हुआ, किंतु उसकी बात का तथ्य आगे चलकर प्रगट हुआ जब ई० पू० ३३७ में कोरिन्थ-कांग्रेस का नायक बनाया गया।

प्लेटो तथा अरिस्टाटिल तो अन्य छोटे-बड़े यूनानी दार्शनिकों की भांति केवल नगर-राज्य के ही राजनीतिज्ञ होकर रह गये, किन्तु

इसोक्रेटीस, जिसका दार्शनिक चिन्तन स्थूल ही रहा, किन्तु वह नगर-राज्य की सीमाएं लांघ कर सम्पूर्ण यूनान का नागरिक बन सका। उसने नगर-राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया जो कि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का बीज-रूप माना जा सकता है। यद्यपि वह समस्त यूनान के राज्य-संघ की कल्पना न कर सका, किंतु अवश्य वह विदेशी साम्राज्यों से मुठभेड़ लेने के लिये सभी राज्यों का संयुक्त सैनिक मोर्चा कायम करना चाहता था। इसके लिये वह आजीवन उपयुक्त नायक की खोज में लगा रहा और अन्त में उसके प्रयत्नों का वही फल हुआ जो प्लेटो के दार्शनिक शासक की खोज के प्रयत्नों का; दोनों समान रूप से हताश हुए।

इसोक्रेटीस के सबसे उपयोगी विचार अन्तर्राज्य समस्या के संबंध में हैं। इसमें सन्देह नहीं यह उस समय की प्रधान समस्या थी और सभी विचारकों ने इसे सुलझाने का प्रयत्न किया। पारसी साम्राज्य की घातक छाया हर समय यूनान पर छायी रहती थी और दूसरी ओर राज्यों की पारस्परिक अनबन का लाभ उठाने का उसे अवसर मिलता था। अतएव सभी चाहते थे कि यूनान एक सूत्र में बंधकर सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में खड़ा हो।

नगर-राज्य के अन्तरंग शासन में इसोक्रेटीस वंशक्रमानुगत कुलीनतावाद के पक्ष में था। उसके विचार से सोलन का युग स्वर्ण-युग था और उसे ही आदर्श मानकर पुनर्स्थापन का यत्न होना चाहिए। इसी प्रकार एरोपेगस की शक्तिहीन कुलीन-परिषद को पुनः शक्तिसम्पन्न कर शासन में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिये। यद्यपि वह जनतंत्र का समर्थक था, किन्तु वह जनतंत्र जो भलीभांति निर्वाचित है और जिसमें अधिकार सुयोग्य व्यक्ति को प्राप्त है।

काइनिक-दार्शनिक

यह लोग बुद्धिवादी एवं चिन्तनशील थे। वाह्य जगत की उपेक्षा

करते थे और समाज में, कुल, धन-सम्पत्ति, वर्ण, राष्ट्र आदि के आधार पर प्रचलित भेद-भाव के विरुद्ध थे। यूनान की प्राचीन धारणा कि मनुष्य का कल्याण समाज के नियमों के अनुशीलन में है तथा उसका विकास समाज में ही हो सकता है, काइनिकों को मान्य नहीं थी। इनका कहना था कि प्रत्येक मनुष्य अपने में पूर्ण है; उसे बाहर से कुछ न चाहिये।* मनुष्य का जीवन आध्यात्मिक होना चाहिये। उसे सुखी बनाने के लिये वाह्य आडम्बर आवश्यक नहीं।

इस सम्प्रदाय का संस्थापक थ्रेस निवासी एन्टीस्थिनीज था जो प्लेटो का समकालीन और सात्रेटीज का शिष्य था। गुरु के वचन तथा जीवन-प्रणाली दोनों ने काइनिक लोगों को प्रभावित किया। जीवन की सादगी इनमें पराकाष्ठा तक पहुंच गई थी; नंगे पैर, चीवर धारण किये, अस्तव्यस्त रूप, शरीर के सुख-स्वास्थ्य की पूरी उपेक्षा करने वाले किसी भारतीय फकीर के समान काइनिकों का जीवन था। कदा-चित इन पर ही आक्षेप करते हुए अरिस्टाटिल ने लिखा कि समाज से पृथक या तो देवता का जीवन है अथवा सुअर का-सा गंदा जीवन। सचमुच काइनिक दार्शनिक का वाह्य जीवन ऐसा ही गंदा रहा होगा, लेकिन इनके आध्यात्मिक विकास से प्रभावित होकर अरिस्टाटिल ने इनके जीवन में देवत्व की भी कल्पना की। जीवन के प्रति इनका सन्यास यूनान के तत्कालीन पतन की प्रतिक्रिया थी। उस समय नगर-राज्यों की राज-नीति मनुष्य की कलुषित भावनाओं का क्रीड़ा-स्थल बन चुकी थी। अपने अपने स्वार्थ में सभी लगे थे। अपना घर भर लेने में किन्हीं उपायों का सहारा लेने में लोगों को हिचक नहीं रह गई थी। भले-बुरे का ज्ञान जाता रहा था। दैहिक सुख में समाज आकण्ठ डूब चुका था। ऐसी अवस्था

*संभवतः अरिस्टाटिल का यह कहना कि नगर-राज्य आत्मपूर्ण हों, उन्हें बाहर पर आश्रित न रहना पड़े, काइनिको की आत्मपूर्ण होने की कल्पना का ही प्रभाव था।

में काइनिकों ने मनुष्य को चारित्रिक पतन से बचाने के लिये लल-कारा तथा उसकी झूठी शान, दिखावा और बनावटीपन की ओर घृणा प्रदर्शित की। उन्होंने सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य इसलिए नहीं प्रदर्शित किया कि परलोक बनें, बल्कि इस जगत में ही, विलासपूर्ण जीवन भीषण आध्यात्मिक पतन का हेतु हो रहा था, इसलिये त्याज्य था।

यूनानियों की नगर-भक्ति को यह अत्यन्त संकुचित कहते थे*। उन्हें इसोक्रेटीस की यूनानी राष्ट्र की कल्पना से भी संतोष नहीं था। काइनिकों की दृष्टि में संसार के सभी मनुष्य समान हैं। काला, पीला, सफेद रंग मनुष्य को बड़ा या छोटा नहीं बनाता। बरबर और यूनानी में, स्वामी तथा सेवक में प्रकृति की ओर से कोई भेद नहीं। सभी मनुष्य विश्व-साम्राज्य के नागरिक हैं। एन्टीस्थिनीज का शिष्य डायोनीज विश्व-साम्राज्य के लिए एक परम बुद्धिमान सम्राट की भी कल्पना करता है, साथ ही व्यक्ति को बांध रखने वाली अन्य संकुचित संस्थाओं घर, नगर-राज्य आदि के तोड़ देने का समर्थन करता है। उसके अनुसार, प्लेटो की भांति, पत्नी एवं संतति–समाज (कम्युनिटी आव वाइव्स एण्ड चिल्ड्रेन) होना चाहिये। ऐसी अवस्थामें निजी सम्पत्ति का भी वह विरोधी अवश्य होगा। उक्त विचारों को देखकर प्रतीत होता है कि प्लेटो पर इन दार्शनिकों का प्रभाव पड़ा। दार्शनिक शासकों के जीवन के अंतिम दिन किस प्रकार बीतें, इस सम्बन्ध में प्लेटो की परामर्श काइनिक दार्शनिक के जीवन की प्रतिच्छाया जान पड़ती है।

---

*अर्नेस्ट बार्कर का कथन है कि काइनिक विदेशी होने के कारण यूनान के नगर-राज्य के विरोधी थे। एन्टीस्थिनीज थ्रेस का तथा डायोनीज सिनोपे का रहने वाला था। (बार्कर कृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ १०७)
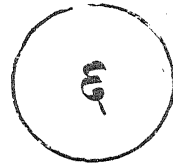
प्लेटो और उसका दर्शन

यूनान के दार्शनिक-गगन के सभस्त ज्योतिर्पिण्डों में सर्वाधिक देदीप्यमान प्लेटो था । पश्चिम में व्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध दर्शन-प्रणाली का निर्माण करने वाला पहला व्यक्ति यही था । इससे पहले जो भी दार्शनिक विचार थे वे किसी अन्य प्रयोजन से थे तथा फुटकल थे। प्लेटो के चिन्तन का केन्द्र स्वयं दर्शन था, जीवन के अन्य सभी पक्षों पर विचार उसी के आधार पर निर्मित थे । अतएव जीवन में व्यवस्था एवं तालैक्य (हारमनी) लाने के लिये दर्शन का पूर्ण रूप प्रस्तुत करना आवश्यक था। इसके लिये एक ओर तो उसको अपनी पारिवारिक परम्परा छोड़ते हुए सक्रिय राजनीति से हाथ धोना पड़ा और दूसरी तरफ साक्रेटीज के ढंग पर सार्वजनिक स्थलों पर वाद-विवाद करना भी त्यागना पड़ा । यह दोनों ही दार्शनिक प्रणाली के निर्माण में बाधायें थीं, जो कि एकान्त चिन्तन एवं मनन के ही द्वारा संभव हो सकती थी। यद्यपि इस महान दार्शनिक के विचारों के साथ न्याय करने के लिये उसकी जागतिक

परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन ही उपयुक्त होता, तथापि इस स्थल पर जिन सीमाओं में बंधकर चलना है, उनमें कुछ प्रमुख घटनाओं से ही लेखक तथा पाठक, दोनों को सन्तोष करना होगा।

जीवन-वृत्त

अरिस्टान तथा पेरिक्टिओने के सबसे छोटे पुत्र प्लेटो का जन्म ई० पू० ४२७ में एथेंस में हुआ तथा मृत्यु अस्सी वर्ष के उपरान्त ई० पू० ३४७ में हुई। बाल्यकाल के सम्बध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। किशोर होकर उसने सुप्रसिद्ध दार्शनिक हिराक्लाइटस के शिष्य क्रेटाइलस से शिक्षा प्राप्त की। आगे चलकर वह साक्रेटीज के प्रमुख शिष्य एवं मित्र के रूप में दिखाई देता है। इतिहासकारों का विश्वास है कि उसने पेलोपोनेशियन युद्ध के अंतिम पांच वर्षों में तथा दूसरी बार लगभग चालीस साल की उम्र में सैनिक का कार्य किया। दूसरी बार उसको वीरता के लिये कदाचित पुरस्कृत भी किया गया।

जिस कुल में प्लेटो ने जन्म लिया वह प्राचीन तथा श्रीसम्पन्न था। वे लोग अपने पूर्वपुरुषों में सोलन को भी बताते थे। राजनैतिक क्षेत्र में यह कुल प्रभावशाली था। समय समय पर राजसत्ताधारियों में उसके परिवार के लोग होते थे। विद्वानों के बहुमत के अनुसार प्लेटों के कुल का जो प्रभाव एथेंस की राजनीति पर पड़ा वह अनुदार था। प्रो० बर्ट्रेण्ड रसेल का कहना है कि स्वयं प्लेटों में जनतंत्र के प्रति घृणा वंशगत प्रभाव थी†। किंतु प्रो० सेबाइन की बात भी रोचक है कि कुल के प्रभाव पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता जब कि अरिस्टाटिल कुलीन वंश का न होकर भी अनुदार कम नहीं था।* वंश के प्रभाव को छोड़ कर भी

†प्रो० बर्ट्रेण्ड रसेलकृत 'हिस्ट्री आव वेस्टर्न फिलासफी' पृष्ठ १२५।
*प्रो० सेबाइन कृत, 'हिस्ट्री आव पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ ४५।

प्लेटो के निजी अनुभव किसी प्रकार जनतंत्र के समर्थक न हो सके। इसीलिये जब 'तीस तानाशाहों' ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तो उसे बड़ी आशा हुई और उसने सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने की प्रबल प्रेरणा का अनुभव किया। इस संबंध में उसके एक पत्र का कुछ अंश (अनूदित) प्रस्तुत करना उचित होगा। पत्र में उसने लिखा था :

'अपने यौवन में मुझे भी वे अनुभूतियां हुई जो बहुधा लोगों को होती हैं। मैंने विचार किया स्वावलम्बी होते ही सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर जाऊंगा। इन अभिलाषाओं को उस समय एथेंस की परिस्थितियों में कुछ अनुकूलता भी दिखाई दी। तत्कालीन विधान की सर्वत्र भर्त्सना हो रही थी। फिर क्रान्ति हो गई। उस क्रान्ति के नेताओं में मेरे सम्बंधी तथा मित्र भी थे।* उन्होंने तुरन्त मुझे सहायता के लिये आमन्त्रित किया, जैसे यही (सक्रिय राजनीति) मेरे जीवन का स्वाभाविक मार्ग था। कोई आश्चर्य नहीं, नवयुवक ही था; मैंने कल्पना की कि यह लोग अन्यायपूर्ण शासन के स्थान पर न्याय की स्थापना करेंगे। अतः ध्यानपूर्वक देखता रहा कि यह लोग करते क्या हैं। बहुत समय व्यतीत होने के पूर्व ही मैंने देखा कि पहले का विधान इनकी व्यवस्था की अपेक्षा स्वर्गीय था। विशेषतः मेरे मित्र, साक्रेटीज को, जिनकी अवस्था ढल चुकी थी, और निस्संकोच होकर, जिन्हें मैं उस समय के जीवित व्यक्तियों में सर्वाधिक चरित्रवान कह सकता हूं, ऐसे व्यक्ति को इन्होंने अन्य लोगों के साथ भेजा कि एक नागरिक को बध करने के लिए बलपूर्वक गिरफ्तार कर लावें। अवश्य उसमें मन्तव्य यह था कि साक्रेटीज को, इच्छासे अथवा इच्छा के

*कारमाइडीज तथा क्रीटियस प्लेटो के घर के ही लोग थे। पहला चाचा और दूसरा भाई लगता था।

विरुद्ध, इस मामले में घसीटा जाय। साक्रेटीज ने साफ इन्कार कर दिया। इस कुत्सित कार्य में भागी बनने की अपेक्षा किसी भी आपत्ति का स्वागत करना उचित समझा। इसी प्रकार की दूसरी बातों से परेशान होकर समय के दोषों से मैं सकुच गया।

'कुछ ही समय पश्चात 'तीस तानाशाहों' का पतन हो गया। और पूरा विधान बदल डाला गया। पुनः मैं आकर्षित हुआ, यद्यपि इस बार कम उत्साहपूर्वक, कि राजनीतिमें सक्रिय भाग लूं। इन उथल-पुथल के दिनों में ऐसी घटनायें हो रही थीं, जिनसे कोई भी परेशान हो उठे। आश्चर्य क्या जो क्रांति-काल में कुछ लोगों ने अपने दुश्मनों से वीभत्स प्रतिशोध ले लिये। फिर भी देश-निष्कासित व्यक्तियों ने शक्ति-सम्पन्न होने पर संयम से काम लिया। परन्तु, साक्रेटीज पर एक घृणित आरोप लगाकर मुकदमा चला दिया, एक ऐसा आरोप लगा कर जो सर्वान्त में ही उन पर लग सकता था—अधार्मिकता का आरोप। दोषी ठहरा कर उस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड दिया गया जिसने दोषारोपण करने वाले के ही, संकट काल के एक मित्र को गिरफ्तार करने का जघन्य कार्य करना अस्वीकार कर दिया था।

'जब इन बातों पर विचार किया और उन व्यक्तियों पर भी जिनके हाथ में बागडोर थी, उसके बाद वयस्क होकर परम्पराओं का मैंने जब अध्ययन किया तो राज्य का न्यायपूर्ण शासन और भी कठिन प्रतीत होने लगा। विश्वासपात्र मित्रों तथा साथियों के अभाव में कार्य करना असंभव था। मेरे परिचितों में कोई ऐसा था नहीं; उधर एथेंस में शासन की पुरानी प्रणाली और परम्परायें विघटित हो चुकी थीं। नये सहयोगी बनाना सरल नहीं था। उस समय कानून और प्रचलन का ताना बाना भी चिन्ताजनक गति से टूट रहा था। परिणामतः सार्वजनिक जीवन के लिये इतना उत्सुक

हो कर भी जब मैंने यह दुर्गति देखी तो, किंकर्त्तव्य विमूढ़ रह गया। लेकिन मैंने यह चिन्ता करना नहीं त्यागा कि आखिर स्थिति कैसे सुधर सकती है, खासतौर से शासन के सम्पूर्ण ढांचे की। साथ-साथ उस अवसर की प्रतीक्षा भी करता रहा जब राजनीति में सक्रिय भाग ले सकता।'*

प्लेटो की चुस्त तर्क-बुद्धि, साक्रेटीज का साथ, सैनिक जीवन के अनुशासनपूर्ण अनुभव आदि के साथ-साथ एथेंस की तत्कालीन राजनैतिक अस्तव्यस्तता भी जनतंत्र के विरुद्ध मत का उसमें निर्माण करने के लिए उत्तरदायी थे। स्पार्टा की सेनाओं के आगे जनतंत्रीय एथेंस को घुटने टेकते देखकर तेईस वर्षीय युवक प्लेटो के अनुदार विचारों को ही बल मिला होगा। 'तोस तानाशाहों' के पतन के उपरान्त जनतंत्र ने जो कुछ किया वह कदापि उस शासन-प्रणाली के समर्थन में उल्लेखनीय नहीं था। साक्रेटीज का वध देखकर तो प्लेटो ने जनतंत्र के प्रति कितनी घृणा का अनुभव किया होगा, कल्पना करना ही कठिन है। किंतु अपनी लाचारी में जो कुछ प्लेटो ने किया वह साक्रेटीज को अमर कर देने का उपाय ठहरा। उसने साक्रेटीज के विचारों को संवाद-रूप में लिपिबद्ध कर डाला। साक्रेटीज को जिस रूप में संसार जानता है, प्लेटो के ही माध्यम से जान सका।

साक्रेटीज की मृत्यु के बाद एथेंस उसके अनुयायियों के रहने योग्य नहीं रहा। प्लेटो अपने कुछ मित्रों के साथ मेगारा के लिये चल पड़ा। मेगारा में पहले से ही साक्रेटी का शिष्य यूक्लिड प्रभावशाली दार्शनिक था। प्लेटो पर भी उसका प्रभाव पड़ा। आगे जब वह इटली तथा सिसली के यूनानी नगरों में भ्रमण करता

*प्रो० एफ० एम० कार्नफोर्ड द्वारा अनूदित 'रिपाब्लिक आव प्लेटो' के प्राक्कथन में उद्धृत।

हुआ पहुंचा तो वहां उसे पाइथोगरसी दार्शनिकों का सम्पर्क प्राप्त हुआ। इन सम्पर्कों से प्लेटो में गणित एवं रहस्यवाद की प्रधानता बढ़ी, जिसने अन्त तक उसके दर्शन को गतिविधि दी। ई० पू० ३८७ में वह सिराक्यूज पहुंचा, जहां के तानाशाह डायनीशियस (प्रथम) से उसकी भेंट हुई। प्लेटो के विचारों से असन्तुष्ट होकर उसने उसे स्पार्टा के राजदूत को सौंप दिया। राजदूत ने प्लेटो को गुलाम बना कर बेंच डाला। इसमें डायनीशियस (प्रथम) की स्वीकृति निहित थी। लगभग एक वर्ष की गुलामी के बाद दार्शनिक को मुक्ति मिल सकी। यद्यपि डायनीशियस की भेंट दुर्भाग्य पूर्ण रही किंतु उसके मंत्री और रिश्तेदार डिओन का सम्पर्क भविष्यपूर्ण था। वह प्लेटो का भक्त बन गया।

ई० पू० ३८६ में प्लेटो ने एथेंस में 'एकेडेमी' की स्थापना की। यह विद्यालय लगातार नौ सौ वर्ष तक शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र रहा। अवश्य, यह आयु अब तक किसी विद्यालय को प्राप्त न हो सकी। उस समय एथेंस सम्पूर्ण यूनान-जगत का विद्या-केन्द्र था। वहां देश-विदेश के लोग सांस्कृतिक एवं राजनैतिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये आया करते थे। राज्य-नेताओं की शिक्षा के सम्बंध में यूनान का प्रथम पत्रकार इसोक्रेटीस कहता था—'हमारा नगर सम्पूर्ण यूनान द्वारा वक्ताओं अथवा वक्तृता की शिक्षा देने वालों का गुरु माना जा चुका है'। प्लेटो की ही भांति इसोक्रेटीस का भी विद्यालय था। उसमें मुख्यतः राजनीति की शिक्षा दी जाती थी, तथापि वह अपने विद्यालय को शिक्षा को दार्शनिक कह कर प्रसन्न होता था। एकेडेमी से उसकी प्रतिस्पर्धा थी, जहां कि वस्तुतः दार्शनिक विषयों की शिक्षा ही मुख्य थी।

इसोक्रेटीस और प्लेटो दोनों यूनानी सभ्यता एवं संस्कृति के कट्टर पक्षपाती थे। यूनानी सभ्यता के मोर्चे दृढ़ बने रहे इसके

लिए प्लेटो प्रयत्नवान था। उसके एक शिष्य, जेनोक्रेटीस ने अलेक्जेण्डर को राज्य-तंत्र पर परामर्श दी और पूर्व दिशा में सिकन्दर ने यूनानी सभ्यता के प्रचार में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। पश्चिम में यही आशा वह सिराक्यूज के तानाशाह डायनीशियस से करता था। डायनीशियस (प्रथम) से तो उसकी जैसी निभी उसका उल्लेख पहले कर चुके हैं। इस घटना के बीस वर्ष के बाद जब डायनीशियस (द्वितीय) सिंहासनासीन हुआ तो डिओन ने उसे लिखा कि नये तानाशाह को दार्शनिक बनाने का सुवर्ण अवसर आ पहुंचा है और प्लेटो अविलम्ब आकर उसकी शिक्षा आरंभ कर दे। अपने विचारों को व्यवहारिक रूप देने की प्लेटो की अभिलाषा अतृप्त एवं उत्कट थी। उसे यह भय भी था कि उसका अस्तित्व केवल 'कथनी' तक ही न रह जाय और 'करनी' के अभाव में वह स्वप्नदर्शी कहलाने लगे।*

ऐसी मनोदशा के साथ-साथ, मित्र एवं अनुयायी डिओन के आग्रह के कारण 'एकेडेमी', जिसमें दूर-दूर से लोग आ-कर राजनीति की शिक्षा ग्रहण करते थे, स्वयं उठकर सिराक्यूज के तानाशाह के पास गई। सिराक्यूज में प्लेटो का अपूर्व स्वागत हुआ, लेकिन तानाशाह में न तो दार्शनिक बनने के लिये साधना करने का मनोबल था और न डिओन के अत्यधिक हठ का ही अनुकूल प्रभाव पड़ा। अवसर पाकर डिओन के विरोधी दरबारियों ने भी अड़ंगे लगाये। परिणाम यह हुआ कि प्लेटो को अपना शिक्षा-कार्य बन्द करके वापस लौट आना पड़ा। यद्यपि प्लेटो पूर्णतः निराश था, किंतु डायनीशियस ने उसे आश्वासन दिया कि वह पुनः उन्हें आमंत्रित करेगा। प्लेटो सिराक्यूज गया तो अवश्य तीसरी बार, लेकिन तानाशाह को

*प्लूटार्क लिखित 'डिओन का जीवन-चरित्र' (बर्नडोटे पेरिन का अंग्रेजी अनुवाद) खण्ड ६ पृष्ठ २३।

दार्शनिक बनाने के उद्देश्यसे नहीं, डिओन तथा शासक के बिगड़े हुए सम्बंधों को अनुकूल बनाने। दुर्भाग्यवश इस उद्देश्य में भी वह सफल न हो सका। इस समय तक प्लेटो का यश एवं प्रभाव यूनान-जगत पर छा चुका था। डायनीशियस ने विदाई के भोज के अवसर पर जब प्लेटो से कहा कि 'आप तो एकेडेमी में हमारे विरुद्ध चर्चा करेंगे' तो उसके उत्तर में प्लेटो ने कहा 'ईश्वर न करे एकेडेमी में वादानुवाद के विषयों का ऐसा अभाव कभी हो कि आप की चर्चा वहां की जाय।'

तानाशाह की शिक्षा में असफल होने के लिए स्वयं प्लेटो उत्तर-दायी ठहराया जा सकता है। पायथागोरसी प्रभाव के कारण वह गणित का अत्यधिक पक्षपाती था। एकेडेमी के द्वार पर उसने खुदवा रक्खा था 'ज्योमिति से अनभिज्ञ व्यक्ति प्रवेश न करे।' आदर्श-राज्य के शासक-पद पर आरुढ़ होने के लिये भी पहली सीढी, ज्योमिति का अध्ययन, उसने इतनी जरूरी बना रक्खी थी, कि डायनीशियस द्वारा बहुत आग्रह करने पर भी उसने पाठ्य-क्रम में परिवर्तन करना स्वीकार नहीं किया। डायनीशियस की श्रद्धा देखकर तो दोष यही प्रतीत होता है कि प्लेटो ने अपने पाठ्यक्रम में शिष्य की बौद्धिक सामर्थ्य का कोई विचार नहीं किया। अन्यथा, प्लेटो के आदर्श की हल्की सी झलक कदाचित उसमें मिल ही जाती। किन्तु कौन कह सकता है, प्लेटो ने आदर्श-पथ को 'क्षौरस्य धारा' मान कर अयोग्य व्यक्ति का उस पर चलाना अत्यन्त आपत्तिजनक समझ कर ही उसे शिक्षा देने का विचार त्याग दिया हो। किसी भी दशा में, प्लेटो की सिराक्यूज-यात्राएं आदर्श-शासक बनाने में सफल न हो सकीं। अर्नेस्ट बार्कर के शब्दों में, 'अपने समय और पीढ़ी की राजनीति में प्लेटो ने यही सक्रिय भाग लिया। यह कल्पना-विलास न था, असंभव भी नहीं था।

यदि वह सफल हो गया होता तो सिराक्यूज को आदर्श विधान प्राप्त हो जाता तथा पश्चिम दिशा की ओर से न केवल कार्थेज, रोम के आक्रमण से भी यूनानी जगत की रक्षा निश्चित हो गई होती। यदि वह असफल हुआ, तो इसमें पूर्णतः तथा मुख्यतः, उसका ही दोष न था। डायनीशियस के साथ व्यवहार करने में हो सकता है, उसने चूक की। किंतु यह तो सिद्ध करना अभी बाकी ही है कि दूसरे उपायों का परिणाम अन्यथा हुआ होता।'

यद्यपि इस सम्बन्ध में दूसरा मत नहीं हो सकता कि प्लेटो राज्य-दर्शन की व्यवहारिक आवश्यकता लगातार अनुभव करता था। कर्त्तव्य–बुद्धि बारबार उसे सक्रिय राजनैतिक क्षेत्र की ओर प्रेरित करती रहती थी, किंतु स्वभावतः वह सबल कल्पनाशील दार्शनिक था। उसके अनुसार आदर्श सृष्टि का अस्तित्व पृथक है, जो भौतिक मलिनता से दूर रहती है। व्यवहारिक राजनीति में प्लेटो के अनुभव विशेष सुखद नहीं कहे जा सकते। उनका जो प्रभाव दार्शनिक पक्ष पर पड़ा उससे काल्पनिक उड़ानों की ऊंचाई अवश्य कम हुई तथा जीवन की कठोर आवश्यकताओं की उपेक्षा में न्यूनता दिखाई पड़ी। किंतु प्लेटो ने अपने आदर्श के मूल रूप में किंचिन्मात्र परिवर्तन नहीं किया। कुछ लोगों का अनुमान है उसकी व्यवहारिकता पर प्लेटो को संदेह हो गया था, इसी कारण से आगे चलकर उसने चेतन-तर्क के स्थान पर कानून को व्यवहार क्षेत्र में आगे बढ़ाया।

रचनायें

प्लेटो के अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं। फिर भी प्लेटो के सम्बंध में यह निश्चय करना कठिन है कि किस विषय पर उसका मत क्या था। एक सच्चे दार्शनिक की भांति उसके लिखित पृष्ठ, स्वाभाविक ढंग से विचार करने में संलग्न बुद्धि के चित्र–जैसे बन गये हैं।

उनमें कटे-छंटे विचार नहीं मिलते । अनुमान किया जाता है कि अपने शिष्यों को पढ़ाते समय जो उनको दिया होगा, वह अवश्य इस प्रकार की सामग्री होगी। किंतु दुर्भाग्यवश उसके कक्षा-भाषण उपलब्ध नहीं हैं। जिस प्रकार अरिस्टाटिल द्वारा तैयार की गई कक्षा-भाषण की सामग्री ही मिली, ग्रंथ नहीं मिले; वैसे ही प्लेटो का दूसरा पक्ष अनुपलब्ध रह गया।

ई० पू० ३८६ में एकेडेमी की स्थापना तक जिन ग्रंथों की रचना हो चुकी थी उनमें रिपब्लिक के अतिरिक्त एपोलोजी, क्राइटो कारमाइडीस, लाचेज यूथिडेमस, मिनो, प्रोटागोरस तथा गारगियस हैं। एपोलोजी तथा क्राइटो सात्रेटीज की मृत्यु तथा मुकदमा का वर्णन करने के साथ-साथ राज्य एवं व्यक्ति के संबंध पर विचार करते हैं। कारमाइडीस और लाचेज में अध्यात्म तथा संयम की चर्चा है । ज्ञान और शिक्षा मिनो का विषय हैं, जिनमें राजनीति की शिक्षणीयता पर भी विचार किया गया है । प्रोटागोरस का इन ग्रंथों से विषय-साम्य है । भाषा एवं वक्तृता का राजनीति में कैसे प्रयोग हो—यह गारगियस का विषय है।

पालिटिकस (राज्य-नेता) प्लेटो की वृद्धावस्था की रचना है तथा लॉज (कानून) अंतिम दिनों की। अंतिम रचना लेखक के देहावसान के एक वर्ष बाद, उसके एक शिष्य द्वारा प्रकाशित की गयी । यह दोनों तथा रिपब्लिक, राजनीति पर प्लेटो के तीन ग्रंथ हैं ।

रिपब्लिक लगभग चालीस की अवस्था में लिखी गई मानी जाती है। इस ग्रंथ को लेखक ने दो नाम दिये थे—'राज्य' तथा 'न्याय के सम्बंध में' । पहले नाम के लैटिन-रुप रिपब्लिका से ही उक्त ग्रंथ रिपब्लिक कहलाया तथा प्रायः सभी यूरोपीय भाषाओं में प्रसिद्ध हुआ । इस ग्रंथ के मूल यनानी से

हिन्दी अनुवाद 'आदर्शनगर-व्यवस्था' नाम से उपलब्ध है । किंतु अनुवादक ने ही इस नाम की अपेक्षा रिपब्लिक का व्यवहार अधिक किया है । रिपब्लिक का ही व्यवहार करना 'विशेषतः प्रसिद्धिके कारण, अनुपयुक्त न होगा। जैसा कि दो नामों से विदित होता हैं, ग्रंथ का सम्बंध दोनों विषयों से है, बल्कि दोनों से भी अधिक से इसका सम्बंध है। मानव-जीवन का सम्पूर्ण-दर्शन इस ग्रंथ के विचार का विषय है। इसी दृष्टि से रिपब्लिक एक ग्रंथ माना जा सकता है, अन्यथा कई किताबों की एक जिल्द इसे कहना पड़ेगा—कोई राज्यके विकास पर, कोई मनोविज्ञान पर, कोई शिक्षा पर तो कोई सदाचार या यौन-धर्म पर ।

इस ग्रंथ में कुल दस पुस्तकें हैं—पहिली पुस्तक में न्याय के संबंध में प्रचलित धाराणाओं का उल्लेख एवं संक्षिप्त विवेचन है। दूसरी पुस्तक में सामाजिक संगठनके प्रारंभिक रूप, राज्य के रक्षक, उनका स्वभाव, प्रारंभिक शिक्षा आदि का उल्लेख करके तीसरी पुस्तक में वह सिलसिला बना रहता है । इसमें शिक्षा के लिए साहित्य, नाट्य, संगीत आदि विविध विषयों की उपयोगिता एवं उद्देश्यों पर चिन्तन मिलता है। चौथी पुस्तक में रक्षकों का रहन-सहन उनके कर्तव्य एवं सदाचार का वर्णन है। पांचवी पुस्तक में रक्षकों के पारिवारिक जीवन का विसर्जन और स्त्रियों की पुरुषों के साथ समकक्षता सिद्ध की गई। छठी तथा सातवीं पुस्तकों में दार्शनिक की परिभाषा, दार्शनिक शासक की श्रेष्ठता, संभाव्यता तथा औचित्य पर विचार किया गया और जीवन के परमलक्ष्य से उसका सम्बंध बताया गया। थोड़ी सी मनोवैज्ञानिक चर्चा तथा उच्च-शिक्षा का सविस्तृत वर्णन भी सातवीं पुस्तक में ही आ जाता है। आठवीं तथा नवीं पुस्तकों का विषय है समाज और आत्मा का पतन, न्यायी तथा अन्यायी की तुलना। दसवीं पुस्तक में दर्शन

तथा काव्य की तुलना की गई तथा इसी पुस्तक के अन्त में अमरता एवं न्याय के पुरस्कार का उल्लेख है जिसे मनुष्य मृत्यु के उपरान्त प्राप्त करता है।

जहां यह सच है कि रिपब्लिक की प्रत्येक पुस्तक एक प्रथक अस्तित्व रखती है तथा अपने-अपने विषय पर सभी पुस्तकें एक-एक ग्रंथ के रुप में ग्रहण की जा सकती हैं, वहां यह भी सच है कि जिस क्रम में वे संकलित हैं, उसमें वे सहज ही एक बड़े ग्रंथ के अध्याय ही रह जाती हैं। प्रत्येक पुस्तक का अन्त दूसरे से बंधा है और उसकी आवश्यकता अनुभव करता है। अतएव सभी पुस्तकें तर्कपूर्ण क्रम में श्रंखलित होकर एक ग्रंथ का रूप प्राप्त कर लेती हैं। मानव-जीवन का हेतु 'परमशिव' रिपब्लिक का लक्ष्य है। उसे प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को उत्तम बनना चाहिये। वह अपनी उत्तमता राज्य में ही प्राप्त कर सकता है। उत्तम राज्य का निर्माण करने के लिये दार्शनिक शासक चाहिये। दार्शनिक शासकों के चुनाव और शिक्षा के सम्बंध में मनोविज्ञान का उल्लेख आया। पुनः समाज की व्यवस्था और अर्थ-वितरण तथा परिवार-विघटन की चर्चा करने में मानव-जीवन के सम्बंध में अनेक विषयों का उल्लेख हो गया। किंतु कोई भी विषय अनर्गल तथा अनावश्यक प्रतीत नहीं होता।

पालिटिकस अर्थात् राज्य-नेता रिपब्लिक के पश्चात लिखा गया ग्रंथ है। अर्नेस्टबार्कर का अनुमान है कि वह डायनोशियस (द्वितीय) के साथ सम्पर्क के समय में अथवा शीघ्र ही उसके पश्चात लिपि-बद्ध किया गया। जिस प्रकार रचना-काल वैसे ही विचारों की दृष्टि से भी यह रिपब्लिक तथा लाज के मध्य में स्थित है। इसमें रिपब्लिक जैसा जनतंत्र का तीब्र विरोध नहीं मिलता और न लाज की भांति कानून की प्रभुता ही स्वीकार

की गई है। इस ग्रंथ में लेखक ने मनुष्य के राजनैतिक जीवन की उत्पत्ति की कल्पना का संक्षिप्त विवरण दिया है। राज्य-नेता की स्थापना और प्रजा के प्रति उसके सम्बंध का उल्लेख किया गया है। राज्य के वर्गीकरण पर भी प्लेटो के विचार इस ग्रंथ में मिलते हैं।

प्लेटो का तीसरा और अन्तिम राजनैतिक ग्रंथ लाज अर्थात् कानून है। जीवन की कठोरता और अनुभव ने कल्पनाशील एवं उग्र आदर्शवादी नवयुवक को धरती पर लाकर खड़ा कर दिया है। रिपब्लिक के सभी आदर्श सौम्य हो गये हैं, अनुभव ने तीव्रता कम करके उन्हें व्यवहारिक बना दिया।

शैली

चिन्तन में वादानुवाद के दोनों पक्षों की स्थिति में एक ही व्यक्ति कार्य करता है। आज, जब कि वर्णन-कला बहुत कुछ परिष्कृत हो चुकी है, यह द्वैत उसमें वैसा स्पष्ट नहीं दिखाई देता जैसा प्राचीन लेखकों के वर्णन में। उनकी अभिव्यक्ति संवाद-शैली में अधिक स्वाभाविक एवं प्रभावशालिनी थी तथा सामान्य वर्णन में कुछ विरुपता आ जाती थी। अपने ग्रंथों में प्लेटो ने संवाद-शैली का प्रयोग करके, स्वाभाविकता की रक्षा की। प्रथमतः एथेंसवासी और दूसरे, साक्रेटीज का शिष्य, तीसरे एक शिक्षक होना, यह तीनों ही संवाद-शैली में सफलता प्राप्त कराने वाली बातें थीं। एथेंस के जीवन में वाद-विवाद करना बहुत बड़ी आवश्यकता थी। उसमें प्लेटो के गुरु ने जो विशिष्टता प्राप्त की, वह अद्वितीय ही रही। प्लेटो के अतिरिक्त, साक्रेटीज के अन्य शिष्यों ने भी संवाद–शैली में अपनी रचनायें लिपि-बद्ध की। अतएव प्लेटो ने केवल प्रचलित रूप ही अपनाया, कोई नई लीक नहीं खींची।

प्राचीन काल में ऐतिहासिकता के प्रति विशेष आदर-भाव नहीं था। हेरोडोटस और थ्यूसीडाइड्स के इतिहास अनेक काल्पनिक बातों तथा अंध विश्वासों के भण्डार हैं। किंतु प्लेटो के संवादों में भाग लेने वाले अनेक व्यक्तियों के विषय में विद्वानों का मत है कि जो विचार लेखक ने जिसके द्वारा कहलाये हैं, वस्तुतः वह उन विचारों का ही पोषक था। प्रोफेसर आर० एल० नेटिलशिप के अनुसार उनको चुना ही इसलिये गया, कि उनमें वे विचार विद्यमान थे जो संवाद में उल्लिखित हैं, और बहुधा तो वे नाटकीय औचित्य एवं सजीवता के साथ प्रस्तुत किये गये हैं।*

प्लेटो की रचनाओं में दार्शनिक गंभीरता और साहित्यिक आनन्द साथ-साथ प्राप्त होते हैं। किंतु यह संयोग शुभ नहीं हुआ। दोनों ओर इससे हानि हुई। साहित्यिक आनन्द तथा तर्क परस्पर विरोधी हैं। जिस अवस्था में बुद्धि तर्क-संलग्न होती है, संकल्प-विकल्प की उस अवस्था में आनन्द उससे कोसों दूर होता है। इसी प्रकार जिस समय बुद्धि साहित्यिक रसपान में लग जाती है, उस समय तर्क-श्रृंखला बिखर पड़ती है। इसमें सन्देह नहीं, प्लेटो में विचार की कड़ियां सुसम्बद्ध एवं तर्कसंगत हैं, किंतु उनकी यह विशेषता संवाद-प्रणाली की साहित्यिकता एवं नाटकीयता के तल में, कभी-कभी दृष्टि से ओझल हो जाती है।

तर्क करने में प्लेटो ने गुरु का अनुकरण किया। उसने अरिस्टाटिल की भांति व्यापक अनुभव के आधार पर निष्कर्ष निकालने की प्रणाली का प्रयोग किया। निष्कर्षों के प्रयोग भी किये, किंतु उसकी तर्क-प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता थी श्रोता का पथ-

*आर० एल० नेटिलशिपकृत 'लेक्चर्स ऑन दि रिपब्लिक आव प्लेटो' पृष्ठ ७।

प्रदर्शन करना, निष्कर्ष लादना नहीं। उसके लिये यदाकदा श्रोता की धारणाओं को वह एक बार स्वीकार करके अन्त में उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत कर देता था कि श्रोता स्वयं अपनी धारणा को असंगत एवं मूर्खतापूर्ण कहने के लिए लाचार हो जाता। यह तो बड़ी ही अप्रिय स्थिति होती थी। किंतु तर्क-क्षेत्र में साक्रेटीज की भांति प्लेटो ने किसी पर दया नहीं की। जिस प्रकार दाई शिशु के जन्म में माता की सहायता करती है, उसी प्रकार इसकी तर्क-प्रणाली सत्य का साक्षात्कार कराने में श्रोता को मार्ग दिखाती थी। नेटिल-शिप ने प्लेटो की तर्क-विधि को 'प्रजनन-प्रणाली' कहा भी है। इससे श्रोताओं में उपयुक्त विचार-प्रणाली का निर्माण किया गया, अतएव इसे 'प्रजनात्मक तर्क-विधि' भी कहा जा सकता है।

प्लेटो के तर्क एवं रचना-कौशल के संमुख सभी नतमस्तक हो जाते हैं, और जो उसके निष्कर्षों को स्वीकार नहीं ही करना चाहते वे अपनी लाचारी में, बर्ट्रेण्ड रसेल की भांति, झुंझलाहट महसूस करते हैं। उस समय श्री रसेल में केवल झुंझलाहट ही देखना चाहिए, जब वे कहते हैं, 'प्लेटो अनुदार-विचारों को ऐसे छद्म-वेश में प्रस्तुत करता है कि उन्होंने आनेवाली पीढ़ियों को भुलावे में डाल दिया।'* इस कथन से उनका विचार प्लेटो की इमानदारी पर आक्षेप करने का तो नहीं ही होगा।

उदाहरणों के प्रचुर प्रयोग से भी प्लेटो ने विषय को बुद्धि-ग्राही बनाने की चेष्टा की। अर्नेस्ट बार्कर का यह कहना ठीक ही है कि यद्यपि लेखक बहुधा सफल हुआ है, किंतु कहीं कहीं असंगत होने से नहीं बच सका। विशेषतः पशुवर्ग के उदाहरण इस प्रकार के हैं। अन्यथा उपयुक्त उदाहरण, जिनमें से अनेक, जैसे कलाकार का उदाहरण राज्य-नेता के लिये, जो परम्परागत बन गये थे, विषय

*ब० रसेलकृत 'हिस्ट्री आव वेस्टर्न फिलासफी' पृष्ठ १२५।

को बुद्धिग्राही बनाने में अद्भुत सहयोग देते हैं। शैली की स्पष्टता के साथ साथ प्रभावशालिता भी उनमें बढ़ गई है।

स्पष्टीकरण के लिये प्लेटो ने पौराणिक कथाओं एवं किंवदंतियों का प्रयोग भी खूब किया है, जिनके प्रयोग में उसकी भाषा भावनाप्रधान हो गयी है। प्रो० डब्लू० टी० स्टेस इनको प्लेटो के दर्शन के शिथिल अंग मानते हैं। इन स्थलों पर तर्क ढीला पड़ गया है और दार्शनिक एक कवि बन गया है। स्वयं प्लेटो ऐसी स्थिति को श्रेयस्कर नहीं मानता है। उसके अनुसार कवि सत्य और सुन्दर का वर्णन बिना उसे जाने पहचाने ही करते हैं। जो कुछ वे कहते हैं उसे समझते नहीं। तर्क ही मानव-बुद्धि का सर्वोपरी अवयव है। उसी से सत्य का ग्रहण हो सकता है। अतएव प्रोफेसर स्टेस की चेतावनी दुहराते हुए कहा जा सकता है कि प्लेटो में कथाओं के प्रयोगवाले स्थलों पर पाठक को सतर्क हो जाना चाहिये।

दार्शनिक आधार (१) ज्ञान-सिद्धान्त

गणित की निश्चितता लेकर जिस अविचल बुद्धि से प्लेटो ने दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार अपने राज्य-दर्शन का निरुपण किया है, उसके विचार से, पहले को छोड़कर दूसरे का ग्रहण नहीं हो सकता। उसके दार्शनिक सिद्धान्त इस सम्बन्ध में मुख्यतः दो ही थे, (१) ज्ञान-सिद्धान्त (२) आदर्शतत्व।

साक्रेटीज की भांति प्लेटो भी सत्यासत्य के विवेक में तर्क को ही प्रमाण मानता था। उसने इन्द्रियजनित ज्ञान को मानने वाले साफिस्टों का घोर विरोध किया और इसके लिये 'प्रोटागोरस' आदि ग्रंथ भी लिखे। प्रोटागोरस तथा दूसरे साफिस्ट इन्द्रियों को ज्ञान का साधन तथा उनके माध्यम से प्राप्त ज्ञान को ही सत्य समझते थे। सभी व्यक्तियों में इन्द्रिय की शक्ति तथा गठन एक-सी न होने के कारण उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान में भी अन्तर हो सकता

है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार से प्राप्त किये गये ज्ञान पर मानसिक अवस्था का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इन्हीं कारणों से प्रोटागोरस ज्ञान को व्यक्तिगत विषय कहता था। 'मनुष्य सभी वस्तुओं का मानदण्ड है।' इस कथन से उसका यही तात्पर्य था। इसमें 'मनुष्य' से उसका तात्पर्य व्यक्ति से ही था, मानव-जाति से नहीं। हर आदमी की दुनियां अपनी निजी है, जिसमें वह अकेला है।

साक्रेटीज तथा प्लेटो ने प्रोटागोरस रूपी संकट से ज्ञान की रक्षा की। संकट इसलिये कि इस विचार-धारा में ज्ञान और अज्ञान का भेद नहीं रह जाता। ज्ञान, जब हर एक आदमी की ऐसी निजी सम्पत्ति हो गया, जिसकी दूसरे के द्वारा परीक्षा ही न हो सके तो एक के ज्ञान को अज्ञान कहने का दूसरे का अधिकार सर्वदा सुरक्षित ही है। अपने विचारों का, पहले के ही समान दूसरा भी, स्वयं मानदण्ड बनने का स्वत्व रखता है। इस दुर्दशा से ज्ञान का उद्धार ऐन्द्रिक तल पर संभव नहीं था। अतएव प्लेटो ने इन्द्रियों की प्रामाणिकता अस्वीकार कर तर्क को उसके स्थान पर स्थापित किया। तर्क ने ज्ञान को व्यक्तिगत संकुचित परिधि से मुक्त कर सब का विषय बना दिया, जिसमें दूसरे व्यक्ति भी भाग ले सकें। सत्य के अन्वेषण में योग दे सकें और समानतल पर सत्यासत्य की परीक्षा कर सकें।

इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान व्यक्तिगत और अन्तर्वर्ती होता है। उसका अस्तित्व और स्वरूप भावनाओं, इच्छाओं, संवेगों तथा प्रमाद के आधीन परिवर्तित होता रहता है। वह सर्वथा अनिश्चित एवं अपरीक्षणीय तथा अकथनीय है। तर्क-सिद्ध ज्ञान कथनीय होता है और उसका अस्तित्व व्यक्ति की ऐंद्रिक गठन एवं मनोदशाओं से मुक्त, बहिर्वर्ती तथा निरपेक्ष है। मानव-बुद्धि ही तर्क का आश्रय लेकर उसका दर्शन करती है। इन्द्रियों से वह परे तथा परोक्ष है।

ज्ञान की उपलब्धि में इन्द्रियों का क्षेत्र अत्यल्प है। संवेदन मात्र की सीमा पार करते करते अनुभव में बुद्धि क्रियाशील हो उठती है। सविशेष ज्ञान (नालेज आव दि पर्टिकुलर) भी स्मृति के आधार पर तुलना, असमानता तथा समानता आदि के द्वारा तर्कसंगत ही बनता है। ऐसी अवस्था में विशुद्ध ऐन्द्रिक एवं प्रत्यक्ष ज्ञान जिसे तर्क में विशेषमात्र तथा दर्शन में पदार्थ-भूमिका (मैटीरियल बेसिस) कह सकते हैं, उसका स्वतंत्र अस्तित्व प्लेटो ने स्वीकार नहीं किया। पाश्चात्य दर्शन में प्रत्ययवाद (आदर्शवाद) के आदि प्रवर्तक, पारमेनाइडीज उसे 'अस्तित्व-हीन अस्तित्व' कहते थे। प्लेटो भी इसे असार अस्तित्व के ही रूप में मानता था, उसी सीमा तक जिस सीमा तक भ्रम का, अंधकार का तथा प्रतिच्छाया का अस्तित्व हो सकता है। हमारे साधारण अनुभवों में बुद्धि का अंश बहुत प्रारंभिक अवस्था में ही समाविष्ट हो जाने के कारण वे सत्य से पूर्णतया रिक्त नहीं होते।

(२) आदर्श तत्व

सामान्य और विशेष का संयोग अनुभव को जन्म देता है। किंतु प्लेटो को इस वाक्य पर आपत्ति हो सकती है। संयोग दोनों के अस्तित्व की स्वीकृति है, जब कि सत्य केवल सामान्य अंश ही है। सामान्य लक्षणों की प्रतीति के सम्बन्ध में प्लेटो ने सात्रेटीज के दर्शन में कुछ नवीन अंश जोड़े। सात्रेटीज के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने लिये परिभाषा करना अर्थात् वर्गीय एवं जातीय लक्षणों का पहचानना आवश्यक था। वह प्रत्येक वस्तु का प्रत्यय (कंसेप्ट) ग्रहण करने पर जोर देता था। प्लेटो ने इसको अधिक विशद बनाते हुए प्रत्यय या सामान्य लक्षणों की आदर्श अवस्था की कल्पना की। उसका कहना था कि निसर्ग में अगणित रूप में आदर्श तत्व विद्यमान हैं।

जागतिक अभिव्यक्ति में वे अपनी अपूर्णता के कारण इन्द्रियों का विषय बन जाते हैं। अपने आदर्श एवं पूर्ण रूप में इन्द्रियों द्वारा उनकी उपलब्धि संभव नहीं हो सकती। जगत में प्रगट होकर वे अपूर्ण रह जाते हैं और जिस सीमा तक अपूर्ण रह जाते हैं, उसी सीमा तक वे सविशेष होते हैं। विशिष्टता इन्द्रिय तथा सामान्यता तर्क एवं बुद्धि का विषय है। पहला भ्रम और दूसरा सत्य है। इस प्रकार, प्रत्येक आदर्श तत्व सामान्य मात्र है, सार मात्र है तथा पूर्ण है।

सामान्य मात्र होने के कारण आदर्श तत्व अनेक में एक हैं। घोड़े बहुत से हैं किन्तु उनके सामान्य लक्षणों का आदर्शरूप एक है। विशिष्टताहीन होने के कारण उसका जागतिक अस्तित्व नहीं है। आदर्श तत्व केवल बुद्धिगम्य सूक्ष्म तत्व हैं। वह देश और काल से भी मुक्त हैं। इसलिये परिवर्तन इनमें नहीं होता। ये शाश्वत तत्व हैं।

निसर्ग में, फीडो में जिसकी देशगत स्थिति का भी उल्लेख मिलता है, आदर्शतत्वों की घनी आबादी है। प्रत्येक आदर्शतत्व को अपने समाज में व्यापक-व्याप्य सम्बंध से ऊंची या नीची-स्थिति भी मिली हुई है। ज्यों-ज्यों ऊंचे चढ़िये आदर्शतत्व व्यापकतर मिलते जायंगे। और इस श्रृंखला का अंत सर्वव्यापी आदर्शतत्व में होता है। सर्वव्यापी आदर्शतत्व को प्लेटो ने परमशिव (सुप्रीम गुड) कहा है। परमशिव में सृष्टि के समस्त रूपों की सामान्यतायें निहित हैं। यही परमाधार, परमसत्य तथा परमशिव है। समस्त सृष्टि में जो यथार्थता का आभास होता है उसका कारण परमतत्व की ही झलक है।

परमशिव की पूर्ण उपलब्धि, प्लेटो के मत से, देह के साथ रहते हुए मानव-बुद्धि के लिए संभव नहीं। जिस प्रकार आदर्शतत्व जागतिक अस्तित्व में अपूर्ण रह जाते हैं, उसी प्रकार

भौतिक देह के सम्पर्क में बुद्धि की गति भी निर्बाध नहीं रह जाती। इसी से वह पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में समर्थ नहीं हो पाती। देह से पृथक होकर ही आत्मा, आदर्शतत्वों के देश में निवास करता है और उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है। पृथ्वी पर जब वह अवतरित होता है और देह धारण करता है, उस समय मायावश, उसका ज्ञान बहुत कुछ विस्मृत हो जाता है। किंतु अनुकूल परिस्थितियां विस्मृत ज्ञान को पुनः जाग्रत कर देती हैं। अतएव ज्ञान की शिक्षा नहीं होती, उसकी तो सिर्फ याद दिलाई जाती है। इस तथ्य का आभास गणित की शिक्षा में मिलता है। ज्योमिति के प्रश्नों को शिष्य, स्थूल आधार के अभाव में, तर्क का आश्रय लेकर समझ लेता है। अनेक परिस्थितियों तथा उदाहरणों के द्वारा परीक्षा किये बिना ही गणित के सत्य प्रगट हो जाते हैं। इसका कारण पूर्व अर्जित संस्कार ही हैं जो उसे आदर्शतत्वों के सम्पर्क में प्राप्त हो चुके थे। सांसारिक जीवन में प्रत्यभिज्ञान से पुनः उनकी प्राप्ति हो जाती है।

आदर्शतत्व-सिद्धान्त पर प्लेटो की आस्था अन्त तक बनी रही। इस सम्बन्ध में गहरा मतभेद विद्वानों में मिलता है। प्रो० कार्नफोर्ड इसके पक्ष में है, किंतु 'थिटेटस' 'पालिटिकस' तथा 'लाज' आदि अन्तिम रचनाओं में इनकी चर्चा की अनुपस्थिति उल्लेखनीय है। इसी आधार पर कुछ विद्वान मानते हैं कि अन्तिम काल में प्लेटो अधिक व्यवहारिक हो गया था और आदर्शतत्व की कल्पना से मुक्त हो गया था।*

एक व्यवस्थित दार्शनिक प्रणाली के निर्माण में प्लेटो का

*देखिये 'दि फिलासाफिकल रिव्यू' जनवरी १९५० (कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, इथाका, न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित) में रिचर्ड-राबिन्सन का लेख 'फार्म्स एण्ड एरर्स इन प्लेटोज थिटेटस'।

दृष्टिकोण पूर्वगामी विचारकों के प्रति उदार था, और उनसे ग्रहण करने में उसने कोई संकोच नहीं दिखाया। पायथागोरसी विचार-धारा का प्रभाव उसके चिन्तन में रहस्यात्मकता बढ़ाने वाला था। आदर्शतत्व के सिद्धान्त में इसी प्रभाव के वशीभूत होकर अंकों से उन्हें सम्बंधित करने का उसने प्रयास किया।* कदाचित यह जीवन के अंतिम दिनों में किया जब तर्कयुक्त चिन्तन रहस्यवाद के संमुख शक्तिहीन हो चला था।

यद्यपि ज्ञान तथा आदर्शतत्व के सिद्धान्तों में प्लेटो की नवीनता है, तथापि उसका अविकसित मूल पारमेनाइडीज में मिलता है। पारमेनाइडीज से स्वयं साक्रेटीज ने शिक्षा ग्रहण की थी और उसका प्रभाव भी अत्यधिक पड़ा था। प्लेटो का परमशिव या परमआर्दश-तत्व पारमेनाइडीज के 'परम अस्तित्व' से बहुत समानता रखता है। पारमेनाइडीज की भांति प्लेटो ने भी 'अनस्तित्व' का पूर्णा-भाव नहीं स्वीकार किया। प्लेटो ने जगत की परिवर्तनशीलता हिराक्लाइटस की तरह स्वीकार की, किन्तु सापेक्ष स्थिरता के हेतु के सम्बंध में उसने उसका अनुकरण नहीं किया। हिराक्लाइटस अनुभव में स्थिरता के आभास का कारण इन्द्रियों की असमर्थता बताता था, जबकि प्लेटो इसका कारण मिथ्या जगत में सत्य का आभास मानता था।

प्लेटो अपने विचारों में अनेक्सागोरस का भी ऋणी था। वही पहला व्यक्ति था जिसने पाश्चात्य दर्शन में प्रयोजनवाद (टीलिआलोजी) को जन्म दिया। किसी पदार्थ के उद्भव तथा विकास का कारण उसके हेतु को मानना प्रयोजनवाद है। इस सिद्धान्त को साक्रेटीज प्लेटो तथा अरिस्टाटिल, तीनों ने

*डब्लू० टी० स्टेसकृत 'ए क्रिटिकल हिस्ट्री आव ग्रीक फिलासफी' पृष्ठ १९१।

अपनाया । अरिस्टाटिल ने इसे अधिक स्पष्ट और विशद रुप दिया ।

प्लेटो के आदर्शतत्व-सिद्धान्त में प्रयोजनवाद आदर्शतत्वों की नतोन्नत प्रणाली (हायरार्की) में प्रयुक्त हुआ है। आदर्श तत्व स्वयं भौतिक अस्तित्वका उद्‌भव-हेतु है* तथा स्वयं उनका हेतु परमादर्शतत्व (सुप्रीमगुड) में दिखाई देता है। प्रयोजनवाद का प्रयोग प्लेटो ने अपने आदर्श समाज तथा राज्यतंत्र दोनों के निर्माण में किया। इसी दृष्टि से रिपब्लिक की अवास्तविकता अस्वीकार की जा सकती है। उसमें जिस राज्यतंत्र का निरुपण किया गया है वह आदर्शतत्व की भांति जागतिक राज्यों के लिये गति एवं दिशा प्रदान करने वाला है। वे जहां तक इस आदर्श से दूर हैं, वहीं तक उनमें असत्य है, अवास्तविकता है तथा जिस सीमा तक आदर्श के अनुरुप हो सके उस सीमा तक वे सत्य एवं यथार्थ हैं।

*प्लेटो के दर्शन में यह बात अस्पष्ट ही रह जाती है कि आदर्शतत्व जागतिक रुप ग्रहण ही क्यों करते हैं। फिर भी जागतिक-अस्तित्व का कारण यदि ढूंढना है तो आदर्शतत्व ही वह कारणहै ।

प्लेटो : न्याय

न्याय के लिये यूनानी भाषा में जिस शब्द का प्रयोग किया गया है वह अंग्रेजी के 'राइट' तथा हिन्दी के धर्म की भांति ही व्यापक अर्थवाला है। 'दिकायोसायने' सीधे मार्ग पर चलने अथवा सद् आचरण को कहते हैं। किन्तु इसका तात्पर्य लैटिन भाषा के 'जस्टीशिया' एवं अंग्रेजी के 'जस्टिस' से भिन्न तथा कुछ अधिक है। ये शब्द मुख्यत: कानूनी शब्द हैं। यूनानी शब्द 'दिकायोसायने' केवल कानून का शब्द नहीं है। यदि 'दिके' का अर्थ जैसा अरिस्टाटिल कहता है, राजनैतिक समाज की व्यवस्था करना है, और स्मरण रहे, ऐसे समाज की व्यवस्था एक नैतिक व्यवस्था थी, तो दिकायोसायने, इस प्रकार के समाज के सदस्य, मनुष्य का गुण है। अतएव यह कानूनी के साथ-साथ नैतिक लक्षण है।* हमारे यहां धर्म शब्द का भी अर्थ इसी प्रकार विस्तृत है, कदाचित अधिक दूरगामी।

---

*अ० बार्कर द्वारा अनूदित 'दि पालिटिक्स आव अरिस्टाटिल' की भूमिका, पृष्ठ ७९।

परम्परावादी सिद्धान्त

सार्क्रेटीज से पूर्व यूनान में न्याय का अत्यन्त स्थूल अर्थ में ग्रहण किया जाता था। रिपब्लिक के आरंभ में प्लेटो ने पहले से प्रचलित कतिपय मतों को प्रस्तुत किया तथा उनका खण्डन करके अपना मत स्थिर किया। केफालस का विचार था कि सत्य-भाषण तथा ऋण-भुगतान ही न्याय है। यूनान की यह सामान्य धारणा थी। किंतु शीघ्र ही उसे प्रगट हो गया कि यह सिद्धान्त सभी दशाओं में नहीं काम दे सकता। कभी इनका उल्लंघन ही श्रेयस्कर हो सकता है। इस पर केफालस के पुत्र पालिमार्कस का विचार था कि शत्रु को हानि तथा मित्र को लाभ एवं सुख पहुंचाना ही न्याय है, जिसका सबसे अच्छा व्यवहारिक क्षेत्र रण-स्थल है। युद्ध में यह न्याय अपने पूर्ण रूप में प्रगट होता है। उस समय प्रत्येक व्यक्ति को शत्रु की अधिक से अधिक हानि तथा मित्र का अधिक से अधिक हित सिद्ध करने का अवसर मिलता है। इसके लिये पालिमार्कस ने क्रांतदर्शी कवि सैमोनाइडीज की भी दुहाई दी, तथा प्राचीनता की कसौटी पर सच्चाई सिद्ध करना चाहा। किंतु जब उसे यह स्पष्ट हो गया कि शत्रु को हानि पहुंचाना न्याय पर ही आघात करना है, तो उसे अपना मत आद्योपान्त बदलना पड़ा।

वस्तुतः न्याय अत्यन्त व्यापक है। यह भी न्याय ही है कि प्रत्येक मनुष्य अपना कार्य पूरी क्षमता एवं योग्यतापूर्वक सम्पन्न करे। किंतु जब उस व्यक्ति को, जिसे हम शत्रु समझते हैं हानि पहुंचाते हैं, तो उसकी योग्यता और क्षमता पर ही आघात करते हैं। इससे वह अपने न्यायोचित कर्त्तव्य करने योग्य नहीं रह जाता। 'अतएव किसी मनुष्य को हानि पहुंचाने का अर्थ हुआ उसे कम न्यायी बना देना.......जिस प्रकार ज्वाला शीतल नहीं कर सकती, रूक्षता से रस नहीं रसता, उसी प्रकार हानि करना भी न्याय नहीं हो

सकता।'* शत्रुओं को हानि पहुंचाने का सिद्धान्त सैमोनाइडीज जैसे कवियों द्वारा निर्मित न होगा, साक्रेटीज कहता है, अवश्य ही इसके प्रवर्त्तक स्वार्थी शासक, सरेक्सास आदि होंगे।

पश्चिमी जगत में अहिंसा-सिद्धान्त का यह सर्व प्रथम उच्चारण था। ध्यान देने की बात यह है कि इस निष्कर्ष के प्राप्त करने में किसी प्रकार की अलौकिकता अथवा रहस्यात्मकता का आश्रय नहीं लिया गया।

यथार्थवादी सिद्धान्त

दूसरा प्रचलित सिद्धान्त जिसका खण्डन रिपब्लिक में किया गया, वह थ्रेसीमेकस नाम के साफिस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस साफिस्ट के सिद्धान्त वस्तुतः क्या थे, इसका पता रिपब्लिक के बाहर से कुछ नहीं चलता। फिर भी, देखा यह गया है कि प्लेटो ने जिस नाम के साथ जिन विचारों को जोड़ा है, अन्वेषकों को वे उसके ही विचार मिले। अस्तु न्यायसम्बन्धी थ्रेसीमेकस की धारणा कम प्रचलित नहीं थी और थोड़े हेर-फेर के साथ उसके समर्थन में कई लोग दिखाई पड़ते हैं। स्वयं प्लेटो के भाई ग्लाकन तथा एडिमेण्टस को उससे सहमति थी। थ्रेसीमेकस का जैसा चित्रण प्लेटो ने किया है, उससे तो प्रतीत होता है, कुछ चोटी के साफिस्ट दार्शनिकों के अतिरिक्त, अन्य सोफिस्ट आधुनिक भारत के साधारण कम्युनिस्टों की भांति व्यवहार करते थे। विवाद के समय थ्रेसीमेकस के प्रति-पक्षी को ऐसा लगा कि वह उस पर झपट कर फाड़ खाना चाहता है। स्पष्ट शब्दों में सभ्य व्यवहार के लिए उसे आग्रह तक करना पड़ा। हो सकता है, इस चित्रण में प्लेटो का अनुरंजित दृष्टिकोण अचेतन रूप से काम करता हो।

*प्लेटोकृत रिपब्लिक (कार्नफोर्ड-अनुवाद) १.३३५।

थ्रेसीमेकस ने दो स्थितियों से न्याय की परिभाषा की। इन दोनों स्थितियों में परस्पर कोई सम्बंध नहीं दिखाई देता। केवल अन्याय की श्रेष्ठता स्थापित करने की ही समानता इन दोनों में है। इसीलिये थ्रेसीमेकस ने, जब पहिली स्थिति को डांवाडोल पाया तब वह दूसरी ग्रहण करके अपने पक्ष का समर्थन करने लगा। पहली स्थितिमें उसका कहना था: सबल पक्ष के हित को न्याय या औचित्य कहते हैं।* पुनः स्पष्ट करते हुए उसने बताया कि 'हित' वही है जिसे सबल पक्ष स्वयं अपने हित में पहचाने। अन्य किसी का निर्णय नहीं। साथ ही सबलता में केवल पशुबल ही नहीं, बुद्धिबल भी सम्मिलित है।

शासक शासितों के हित के लिए नहीं, अपने हित के लिये शासन करते हैं। वही करते हैं जिसमें उन्हें अपना लाभ प्रतीत होता है। इसी दृष्टि से बनाये हुए उनके कानूनों के पालन करने को न्याय कहते हैं। उनका उल्लंघन दण्डनीय अन्याय कहा जाता है। जिस प्रकार गड़रिया अपनी भेड़ों की देखभाल करता है, उन्हें मोटी करता है ऊन और मांस के लिए, भेड़ों के सुख के लिए नहीं। उसी प्रकार शासक प्रजा के प्रति व्यवहार करते हैं।

किंतु थ्रेसीमेकस अपने पक्ष की रक्षा नहीं कर सका। भेड़ का रखवाला जब तक भेड़ों की रखवाली करता है, उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा का ध्यान रखता है तब तक वह अपना काम करता है। भेड़ के मांस-खाल का काम करने में वह अपनी स्थिति बदल देता है। उस समय वह चिकवा अर्थात् कसाई का कार्य करने लगता है। भेड़ों के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल जाता है, उसका कर्त्तव्य भी बदल जाता है। इसी प्रकार चिकित्सक का काम रोगी को निरोग और स्वस्थ बनाना है। धनो-

*प्लेटोकृत रिपब्लिक (कार्नफोर्ड अनुवाद) १.३३७।

पार्जन का उसकी कला से सम्बंध नहीं। उसकी कला की उत्कृष्टता तो रोग के निर्मूल करने तथा शीघ्रातिशीघ्र रोगी को पूर्ण स्वस्थ बना देने में हैं। संभवतः यह उसकी आय के लिए प्रतिकूल पड़े। यही बात अन्य कला-शिल्पादि के विषय में भी कही जा सकती है।

प्रत्येक कला का लक्ष्य होता है अपने उपकरणों का अधिकाधिक सुधार तथा उनकी उन्नति करना। इसी प्रकार शासन-कला का ध्येय भी प्रजा का रंजन करना ही होगा, अपना हित-साधन नहीं। उसी प्रकार चिकित्सक का लक्ष्य अपना नहीं रोगी का हित तथा भेड़ के रखवाले के संमुख भेड़ का हित रहता है। सबलता-निर्बलता के हिसाब से यदि देखें तो चिकित्सक रोगी से, गड़रिया भेड़ से तथा शासक शासित से बलवत्तर ही सिद्ध हैं। ऐसी दशा में कहना कि यह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का जंगली न्याय प्रस्तुत करते है, अनुचित होगा।

जो लोग दायित्वपूर्ण पदों के इस रहस्य से अवगत होते हैं, वे धन अथवा सम्मान के लिए उन्हें ग्रहण करने में सदैव आगा-पीछा करते हैं। उन्हें कोई लालच इस ओर नहीं खींचता। सज्जन केवल दण्ड के भय से ही उत्तरदायित्व वहन करने के लिये बाध्य किये जा सकते हैं। कदाचित सबसे बड़ा दण्ड जो उन्हें दिया जा सकता है, वह है अपने से कम विवेकशील द्वारा शासित होना। यही कारण है जो वे शासन-भार सम्हालने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

अन्याय की रक्षा में दांव हारते देख थ्रेसीमेकस ने पैंतरा बदल कर दूसरी स्थिति ग्रहण की। उसने कहा—अन्याय ही लाभकर है, न्याय-पक्ष में लाभ नहीं। यहां उसका खण्डन करने के लिये प्लेटो ने उसके कथन के तीन भाग कर दिये:

न्याय की अपेक्षा अन्याय-पक्ष में अधिक विवेक तथा योग्यता होती है।

अन्याय-पक्ष में अधिक बल होता है।

अन्याय से सुख मिलता है।

इस प्रकार अन्याय-पक्ष को दैहिक, बौद्धिक तथा मानसिक तीनों क्षेत्रों में श्रेष्ठतर बताया। पहले के खण्डन में प्लेटो की भाषा तथा विचारों की दुरुहता के कारण प्रो० कार्नफोर्ड उसका अनुवाद नहीं दे सके।* इसीसे, यूनानी भाषा से अनभिज्ञ लेखक भी उन्हें प्रस्तुत करने का प्रयत्न न कर सका।

अब बल का प्रश्न लीजिये। जिस प्रकार किसी समाज अथवा किसी संघ में बल तभी पाया जाता है, जब उसके अवयव परस्पर सहयोग से काम करते हैं, उसी प्रकार किसी व्यक्ति के दैहिक एवं मानसिक अवयव भी सबल तभी होते हैं जब वे परस्पर मित्र-भाव से कार्य करें। सहयोग की भावना का आधार न्याय ही हो सकता है, अन्याय नहीं। लम्पट तथा चोर भी अपने समाज में ईमानदारी तथा न्याय का व्यवहार करके ही पारस्परिक विश्वास उत्पन्न करते हैं, जिसके अभाव में उनके समूह के सभी व्यक्ति छिन्न-भिन्न हो जांय। साधारण समाज के जीवन के लिए भी न्याय ही आधार है। जो बात समाज के लिए सच है वही व्यक्ति के लिये भी। व्यक्ति का अन्तःकरण यदि द्वन्द्वमय होगा तो वह कदापि सबल नहीं हो सकता। बलवान अन्तःकरण वही होगा जिसमें शान्ति का निवास होगा। अर्थात् जिसमें न्यायपूर्ण आचरण का सन्तोष होगा।

न्यायपूर्ण आचरण ही सुख का दाता है। प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट क्षमता से युक्त होता है। उस क्षमता के प्रयोग से ही वह अपने तथा संसार, दोनों के प्रति न्याय करता

*रिपब्लिक (कार्नफोर्ड-अनुवाद) पृष्ठ ३२।

है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित उद्देश्य की और अग्रसर हो, जिसे उसके स्वभाव में प्रकृति ने स्थापित कर दिया है। जो व्यक्ति एक को छोड़ अनेक दिशाओं में क्रियाशील हो जाता है, अथवा जो अपना स्वाभाविक पथ छोड़ कर अन्य पथगामी बनता है, वह दुःखी होता है तथा अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित रहता है।

अनुभववादी सिद्धान्त

थ्रेसीमेकस घुटने टेकने जा ही रहा था कि ग्लाकन ने उसे संभाला। पहले की भांति, न्याय की अपेक्षा यह भी अन्याय को ही प्रेय एवं श्रेय मानता था। इसकी दृष्टि में भी न्याय कृत्रिम एवं बलवानों को उनके प्राप्य से वंचित करने वाला है। यह समानतायें होते हुए भी ग्लाकन की स्थिति थ्रेसीमेकस से भिन्न थी। ग्लाकन ने अपने सिद्धान्त को एक ऐतिहासिक कल्पना पर आधारित किया, जिसमें उसने न्याय की उत्पत्ति तथा समाज की उत्पत्ति का वह सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे हम 'पण-सिद्धान्त' अथवा 'सामाजिक अनुबंध सिद्धान्त' (सोशल कंट्रैक्ट थ्योरी) का प्रथम उच्चारण कह सकते हैं, और जो आगे चल कर कितने ही विचारकों के लिये मुग्धकर सिद्ध हुआ।

ग्लाकन के मत से प्रारंभिक दशा में सभी व्यक्ति पूर्णतया मुक्त भाव से अपने लाभ में जो भी चाहते थे करते थे। इस मनमानी हालत में कोई रोक-टोक नहीं थी, केवल प्रतिस्पर्धी तथा प्रतिद्वंदी का बल ही जीतने की वस्तु होती थी। वे अनेक बातें, जिन्हें अन्याय कहा जाता है, लोग खुलकर आचरण करते थे। किंतु जीवन की इस दशा में अनुभव ने बताया कि अन्याय करना अवश्य सुखकर है, किंतु अन्याय भोगना कम दुखकर नहीं। तब मध्यम मार्ग का अन्वेषण किया गया, जिसमें नियमों का निर्माण हुआ। नियमों का पालन न्याय हुआ, उनका भंग करना अन्याय हुआ। यह स्थिति मध्यम इसलिये है कि न तो इसमें

पूर्ण अन्याय करके परम सुख-लाभ किया जा सकता है, और न ही पूर्ण रूप से अन्याय भोग कर अपार दुःख ही मिलता है। अतएव, प्लेटो के मत के विरुद्ध, वह स्वयं न्याय में श्रेय नहीं देखता। यह तो केवल समझौते का रास्ता है जिसका, लोग अपना स्वभाव कुचल कर, आचरण करते हैं। थ्रेसीमेकस के न्याय का हेतु बलवान का बल तथा निर्बलों को त्रस्त करने की कामना थी। ग्लाकन के अनुसार, अन्याय का भय तथा उससे बचने की इच्छा के कारण न्याय प्रगट हुआ।

एडिमेण्टस का दृष्टिकोण यद्यपि ऊपर से ग्लाकन से भिन्न था, किन्तु सार दोनों का एक ही था। एडिमेण्टस के अनुसार न्याय का पथ श्रेयस्कर है, क्योंकि न्यायी व्यक्ति का इहलोक तथा परलोक दोनों सुखमय व्यतीत होता है। यद्यपि यह ग्लाकन तथा थ्रेसीमेकस की भांति नहीं कहता कि अन्याय का पथ, दण्ड से बचकर अधिक सुखकारी है, फिर भी भौतिक लाभ को ही न्याय का लक्ष्य मान कर यह उन्हीं के समान तल पर आ गया। पुनः वह कहता है कि यद्यपि न्याय में श्रेय है, न्यायी कहलाने में भौतिक लाभ है, किंतु अन्याय तो अधिक सुखकर है। देवताओं को भी अन्याय के कामों के परिणाम से वशीभूत किया जा सकता है। प्रो० नेटिलशिप के शब्दों में, 'यह न्याय का पूर्ण उच्छेदन हुआ क्योंकि यहां तो उसके उद्गम, दैव सत्ता को भी भ्रष्ट कर देने को कहा गया है।*

विवेचन

इस प्रकार ग्लाकन तथा एडिमेण्टस दोनों ने न्याय को श्रेयस्कर बताया, किन्तु अन्याय को उससे भी अधिक। पहले ने परिस्थितिवश तथा दूसरे ने स्वभावतः। इस दृष्टि से, थ्रेसीमेकस के विचारों में

*आर० एल० नेटिलशिप कृत 'लेक्चर्स ऑन प्लेटोज रिपब्लिक' पृष्ठ ५२।

समझौता नहीं मिलता। वह स्पष्टतः अन्याय को उच्च और न्याय को त्याज्य घोषित करता है।

उक्त सभी विचारधारायें न्याय को परम्परागत एवं कृत्रिम मान कर उसे हेय एवं त्याज्य कहती है। अन्याय को स्वभावगत एवं प्राकृतिक मानती हैं, जिससे वह वरेण्य हैं। किंतु इससे उनका तात्पर्य यह था कि वस्तुतः न्याय उसी में है जो मनुष्य के लिए स्वभावानुकूल एवं प्राकृतिक है। कानून तथा प्रचलन परम्परागत होने मात्र से ही त्याज्य नहीं थे। उनका मूल दोष यह था कि वे अपनी जीवन-यात्रा एवं उपयोगिता समाप्त करने के बाद भी चल रहे थे और समाज की गति में रोड़ा बन रहे थे। इस दृष्टि से देखने पर ही उक्त विचारधाराओं के प्रति न्याय किया जा सकता है, जो सामाजिक जीवन का कूड़ा करकट सहन करने के लिए तैयार नहीं थीं। मनुष्य का सामाजिक जीवन, उसका स्वभाव तथा उसकी आवश्यकताएं बदल चुकी थीं, जिसके कारण पुराने कानून, तथा न्याय की पुरानी परिपाटी अप्राकृतिक एवं अस्वाभाविक हो गयी थी।

यदि परम्परागत कानून से ग्लाकन आदि का तात्पर्य यह था कि उन्हें किसी समय मनुष्य ने चेष्टापूर्वक निर्मित किया, तो यह उचित नहीं, क्योंकि सभी कानून निर्मित होने से पहले ही प्रगट हो जाते हैं। कानून पहले प्रचलन होते हैं, आगे चलकर उन्हें राजकीय समर्थन अर्थात् कानूनी जामा प्राप्त हो जाता है।*

यह तो स्पष्ट ही है कि न्याय उक्त सभी दार्शनिकों के द्वारा साधन के रूप में ग्रहण किया गया। केफालस, थ्रेसीमेकस, ग्लाकन तथा एडिमेण्टस सभी इस बात में एकमत थे। यही कारण था, जो उनमें से कोई भी, प्लेटो के विचार से, न्याय का दर्शन नहीं कर सका। ग्लाकन ने इस बात पर जोर दिया कि यदि वे सभी भौतिक

*अ० बार्करकृत 'प्लेटो एंड हिज प्रेडिसेसर्स' पृष्ठ १६०।

सम्पदायें, धन, यश, पद इत्यादि, जो अन्याय के द्वारा अधिक सुलभ हैं, न्याय का लक्ष्य नहीं हैं, तो मैं चाहता हूं, ग्लाकन कहता है, 'न्याय की प्रशंसा में, विचार किया जाय कि न्याय स्वतः उस व्यक्ति के लिये किस प्रकार कल्याण कर है, जो इसे धारण करता है, और अन्याय किस प्रकार हानिकर है। इसमें यश तथा लाभ-हानि की कोई गणना न की जाय।' क्या न्याय उस समय भी श्रेयस्कर है, जब कि उसके अनुसार आचरण करने पर, अन्यायी एवं दुराचारी होने का अपयश परिणाम में प्राप्त हो? कठिन से कठिन दैहिक कष्ट एवं सामाजिक अपमान न्यायाचरण के प्रसाद में मिले ?

प्लेटो का उत्तर स्वीकारात्मक है। न्याय साधन नहीं, साध्य है। भौतिक प्रसाद की उसको अपेक्षा नहीं। उसके प्राप्त हो जाने पर कुछ प्राप्य नहीं रह जाता। वह सन्तोष एवं शांति उससे उत्पन्न होती है जिसमें सभी इच्छाएं लुप्त हो जाती हैं। न्याय व्यक्ति के सम्पूर्ण अस्तित्व में तालैक्य (हारमनी) स्थापित होने पर ही प्राप्त होता है। वे विचारक, जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, उन्होंने इसे साधन माना, भौतिक सम्पदाओं में इसे पाने की चेष्टा की। यही उनकी त्रुटि थी। इसका क्रीड़ा-क्षेत्र अन्तःकरण है। इसे पाने के लिये विचार कि दिशा एवं दृष्टिकोण में आमूल परिवर्त्तन की जरूरत है। जो लोग जागतिक वैभव को सृष्टि के शीर्ष-स्थान पर रख कर उसे जीवन का लक्ष्य मानते हैं तथा अपने सांसारिक, दैवी एवं आध्यात्मिक संगठन को इस प्रकार ढालने की चेष्टा करते हैं कि वे सभी अपनी पूरी पूरी ताकत से जागतिक सम्पन्नता प्राप्त कर सकें, तो उनकी विचार की दिशा उल्टी है। उन्होंने अपने साध्य को तथा मूल प्रेरणा को ही नहीं पहचाना। वे स्वयं चाहते क्या हैं, यही उन्होंने नहीं जाना।

विषमता से मुक्ति पाने तथा तालैक्य स्थापित करने का यत्न तीन प्रकार से होना चाहिये। सबसे पहले, अन्तःकरण के सभी अवयव परस्पर सन्तुलित हों, दूसरे जागतिक परिस्थितियों में सन्तुलन हो, तीसरे अन्तर्बाह्य तालैक्य हो, जिसका तात्पर्य है कि अन्तःकरण के अनुरुप ही जागतिक व्यवस्था हो, तभी दोनों की विषमता दूर हो सकती है। अन्तर्जगत एवं बाह्य जगत में व्यापक तालैक्य की स्थापना से अन्तः शान्ति एवं जागतिक सुव्यवस्था उत्पन्न होती है। उस समय व्यक्ति अपना कर्तव्य पूर्ण मनोयोग से सम्पन्न कर सकता है तथा जीवन की कला उत्तरोत्तर उन्नत होती रहती है।

प्लेटो ने मनोविज्ञान के आधार पर ही मनुष्य को तीन वर्गों में विभक्त किया। यह विभाजन, इससे पूर्व पायथागोरसी दर्शन में भी पाया जाता है। संभवतः प्लेटो ने वहीं से इसे ग्रहण किया। पायथागोरसी दार्शनिक भी तीन प्रकार के मनुष्य मानते थे, विवेक-प्रिय, सम्मानप्रिय तथा अर्थप्रिय। इसी के समानान्तर मानव अन्तः-करण के तीन भाग उन्होंने किये—तर्क, भावना तथा वासना। हेसियड की भांति प्लेटो ने मानव-स्वभाव की धातुओं से भी तुलना की है। विवेकशील व्यक्ति स्वर्ण-स्वभाव के होते हैं, भावनाप्रधान रौप्य गुण वाले तथा कृषि एवं व्यवसाय करने वाले लोगों की समता ताम्र एवं लौह से की गई।* यद्यपि प्लेटो ने आन्तरिक गठन के ही आधार पर सामा-जिक वर्गों का तथा उनके कर्त्तव्यों का विभाजन किया है, तथापि इस वर्गीकरण में जातीय विभाजन की कठोरता नहीं थी। यह आवश्यक नहीं कि स्वर्ण-गुण से व्यक्ति की सन्तान भी उस गुण से सम्पन्न हो। ऐसी अवस्था में उसे अपनी निजी योग्यता के अनुसार ही सामाजिक स्थिति एवं कर्त्तव्य प्राप्त होंगे।

*प्लेटोकृत रिपब्लिक कार्नफोर्ड—अनुवाद पृष्ठ १०४।

न्याय की परिभाषा

यदि प्लेटो के ही ढंग से कहा जाय तो विवेक, साहस एवं संयम से परिचित हो जाने पर न्याय को कहीं ढूंढने नहीं जाना। वह तो नाक के ही पास है, उसे केवल पहचान भर लेना है। अन्तःकरण के क्षेत्र में, यदि विविध अवयव अपना-अपना कर्त्तव्य पूरी सामर्थ्य से करते हैं तथा दूसरों के क्षेत्र में टांग अड़ा कर न तो अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं और न दूसरों के लिए बाधक बनते हैं, तो वे न्याय ही करते हैं; और जिस व्यक्ति के अन्तःकरण के अवयव अपना अपना कर्त्तव्य करते हैं, वह व्यक्ति भी न्यायी हुआ।* इस प्रकार न्यायपूर्ण अन्तःकरण का तर्कशील अवयव सम्पूर्ण व्यक्ति के लिए ज्ञानार्जन करता है तथा विवेक प्राप्त करता है, भावनाशील अवयव साहस एवं शौर्य से काम करता है, संयम के द्वारा विविध अवयवों में अविरोध अर्थात् तालैक्य स्थापित होता है, तथा वासनाशील अंग अपने से श्रेष्ठ अवयवों के नियंत्रण में संयमित रहता है। यह हुआ वैयक्तिक न्याय।

सामाजिक क्षेत्र में—यदि सभी व्यक्ति अपनी अपनी जन्मजात योग्यताओं का प्रयोग करते हुए अपना कर्त्तव्य करने में कुछ उठा नहीं रखते तथा समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अविरोध-भाव से काम करते हैं, तो ऐसे तालैक्ययुक्त समाज के व्यक्ति सामाजिक न्याय के भागी हैं।† न्यायपूर्ण समाज में विवेकशील व्यक्तियों द्वारा अनुशासन तथा पथ-प्रदर्शन होगा; साहसी व्यक्ति सम्पूर्ण समाज के बल तथा रक्षक होंगे; वासनाशील वर्ग सम्पूर्ण समाज के हित के लिए प्रथम वर्ग का अनुशासन स्वीकार करेगा, तभी विभिन्न वर्गों के बीच तालैक्य स्थापित होगा; क्योंकि यह तो सभी वर्गों के संयम एवं सहयोग का परिणाम होता है।

*रिपब्लिक, कार्नफोर्ड-अनुवाद पृष्ठ १३६। †वही पृष्ठ १२४।

न्याय कहता है कि कोई दो व्यक्ति एक प्रकार के नहीं होते। उनमें अन्तर्निहित भेद होते हैं जिनके कारण वे अलग-अलग कार्यों के लिए उपयुक्त होते हैं। प्रत्येक वस्तु अपना-अपना ही कार्य कर सकती है। न वह किसी अन्य कार्य के लिए और न कोई दूसरी वस्तु उसके कार्य के लिए न्यायपूर्वक प्रयुक्त हो सकती है। न्याय की यह मांग मानव-समाज के वर्गों में दृढ़ता, श्रम-विभाजन तथा कर्म-कौशल का हेतु बनती है। अरिस्टाटिल के समाज-दर्शन एवं राजनीति के लिये तो यह आधारशिला के समान महत्वपूर्ण सिद्धान्त बन गया। उसका विकास-सिद्धान्त इसी पर आश्रित है।

अन्तःकरण में समस्थिति उत्पन्न करने के लिये प्लेटो ने निष्क्रियतावादी संयास तथा मात्र चिन्तन-मनन की राय नहीं दी। उसका न्याय-सिद्धान्त सक्रिय जीवन का सिद्धान्त है जिसमें राजनैतिक समाज तथा व्यक्ति के संघर्षण से न्याय उसी प्रकार प्रगट होता है जैसे पाषाण-खंड पर लोहे की रगड़ से अग्नि उत्पन्न होती है।† सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के अभाव में, जड़ता की अवस्था में, प्लेटो के मनोविज्ञान के अनुसार, मानव अन्तःकरण संतुलित अवस्था में न होगा। क्योंकि तर्कशील अवयव स्वभावतः सजातीय एवं सद्विषयों की ओर स्वतः आकृष्ट होगा और इसी से वह निष्क्रिय नहीं रहेगा।

प्लेटो के न्याय के अनुसार कोई व्यक्ति आत्मपूर्ण नहीं है। सामाजिक जीवन की आवश्यकता उसके अन्तःकरण में ही निहित है। इस सिद्धान्त के द्वारा उसने मनोवैज्ञानिक तल पर व्यक्तिवादी साफिस्टों का विरोध किया जो व्यक्ति की आत्मपूर्णता में विश्वास करते थे। तर्कशील अवयव के स्वाभाविक लक्षण के रूप में प्रेम

*रिपाब्लिक, कार्नफोर्ड-अनुवाद पृष्ठ ५५ तथा ३७।

†रिपाब्लिक, कार्नफोड-अनुवाद—पृष्ठ १२७।

का पाया जाना मनुष्य को प्राकृतिक रूप से 'सामाजिक प्राणी' सिद्ध करता है। जिसका पूर्ण विकास उस राजनैतिक जीवन में सम्पन्न हो सकता है, जो अन्तःकरण की भांति तालैक्य (हारमनी) से युक्त हो, तथा जिसमें भाग लेने वाले सभी व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर कर्त्तव्यों का पूरे मनोयोग से वहन करते हों।

वैयक्तिक एवं सामाजिक, दोनों ही क्षेत्रों में तालैक्य की स्थापना करनेवाली मन की जो शक्ति है, उसे संयम कह सकते हैं। संयम के द्वारा अन्तःकरण के विविध अवयव तथा समाज के सदस्य अपने-अपने कर्त्तव्यों में संलग्न होते हैं तथा अपनी सीमाओं का उल्लंघन करने से प्रतिबाधित होते हैं। अतएव संयम न्याय का समानार्थी तथा तर्कशील, भावनाशील एवं वासनाशील, तीनों अवयवों में पाया जाने वाला गुण है। इसके कारण न्याय कानूनी सतह से उठ कर आध्यात्मिक धरातल पर पहुंच जाता है। वह आधुनिक अथवा रोमन न्याय की भांति बाहरी शक्ति द्वारा आरोप्य न होकर अन्तःकरण की शिक्षा तथा व्यक्ति के लिये आत्म संयम एवं साधना का विषय बन जाता है। यूनान का सामाजिक जीवन नैतिकता-प्रधान होने के कारण वहां की न्याय की धारणा आध्यात्मिक होना ही चाहिये। न्याय की परिभाषा के द्वारा प्रचलित धारणा को व्यक्त करके, प्लेटो ने पतनशील एवं कर्त्तव्य-विमुख यूनानी समाज से कर्त्तव्य परायण होने का आग्रह किया।
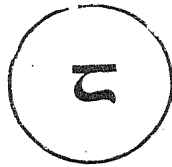
प्लेटो : आदर्श राज्य (क)

'रिपब्लिक' की संवाद-गोष्ठी द्वारा न्याय की विशद व्याख्या करने की मांग उठने पर प्लेटो ने न्याय के सामाजिक रूप का दर्शन कराने के लिये एक काल्पनिक राज्य की उद्भावना की। तदुपरान्त व्यक्ति में न्याय की स्थिति का निरूपण किया। इस पूर्वापर का कारण यह बताया कि यदि दो स्थानों पर एक ही बात लिखी हो, एक जगह बड़े अक्षरों में तथा दूसरी जगह छोटे में तो अवश्य ही सरलता के विचार से, बड़े अक्षरों में ही उसे पढ़कर छोटे के लेख का पता लगाना बुद्धिसंगत माना जायगा।†

न्याय का स्वरूप वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों क्षेत्रों में एक है। समाज में उसका ग्रहण करना सरल होने से रिपब्लिक ने उसे ही प्राथमिकता दी है। किन्तु अर्नेस्ट बार्कर का कहना कि 'यद्यपि व्यक्ति का निरूपण करने के लिये प्लेटो एक राज्य का निर्माण करता है, किंतु उसके निर्माण में व्यक्ति ही पूर्व कल्पित

† रिपब्लिक कार्नफोर्ड-अनुवाद, पृष्ठ ५४।

है।'* सरलता की अपेक्षा तर्क का आश्रय लेने के विचार से हमने व्यक्तिगत न्याय का परिचय पहले ही देने की चेष्टा की है। उस संबंध में सामाजिक न्याय का भी यत्किंचित संकेत दे दिया है। प्लेटो के आदर्श राज्य की कल्पना का परिचय प्रस्तुत अध्याय का विषय है।

न्याय 'रिपाब्लिक' के सम्पूर्ण विचार-सूत्रों का केन्द्र बिन्दु है। यह ग्रंथ के आदि से अन्त तक विचारों को दिशा प्रदान करता रहता है। सबसे पहले न्याय का स्वरूप स्थिर करने की चेष्टा की जाती है। उसके बाद उस पर आचरण करने तथा उसकी साधना के लिये अनुकूल जीवन-निर्माण की एक योजना प्रस्तुत की गई। जीवन का प्रत्येक पक्ष उसी दृष्टि से ढाला गया। गर्भाधान, शिशु-पालन, शिक्षा, दाम्पत्य-जीवन तथा यौन-निग्रह, आर्थिक एवं राजनैतिक ढांचा, सब 'न्याय' को अपना उद्देश्य बनाकर रूप ग्रहण करते हैं। इस प्रकार निर्मित समाज आदर्श राज्य होगा। अन्य सभी मानव-समाज के रूप इसी के मानदण्ड से मापे जा सकेंगे। इसकी उपलब्धि असंभव तथा अव्यवहारिक नहीं है, क्योंकि तर्क-शासित है। यह मनुष्य की निर्बलता है जो उसे आदर्श जीवन से वंचित रखती है, वह निर्बलता जो अन्ततः अपराजेय नहीं मानी जा सकती। प्लेटो का यह आशावाद सदैव जीवित रहा।

राज्य का विकास

'राज्य की उत्पत्ति का कारण यह है कि कोई व्यक्ति अपने में पूर्ण नहीं। हम सबकी आवश्यकताएं अनेक हैं।'‡ परस्पर के सहयोग से ही वे पूरी हो सकती हैं। अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए हम एक दूसरे का आह्वान करते है। जो एक को चाहिये

*अर्नेस्ट बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ १६३।

‡'रिपब्लिक' कार्नफोर्ड-अनुवाद' पृष्ठ ५४।

दूसरा उसे देता है और बदले में अपनी आवश्यकता की वस्तु उससे लेता है। इस प्रकार आदान-प्रदान के तन्तुओं से समाज खड़ा होता है।

काल्पनिक राज्य के निर्माण में प्रथम आवश्यकता भोजन, दूसरी घर और तीसरी वस्त्र बतायी गई है। प्लेटो ने काम-प्रेरणा को समाज-सृष्टि में स्थान नहीं दिया। कदाचित इसका कारण यह है कि प्लेटो के मत से समाज की सबसे प्रबल प्रेरणा आर्थिक है, यौन नहीं। भले ही समाज के इतिहास में दाम्पत्य सम्बंध समाज का बीज-रूप रहा हो, आदम और हौवा प्रथम समाज के दो ही सदस्य रहे हों, किंतु प्लेटो ऐतिहासिकता की अपेक्षा वर्तमान स्वरूप के विश्लेषण पर आग्रह करता है।

प्राय: विद्वानों के मत से प्लेटो की राज्य की उत्पत्ति सम्बंधी कल्पना में ऐतिहासिक सत्य देखना भूल होगा।† यद्यपि प्लेटो ने इसकी अनैतिहासिकता स्पष्टत: कहीं भी स्वीकार नहीं की है, किंतु 'लाज' में राज्य की उत्पत्ति का वर्णन इससे भिन्न तथा ऐतिहासिक तथ्य युक्त प्रतीत होता है। यहां पर जैसा कि नेटिलशिप कहते हैं, अपने समय के नगर-राज्य का तार्किक विश्लेषण ही प्रस्तुत किया गया है। प्लेटो ने कल्पना की कि यदि उस समय के ही मनुष्य केवल अपनी मात्र मूल आवश्यकताओं के साथ रह जाते, तो समाज का क्या स्वरूप होता।

अनैतिहासिकता एवं तार्किक विश्लेषण की दृष्टि से यह और ग्लाकिन के सामाजिक अनुबंध-सिद्धान्त (सोशल कान्ट्रेक्ट थ्योरी) में समानता है। किन्तु अनुबंध सिद्धान्त में समाज के निर्माण

† देखिये 'रिपब्लिक' का कार्नफोर्ड-अनुवाद, अध्याय छ: पर लेखक का नोट। नेटिलशिप का यही मत देखिये 'लेक्चर्स आन प्लेटोज रिपब्लिक' पृष्ठ ६९।

का हेतु व्यक्ति की स्वाभाविक अपूर्णता का अन्त करना नहीं है, उसके अनुसार तो व्यक्ति की स्वाभाविक वृत्तियां समाज के द्वारा प्रतिबाधित होती हैं। ग्लाकन के सिद्धान्त में व्यक्ति का अपनापन समाज में आकर हीन हो जाता है, प्लेटो के अनुसार समाज में ही व्यक्ति पूर्णता प्राप्त करता एवं विकसित होता है। ग्लाकन के मत से समाज प्रकृति विरोधी है, किंतु प्लेटो उसे स्वाभाविक तथा प्राकृतिक मानता है।

मनुष्य की अपूर्णता उसके समाजिक जीवन का कारण है; किंतु सामाजिक जीवन की ओर प्रेरित करनेवाली अपूर्णता सब में एक-सी नहीं होती, और न योग्यता में ही सब समान होते हैं। समान योग्यता अथवा समान अपूर्णता के व्यक्तियों में सहयोग हो ही कैसे सकता है? अंधा अंधे के सहयोग से क्या पायेगा? किंतु अंधे और पंगु के सहयोग में दोनों का स्वार्थ है। अपूर्णता एवं योग्यता का प्रकारान्तर अनन्त है, क्योंकि कोई दो व्यक्ति समान योग्यता लेकर नहीं जन्में।† इसलिये पारस्परिक सहयोग के क्षेत्र में कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती। सभी व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं।* फिर भी, मोटे तौर से प्लेटो ने योग्यता के अनुसार ही मानव को तीन वर्गों में विभक्त किया है। यह विभाजन व्यवहारिक ही है।

समाज की सरलतम अवस्था में बहुत थोड़े व्यक्ति होते हैं। कुछ खाद्य उत्पन्न करने वाले, कुछ वस्त्र बनाने वाले, कुछ मकान बनाने वाले तथा कुछ बढ़ई व लोहार जो इन सबके लिये औजार-हथियार बनायें। इसके अतिरिक्त मोची भी हो सकता है, जो

---

†'रिपब्लिक' कार्नफोर्ड–अनुवाद पृष्ठ ५५।

*प्लेटो ने व्यक्तिगत से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तक परस्पर-वाद का उल्लेख कर दिया है।

जूते तथा चमड़े के दूसरे काम बनाये। प्रत्येक कर्मी अपने उद्योग से समाज के सभी व्यक्तियों की आवश्यकता पूरी करेगा। बदले में पूरा समाज, अपनी सब प्रकार की वस्तुओं से उसका जीवन सुखद बनायेगा। प्रारंभिक समाज में न्याय का यही रूप होगा, जिसका अर्थ होगा– योग्यता के अनुकूल उद्योग में लगना तथा श्रम-विभाजन।

प्लेटो ने न्याय का यह स्वरूप मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थिर किया है, जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। व्यवहारिक जीवन में इससे वे सभी लाभ हैं जो श्रम-विभाजन में अर्थशास्त्री बताते हैं, मुख्यतः कार्य की उत्कृष्टता। योग्यतानुकूल कार्य करने का अवसर होने के कारण कर्मी के लिए भी यह कम संतोष की बात नहीं। आज तो इस का महत्व सहज ही जान सकते हैं, क्योंकि कर्म और योग्यता की घोर विषमता भोग रहे हैं। यद्यपि यहां श्रम-विभाजन एक आर्थिक सिद्धान्त-सा भासित होता है, किंतु वह व्यवहार में आया आध्यात्मिक प्रेरणा से ही तथा नैतिक तल ही इसका क्रीड़ा-क्षेत्र रहा, जिस पर व्यक्ति अपना काम पूरी सामर्थ्य एवं योग्यता से सम्पन्न करके समाज की सेवा करना चाहता है। समाज उसका लक्ष्य है। उदार लक्ष्ययुक्त होना ही इसकी नैतिकता का प्रमाण है।

कार्य-विभाजन तथा कर्म में धार्मिक निष्ठा होने पर कौशल की उन्नति होना स्वाभाविक ही है, जिससे सरल समाज वृहत्तर एवं जटिलतर हो चलता है। आवश्यकताएं बढ़ती हैं, उद्यम बढ़ते हैं, किंतु समाज के संगठन का मूल सिद्धान्त अपरिवर्तित ही रहता है। वैयक्तिक एवं विशिष्ट योग्यता तथा श्रम-विभाजन के ही आधार पर प्लेटो वृहत्तर आदर्श राज्य का ढांचा खड़ा करता है।

जिस प्रकार प्रारंभ का सरल राज्य आर्थिक आवश्यकताओं–

रोटी, घर और कपड़े के लिये उत्पन्न हुआ था, उसी प्रकार बढ़कर वृहत्तर रूप धारण करने में भी आर्थिक तथा भौतिक इच्छाएं ही कारण हैं। इन दोनों अवस्थाओं में प्लेटो किसे आदर्श मानता है, कहना कठिन है। यद्यपि प्रारंभ में वह सरल राज्य की प्रशंसा करता है और वृहत्तर के दोष कहता है, किंतु आगे चलकर, जिस रूप में इसका निर्माण वह करता है, उसे ही आदर्श राज्य का नाम भी देता है, क्योंकि दोषों एवं निर्बलताओं से, उसने अपनी योजना के द्वारा उसे मुक्त कर दिया है।†

सामाजिक वर्गीकरण

इच्छाओं के विस्तार के साथ उपभोग की चीजों का उत्पादन बढ़ेगा। जो पहले केवल चार-पांच प्रकार की वस्तुओं तक सीमित थीं वह अनेक हो जांयगी। अलंकरण के लिए विविध प्रकार के वस्त्र, आभूषण, चित्रादि तथा खाद्य के भी अनेक व्यंजन बनने लगेंगे। विविध कलाओं तथा शिल्पों का विकास होगा। विशिष्ट योग्यता (स्पेशलाइजेशन) के विचार से क्रय-विक्रय के काम से शिल्पी मुक्त होंगे। व्यापारी वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान माल ले जाकर बेंचेंगे तथा दूकानदार उपभोक्ताओं के हाथ उसे फुटकर बेंचेंगे। आदर्श राज्य में इनकी सेवाओं की भी आवश्यकता पड़ेगी।‡

प्लेटो ने मानव-अन्तःकरण को तीन खण्डों में विभक्त किया : विवेकशील, भावनाशील तथा वासनाशील और इसी विभाजन का प्रतिबिम्ब समाज पर भी डाला। उसकी आदर्श व्यवस्था में

---

†अर्नेस्ट बार्कर 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी, पृष्ठ १६६ पर पाद टिप्पणी नं० २।

‡यहां अरिस्टाटिल की अपेक्षा प्लेटो नरम है। पहला, उत्पादक एवं उपभोक्ता के बीच मध्य व्यक्ति की सेवाओं को मान्यता नहीं देता, किंतु प्लेटो ने उसे स्वीकार किया है।

समाज का प्रत्येक वर्ग अपने अन्तःकरण के झुकाव के आधार पर ही कर्त्तव्य करेगा। यह कर्त्तव्य तीन प्रकार के हैं, जो क्रमशः उपरोक्त अन्तःशक्ति की अधिक अपेक्षा करेंगे। शासक को विवेक अधिक चाहिये, सैनिक में भावप्रधानता तथा व्यवसायी एवं उद्यमी में वासना की प्रधानता होना चाहिये। इस प्रकार मानव-स्वभाव, सामाजिक वर्ग तथा कर्त्तव्य-वर्ग इन सभी में प्लेटो ने त्रिवर्ग की स्थापना की।

आर्थिक वर्ग

वासनायुक्त उत्पादक एवं व्यवसायी वर्ग समाज का तृतीय वर्ग है जो प्रथम दो के अनुशासन में रहेगा। समाज का हित ध्यान में रखते हुए शासक उसके काम पर नियंत्रण रक्खेंगे। अधिक निर्धनता तथा अत्यधिक सम्पन्नता दोनों ही घातक होने के कारण इन अवस्थाओं से इस वर्ग को बचाने का यत्न किया जायगा। जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में, वैसे ही आर्थिक क्षेत्र में भी, प्लेटो ने विशिष्ट योग्यता-सिद्धान्त का अनुशीलन किया है। हर एक कर्मी अपने काम में पूरी शक्ति से लगेगा, जिससे एक ओर उसकी शक्ति का दूसरी ओर शिल्प का विकास होगा। पारस्परिकता के आधार पर आर्थिक जीवन व्यतीत करने वाले वर्ग के लोग श्रम-विभाजन तथा सहयोग से काम करेंगे। कच्चा माल तैयार करने वाला, उत्पादक तथा शिल्पी और व्यवसायी तथा दुकानदार यह सभी अपना-अपना काम करेंगे। इससे आर्थिक जीवन विकसित होगा।

देश के निवासियों की इच्छाओं के साथ-साथ उद्यम तथा व्यवसाय में वृद्धि होगी, जिसके लिये बहुत से लोगों की आवश्यकता पड़ेगी। राज्य की आबादी की वृद्धि के साथ अधिक भूमि की आवश्यकता भी पड़ेगी ही। भूमि-विस्तार की आवश्यकता से आक्रमणकारी सेना की तथा संचित धन-कोष और राष्ट्रीय सम्पत्ति की

रक्षा के लिये आक्रमणों के निवारण के लिए सैन्य शक्ति की आवश्यकता उत्पन्न होगी।

रक्षक वर्ग

रक्षा करने के लिए सार्वजनिक सेनाएं उपयुक्त होंगी अथवा विशिष्ट योग्यता-सिद्धान्त के अनुसार स्थायी सेना की व्यवस्था होनी चाहिये ? सैनिक केवल अपने काम के अभ्यास में निरंतर लगे रहें, जिससे अवसर आने पर अपने कौशल में अधिक से अधिक सफल सिद्ध हो सकें। प्लेटो के समय तक यूनान में यह विषय निर्विवाद ही हो चुका था। स्थाई सेनाओं ने सार्वजनिक सेनाओं से अधिक सफलता प्राप्त करके, सिद्धान्तः अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर दी थी। अतएव रण-कौशल का निरन्तर अभ्यास करने के लिए एक जन-वर्ग पृथक ही रहे जो किसी अन्य काम में समय तथा शक्ति लगाने के लिए बाध्य न हो।

प्लेटो के मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण में यही वर्ग भावनाशील कहा गया है। भावनाशील व्यक्ति अपने कर्म-क्षेत्र में वैसे ही वेगवान हो सकते हैं, जैसा कि रण-क्षेत्र के सैनिक को होना चाहिए। भावांध व्यक्ति ही बड़े पैमाने पर मानव-संहार के लिये प्रवृत्त हो सकता है। संकल्प-विकल्प में पड़ा व्यक्ति औचित्य अथवा अनौचित्य के विचार से अथवा अपने प्राणों के मोह से इस भीषण कर्म के लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। प्लेटो ने सैन्य जीवन के लिये उपयुक्त व्यक्तियों में अधिक विवेकशीलता एवं विचारशीलता उपयोगी नहीं मानी है। अपने बाहुबल से देश की रक्षा करने वाले केवल शत्रु-मित्र का विवेक कर लें तो पर्याप्त है। इतना विवेक तो आवश्यक ही है, अन्यथा अपने ही लोगों को वे फाड़ खायेंगे। अपने स्वामी के प्रति सहिष्णुता के व्यवहार का आधार, प्लेटो के अनुसार कुत्ते का ज्ञान है जिससे वह शत्रु-मित्र का भेद

करता है। ज्ञान का यह अंश रक्षकों में भी सुरक्षित रखना अतीव आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा इसका विकास हो तथा इसे दृढ़ता पूर्वक स्वभाव में स्थापित किया जाय।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि रक्षक वर्ग में पायी जाने वाली उद्देश्य की दृढ़ता, त्याग की पराकाष्ठा, बाहुबल, देश-प्रेम आदि ऐसे गुण हैं, जिनके कारण राज्य का उत्तरदायित्व उन पर छोड़ने में धोखा खाने की संभावना नहीं। किंतु राज्य-संचालन जैसे कठिन कार्य के लिए उनकी सरलता तथा बौद्धिक स्थूलता का भरोसा नहीं किया जा सकता। मानव-जीवन के उत्कृष्ट लक्ष्य को तर्कयुक्त ग्रहण करना उनकी बुद्धि की सामर्थ्य के बाहर है। सद्सद की पहचान उन्हें है, किंतु वह श्रद्धा-विश्वास एवं अभ्यास पर ही आश्रित है। सूक्ष्म बुद्धि तथा तर्क द्वारा वे उस महासत्य को ग्रहण नहीं कर सकते। अतएव उन्हीं में से जो व्यक्ति सूक्ष्म बुद्धि से युक्त होंगे उन्हें उच्च शिक्षा द्वारा परमलक्ष्य का दर्शन कराया जायगा, जिससे वे लक्ष्यवान मानव-जीवन को उचित पथ से विचलित न होने दें।

दार्शनिक-शासक

इन्हें राज्य का शासक बना कर प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य की कल्पना को मनोवैज्ञानिक स्वरूप की पूर्ण प्रतिकृति के रूप में अंकित कर दिया। जिस प्रकार अन्तःकरण के क्षेत्र में विवेकशील प्रमुख अवयव था, उसी के निर्देश पर सक्रिय होने वाले अन्य दो अवयव भावनाशील तथा वासनाशील माने गये थे। उसी प्रकार राजनैतिक जीवन में परम विवेकवान दार्शनिक-शासक बनाये गये, भावनाप्रधान वर्ग साहसिक कार्यों के लिए नियुक्त हुए तथा आर्थिक जीवन का उत्तरदायित्व वासनाशील पर पड़ा। किंतु अन्य सभी को दार्शनिक के नियंत्रण में रहने की व्यवस्था दी गयी।

यही न्याय की अवस्था है। यही सामाजिक संतुलन भी है। प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार सामुहिक जीवन के कार्य में भाग ले। इस सम्बन्ध में प्लेटो ने शासक वर्ग को सचेत कर दिया कि यदि उनकी सन्तान अपने पिता की कर्म-श्रेणी के योग्य नहीं है, तो समाज के उचित स्तर पर उसे पहुंचा देने में शासक-पिता मोह में न पड़े।

शासकों के निर्वाचन में बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है। जीवन के हर एक चरण में उनके साहस, धैर्य, दृढ़ता, विवेक आदि चारित्रिक अवयवों की भलीभांति परीक्षा कर लेनी पड़ेगी। क्योंकि वे सम्पूर्ण समाज के कर्णधार होंगे। उन्हीं के बनाये और बिगाड़े समाज को बनना–बिगड़ना है। अतएव हर तरह से ठोंक बजा कर सुपात्र की परीक्षा कर लेने की चेतावनी प्लेटो ने दी है। निर्वाचित व्यक्ति आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों प्रकार की निर्बलताओं से मुक्त हों। तर्क के आधार पर जिस निश्चय पर वे पहुंचे, उससे विचलित करने में कोई प्रलोभन अथवा भय सफल न हो सके। इस बात की भलीभांति परीक्षा हो जाना चाहिये।

इस प्रकार प्लेटो ने रक्षकों में दो विभाग कर दिये, एक तो 'दार्शनिक रक्षक' अथवा 'दार्शनिक शासक', जो वास्तविक रक्षक एवं शासक होंगे। इनकी आज्ञायें पालन करना राज्य के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होगा। जिस प्रकार बुद्धि की आज्ञा का पालन करना अन्तःकरण के साहस एवं वासना आदि का कर्त्तव्य होता है। दूसरे रक्षक वे होंगे जो बाहुबल से राज्य की रक्षा करेंगे। इन्हे प्लेटो ने सहायक वर्ग (आक्षीलरीज) कहा है। दार्शनिक शासकों की आज्ञा पालने में इन्हें कर्त्तव्यपरायणता का आनन्द मिलेगा। शासकों के यह उसी प्रकार किंकर होंगे जिस प्रकार गड़रिये का कुत्ता होता है। मालिक के इशारे पर शत्रु पर मौत बन कर चढ़ बैठे, पर मालिक

के कदमों पर दुम हिलाकर लगातार स्वामिभक्ति की कसम खाता रहे।

शासकों एवम् रक्षकों की जीवन-प्रणाली सैनिक कर्त्तव्य के अनुकूल, अत्यन्त कठोर होगी। सम्पूर्ण समाज तथा उसकी सम्पदा के प्रति उनका समान अपनत्व-भाव रहे इसलिये उन्हें 'निजी सम्पत्ति' से वंचित रहना होगा। सोना-चांदी का तो उनके लिए स्पर्श भी अवांछनीय होगा, और आवश्यकता भी उन्हें इनकी क्या, जब स्वयं प्रकृति ने उनके अन्तःकरण में इन्हें स्थापित कर दिया है।† रक्षकों को अपने कर्त्तव्य के बदले में समाज की ओर से अत्यावश्यक वस्तुएं मिला करेगी। उनका भण्डार केवल इतना ही होगा कि एक वर्ष के लिए पर्याप्त हो। यह भंडार भी सार्वजनिक होगा। रक्षकों की रसोई सम्मिलित होगी तथा भोजन भी साथ बैठकर ही करना होगा। इस प्रकार सैनिकों के शिविर-जीवन की भांति उन्हें रहना पड़ेगा। निस्सन्देह यह जीवन-प्रणाली तथा उसकी कठोरता न तो उनके ऊपर बंधन स्वरूप होगी और न वे इसमें दुखी होंगें। यह पूरी व्यवस्था उनके लक्ष्य एवं कर्त्तव्य से तर्कसंगत होने के कारण सहर्ष ही स्वीकृत होगी।

दार्शनिक-शासक विवेकप्रधान होने के कारण सत्य के प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि होगी। सत्य के अन्वेषण में वे स्वतः लगेंगे। मनुष्य जब एक दिशा में अपनी पूरी शक्ति से लग जाता है तो दूसरी ओर से वह खिंचा रहता है। सत्य की ओर संलग्न रहने के कारण दार्शनिक शासक जागतिक कामनाओं तथा वासनाओं में लिप्त होने का अवसर नहीं पायेंगे। सत्य के प्रति उनकी रुचि दृष्टि-कोण को अत्यन्त व्यापक बना देगी। वे व्यापक काल और देश के ज्ञाता होंगे। इसलिये वे जीवन की तुच्छता से भलीभांति

†'रिपब्लिक' का कार्नफोर्ड-अनुवाद पृष्ठ १०६।

परिचित होंगे। मृत्यु का उन्हें भय न होगा। निर्भीकता उनका दूसरा महत्वपूर्ण गुण होगा। सत्यनिष्ठ और साहस के साथ-साथ दार्शनिकों में अच्छी स्मरण-शक्ति भी अपेक्षित होगी, उसके अभाव में तो विवेकपूर्ण जीवन ही संभव नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त तालैक्यता (हारमनी) उनके सम्पूर्ण विचार एवं कर्मों में होगी। यह तो सत्य का ही अभिन्न अंग है जो उसे सौंदर्य प्रदान करता है। अतएव सत्यान्वेषी इससे रिक्त कैसे हो सकता है!

दार्शनिक-शासक मूलतः दार्शनिक होंगे तथा परिस्थितिवश शासक होंगे। उनकी दृष्टि निरन्तर परमशिव पर स्थिर होगी, उनके समस्त आचरणों में उसकी छाया होगी। जागतिक जीवन को वह एक कलाकार की भांति निसर्गस्थ आदर्शतत्वों की प्रतिकृति के रुप में अंकित करने की सतत चेष्टा करेंगे। यह आदर्श तत्व प्रत्येक सांसारिक अस्तित्व की पूर्ण अवस्था है। राजनैतिक जीवन का भी एक पूर्ण स्वरूप है जो उसका आदर्श है। यह दार्शनिक शासक का 'आदर्श-राज्य' है। दार्शनिक-शासक शासन करने में इसी से प्रेरणा ग्रहण करेगा। इस आदर्शतत्व का दर्शन करना केवल कुछ ही व्यक्तियों के लिए संभव होगा, क्योंकि पूरा-पूरा राष्ट्र तो दार्शनिक कहीं होता नहीं! और, दार्शनिक प्रवृत्ति के व्यक्ति को भी यह सामर्थ्य उच्च शिक्षा से ही प्राप्त हो सकती है।

प्लेटो के समाज-दर्शन में प्रेम एक महत्वपूर्ण वस्तु है। यह समाज को सुदृढ़ता प्रदान करने वाली रज्जु है, जो रक्षक वर्ग में ज्ञानजनित होगी। सहायक रक्षकों के अन्तस्तल में प्रेम भावनाशील अंश से संयुक्त होकर आचरण को प्रभावित करेगा। रक्षक, इसके कारण अपरिचितों के प्रति कठोर तथा परिचितों के प्रति कोमल व्यवहार करेंगे। किंतु प्रेम दार्शनिक शासकों में ज्ञान से संयुक्त होगा। इन लोगों में विवेक की प्रधानता होने के कारण, यह

जिसे भलीभांति जानेंगे उससे ही प्रेम करेंगे। अपने राज्य का इन्हें पूर्ण ज्ञान होगा। उसके हितों को अपना हित तथा उसके अहित में अपनी हानि मानेंगे। दार्शनिक-शासकों के चुनाव में चरित्र के इस लक्षण की भलीभांति परीक्षा करने की प्लेटो ने परामर्श दी है। केवल ज्ञानशीलता से ही दार्शनिक-शसाक की योग्यता पूरी नहीं हो जाती। उसमें प्रेम अथवा रागात्मक वृत्ति भी अपेक्षित है, जिसके अभाव में वह अपना निजत्व राज्य के साथ एकाकार न कर सकेगा।

अन्तरंग प्रेम द्वारा प्रेरित होने के कारण शासक के संमुख शासित का हित ही प्रमुख होगा स्वार्थ नहीं, और यही तो कलाकार की भी प्रवृत्ति होती है, शिल्पकार भी यही करता है। यह लोग सच्चे राज्य-नेता की भांति अपने आधीन पदार्थ की उन्नति एवं उत्कर्ष के लिये सचेष्ट होते हैं। चित्रकार पटल, तूलिका तथा रंगों का ऐसा प्रयोग करता है कि उनमें जीवन नाच उठता है, वैसे ही राज्य-नेता अपनी प्रजा को समृद्ध एवं सुखी बना कर देवों के लिए भी उनका जीवन स्पृहणीय बना देता है।

विवेचन

आदर्श राज्य के निर्माण में प्लेटो ने मनुष्य के बौद्धिक गठन के मूल तत्वों को अपरिवर्त्तनीय मानकर, उसके अनुकूल ही समाज में उसका स्थान तथा उसके लिये कार्य निश्चित करने की चेष्टा की है। जिसके कारण समाज भी अन्तःकरण को भांति त्रिवर्गीय हो जाता है। इस सम्बंध में कुछ विद्वानों ने प्लेटो पर जातिगत समाज बनाने का दोषारोपण किया है, किन्तु जैसा हम आगे देखेंगे इस वर्गीकरण में जातियों की सी कठोरता आ जाना आदर्श-राज्य के पतन का एक कारण माना गया है। प्लेटो ने स्पष्ट रूप से यह व्यवस्था दी है कि विविध वर्गों में उत्पन्न बालक जन्म के ही वर्ग में रहने के लिए बाध्य नहीं होंगे। यद्यपि माता-पिता के वर्ग में

पैतृक प्रभाव के कारण उसकी सफलता की संभावना अधिक होगी, किंतु यदि रौप्य वर्ग में स्वर्ण स्वभाव लेकर कोई बालक जन्म ले, तो अवश्य ही शिक्षा दीक्षा देकर समाज में उचित स्थान उसे दिया जाय।

अन्तःकरण के विविध अंगों के आधार पर समाज के वर्ग बन जाने पर, सहसा प्रतीत होता है कि किसी वर्ग के लोग अपनी बुद्धि का केवल एक ही अंग प्रयोग करेंगे। शेष अंग निष्क्रिय ही रहेंगे, जिससे बौद्धिक विकास में विरुपता आ जायेगी—एक अंग अधिक विकसित तथा शेष अविकसित ही रह जायेंगे। किंतु यह दृष्टिकोण, बिना व्यवहारिक पक्ष की उपेक्षा किये स्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुस्थिति तो यह होती है कि किसी भी कार्य में बुद्धि का केवल एक अंग कार्य नहीं करता। मस्तिष्क तो स्वभावतः संश्लिष्ट एवं इकाई के रूप में ही कार्य करता है। कुछ कार्य उसकी किसी एक शक्ति का प्रयोग अधिक करते हैं, कुछ दूसरे कार्य दूसरी शक्ति का। शासक, रक्षक, व्यवसायी एवं उद्यमी, सभी वर्गों को विवेक, साहस, तथा राग की आवश्यकता होती है। आदर्श राज्य की सामाजिक व्यवस्था में सभी लोग अपनी प्रधान वृत्ति के अनुसार ही कार्य पा सकेंगे। समुचित बौद्धिक विकास के लिए यह व्यवस्था ही श्रेयस्कर है, अन्यथा दार्शनिक झुकाव वाला व्यक्ति उद्यम तथा व्यवसाय में पड़कर अपनी बुद्धि के तीव्र अंश को अनुपयोग के द्वारा क्षुधार्त होकर नष्ट होने देगा तथा निर्बल अंश कार्य की आवश्यकताओं को भी शायद न पूरा कर सके। परिणाम क्या होगा? व्यक्ति और कार्य दोनों ही दुर्दशा को प्राप्त होंगे।

अन्तःकरण के तीन खण्ड की कल्पना के स्थान पर रूसो की भांति सभी मनुष्यों में सामान्य विवेक का अस्तित्व मानकर 'सार्वजनिक संकल्प' (जनरल विल) को राजनैतिक प्रधानता दी जा सकती है। इससे जन-तंत्र की स्थापना होती है। किंतु एकबार

'विशिष्ट योग्यता' एवं 'श्रम-विभाजन' को जीवन की आधार-शिला बना देने पर राजनीति के पक्ष में जो इसका तर्कसंगत रूप स्थिर होता है, वह वही हो सकता है जो प्लेटो ने स्थिर किया, अर्थात् दार्शनिक अधिनायकवाद।

इस संबंध में अ० बार्कर द्वारा उद्धृत उनके गुरुका मत विचारोत्तेजक है।* उनका कहना था—विवेक के अतिरिक्त समस्त सदाचार आज्ञापालन के रूप हैं; दार्शनिक शासक के अतिरिक्त राज्य के सभी अंग उद्देश्य के साधन मात्र हैं। इसके समान ही अरिस्टाटिल का वह आक्षेप है जिसे उसने 'आत्यंतिक एकता' कहा है। इस पर दो मत नहीं हो सकते कि प्लेटो ने अपने समय के व्यक्तिवाद पर हर तरह से आघात किया। राज्य-हित से बढ़ कर, इहलौकिक जीवन में मनुष्य का लक्ष्य हो ही क्या सकता है? इससे हट कर वह संकीर्ण स्वार्थों में लिप्त, वाह्य एवं आन्तरिक अशांति ही भोग सकता है।

अरिस्टाटिल के मत से प्लेटो का आदर्श राज्य न केवल 'आत्यान्तिक एकता' से सदोष है, उसमें 'आत्यन्तिक प्रथकता' का दोष भी विद्यमान है। पहले दोष के कारण व्यक्ति का सम्पूर्णत्व नष्ट हो जाता है और वह केवल एक अंग मात्र रह जाता है। समाज के लिये व्यक्ति की पूरी-पूरी अवहेलना होती है। दूसरा दोष समाज को कठोर वर्गीकरण से छिन्न-भिन्न कर डाल सकता है। सबसे पहले तो रक्षक-शासक वर्ग सम्पत्तिहीन खण्ड तथा आर्थिक जीवन में संलग्न वर्ग का सम्पत्तिवान खण्ड, समाज के दो ऐसे भाग हो जाते हैं, जिनमें पारस्परिक हित-साधन एवं सहृदयता की आशा नहीं की जा सकती है। इसमें सन्देह नहीं, प्लेटो का आदर्श राज्य इस विषमता का शिकार हो जायगा, यदि राज्य के निवासियों द्वारा

*अ० बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ १७४ की पाद-टिप्पणी।

पारस्परिकता एवं सहयोग के मूलाधार सिद्धान्त ही भुला दिये जायंगे ।

प्लेटो ने जहां एक ओर समाज को मनोवैज्ञानिक आधार पर तथा 'विशिष्ट योग्यता-सिद्धान्त' पर समाज का वर्गीकरण एवं श्रम-विभाजन किया है, और समाज में प्रथकता उत्पन्न की है, वहां दार्शनिक एवं विवेक की एकान्त सत्ता के साथ साथ व्यक्तियों का अपनी आवश्यकताओं के लिये एक दूसरे का आश्रित होना महत्वपूर्ण संश्लेषक स्थिति है। प्लेटो ने आर्थिक एवं राजनैतिक शक्तियों को अलग किया, किंतु उनका सम्बंध विच्छेद नहीं किया। केवल उनके सम्बंध का रुप बदल दिया। आदर्श व्यवस्था में राजनैतिक शक्ति नियंत्रक बनाई गई तथा आर्थिक शक्ति उसकी सहायक एवं अनुचरी ।

प्लेटो : आदर्श राज्य (ख)

शिक्षा---प्राचीन विधियां

न्याय को केन्द्र बिन्दु बनाकर राज्य एवं समाज के प्रत्येक अंग का प्लेटो निर्माण करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी योग्यता से तथा निर्बाध होकर अपना कर्त्तव्य सम्पन्न कर सके-यही जीवन में न्याय की अवस्था है। मनुष्य की पूरी योग्यता प्रस्फुटित हो जाय तथा उसके मार्ग की बाधायें नष्ट हो जायं यह 'रिपाब्लिक' में उल्लिखित समाजिक एवं शिक्षा-व्यवस्था का मूल हेतु है। पहले के लिए उसने अपनी नवीन शिक्षा-प्रणाली प्रस्तुत की तथा दूसरे के लिए साम्यवाद, दोनों प्रकार का साम्पत्तिक एवं पारिवारिक।

शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि प्लेटो ने क्रांतिकारी परिवर्तन किये, किन्तु संगठनात्मक परिवर्तन से अधिक उसने शिक्षा के दृष्टिकोण एवं तात्पर्य में क्रान्ति पैदा की। शिक्षा की जो व्यवस्था पहले से ही एथेंस में प्रचलित थी, प्लेटो ने उसका बहुतांश स्वीकार कर लिया था। एथेंस की पुरानी शिक्षा प्रणाली में, बाल-शिक्षा-काल में (६ से १४ वर्ष की अवस्था तक) लिखना, पढ़ना और कुछ गणित सिखाया जाता था। इसके उपरान्त भावात्मक शिक्षा तथा रुचि-

संस्करण के लिये कुछ साहित्य और संगीत की शिक्षा दी जाती थी। प्राचीन कवियों द्वारा रचे गये पद भी कंठस्थ करा दिये जाते थे। यह पद केवल काव्य-दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं थे, यूनान का धर्म प्राचीन काव्य द्वारा ही निर्मित था। लोग उसी पर आचरण करते थे। अतएव यही धार्मिक शिक्षा भी थी।

शिक्षा का द्वितीय चरण चौदह वर्ष से अठारह वर्ष की अवस्था तक था। इस काल में केवल धनाड्‌य माता-पिता ही अपने किशोर को उच्च शिक्षा दिला सकते थे, जो कि साफिस्टों के स्कूल में बड़ी रकमें देकर प्राप्त हो सकती थी। इसमें राजनैतिक जीवन की तैयारी के लिये सैद्धान्तिक ज्ञान तथा वक्तृता, व्याकरण एवं दर्शन आदि गहन विषय अध्ययन किये जाते थे। शिक्षा के अंतिम तथा तीसरे चरण में दो वर्ष की सैनिक शिक्षा दी जाती थी और सभी युवकों के लिये यह अनिवार्य थी।

सोलन से पूर्व एथेंस की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली अत्यन्त क्षीण थी, यह श्रेय उसी को है कि सबसे पहले कानून बनाकर उसने बालकों को शिक्षा देने के लिये बाध्य किया। किंतु शिक्षा में इससे अधिक राज्य की ओर से कभी कोई हस्तक्षेप नहीं हुआ। छोटे-छोटे विद्यालय सार्वजनिक सहयोग से शिक्षण कार्य करते थे। माध्यमिक शिक्षा, सम्पन्न साफिस्टों द्वारा संचालित थी। केवल सैनिक शिक्षा का कार्य ही राज्य का उत्तरदायित्व था, जिसे उसने सार्वजनिक प्रबंध में छोड़ कर राष्ट्र की प्रतिरक्षा को संदिग्धावस्था में नहीं रखना चाहा। किंतु शिक्षा के केवल अंतिम दो वर्ष ही अपने अधिकार में रखकर राज्य कहां तक वांछित फल प्राप्त कर पाता होगा, जब कि, प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा, निजी एवं पारिवारिक निरीक्षण में सम्पन्न होने के कारण, युवकों के भावात्मक निर्माण में पहले ही वैविध्य तथा विषमता उत्पन्न कर चुकती होगी। प्लेटो

ने राज्य को प्रतिरक्षा को महत्व देकर ही समाज के दो वर्गों की आद्योपान्त शिक्षा राजकीय नियंत्रण में रक्खी और साथ ही उसने एथेंस की प्रणाली का परित्याग किये बिना स्पार्टा को सैन्य शिक्षण-प्रणाली का वरण किया।

स्पार्टा में शिक्षा की व्यवस्था एथेंस से भिन्न थी। भिन्नता केवल प्रणाली ही में नहीं, शिक्षा के उद्देश्यों में भी थी। स्पार्टा का सम्पूर्ण जीवन सैनिक विपत्ति की लगातार तैयारी में जुटा था, जब कि एथेंस मानव-जीवन को यथासंभव पूर्ण एवं विशद बनाने में ही श्रेय मानता था। एथेंस की शिक्षा यदि उत्कृष्ट नागरिक जीवन के लिए तथा दार्शनिक गंभीरता के कारण आकर्षक थी, तो स्पार्टा की शिक्षा महत्वाकांक्षी कुलीन वर्ग के युवकों को राजनीति में सैन्यबल द्वारा सफलता प्राप्त करने की आशा दिलाती थी।

शताब्दियों से अपरिवर्तित स्पार्टा की शिक्षा-प्रणाली अत्यन्त कठोर तथा वैयक्तिकता का दमन करने वाली थी। सात वर्ष की अवस्था में बालक अपने पिता-माता से अलग कर शिक्षा-शिविर में भेज दिया जाता था। वहां राजकीय अधिकारियों के नियंत्रण में यातनामय जीवन बिताकर दुर्निवार सैनिक के रूप में निकलता था। एथेंस से विपरीत स्पार्टा में स्त्रियां भी शिक्षा प्राप्त करती थी और युवकों की भांति शिविर-जीवन व्यतीत करती थीं। पारिवारिक जीवन नाममात्र का था। दम्पति का मिलन भी राजकीय नियंत्रण की बात थी। कितने ही स्पार्टा वासी निरक्षर थे और यूनानी साहित्य से परिचित तो बहुत ही कम लोग होते थे। इस प्रकार स्पार्टा की शिक्षा एकांगी थी जो केवल बलवान तथा कठोर देह के निर्माण में ही समाप्त हो जाती थी। प्लेटो में इन दोनों प्रणालियों का समागम मिलता है। उसने एथेंस की विकासशीला संस्कृति-प्रधान शिक्षा तथा स्पार्टा की दैहिक एवं सैनिक शिक्षा को मिलाकर,

अपने अध्यात्मवाद से आदर्श शिक्षा प्रणाली को अत्यंत सारमय बना दिया।

आदर्श शिक्षा

प्लेटो ने शिक्षा के लिये प्रकृति तथा संस्कार दोनों पर विचार किया। मानव-स्वभाव का कुछ अंश प्राकृतिक तथा इतना सुदृढ़ होता है कि उसमें विशेष परिवर्तन नहीं किया जा सकता, किंतु वही शिक्षा के द्वारा भले अथवा बुरे संस्कार ग्रहण कर मनुष्य को देवता या दानव बना सकता है। इस विश्वास से प्लेटो ने राज्य की रक्षा के लिये सभी दिशाओं से नाकेबन्दी के लिए शिक्षा को विशिष्ट रुप-रेखा दी। बाहरी आक्रमण तथा राज्य के आन्तरिक उपद्रवों के शमन के लिए सैन्य शिक्षा का विधान किया, आध्यात्मिक विपत्तियों से बचाने के लिये सदाचार की शिक्षा की व्यवस्था की। यह था उसकी शिक्षा का अभावात्मक अंग, किन्तु यही अलम् न था। प्लेटो का उद्देश्य तथा उसकी प्रमुख प्रेरणा अस्तित्ववती थी। परम शिव मानव-जीवन और शिक्षा का साध्य है और व्यवहारिक क्षेत्र में वह न्याय के रूप में प्रगट होता है।

दृष्टिकोण बदल देना शिक्षा का अर्थ है, बाह्य आकर्षण एवं वैविध्य में उलझा हुआ वासनामय जीवन, अन्तर्दृष्टि से प्रकाशित कर देना शिक्षा का कार्य है। सदाचार तथा अनुशासन जो स्पार्टा में दमन के आधार पर आचरित होते थे, प्लेटो उन्हें ज्ञान पर आधारित करना चाहता है। व्यक्ति अपने कर्त्तव्य तथा आचार का पालन अन्तःप्रेरणा तथा अंतर्दृष्टि से युक्त होकर करे। प्लेटो तथा अरिस्टाटिल दोनों ही इस सम्बंध में एकमत होकर, यूनान की परम्परागत धारणाओं का अनुशीलन करते हुए प्रोटागोरस की भांति शिक्षा को ही राज्य का लक्ष्य मानते हैं। राज्य उचित शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के अन्तःकरण में सदाचार एवं ज्ञान स्थापित कर दे।

इतना करके वह निश्चित हो सकता है, क्योंकि फिर न उसे कानून बनाने की आवश्यकता रहेगी, न पुलिस व दण्ड विधान की।

जिस प्रकार स्वस्थ अन्तःकरण का निर्माण करके कानून, पुलिस तथा दण्ड व्यवस्था व्यर्थ हो सकती हैं, वैसे ही शरीर का स्वास्थ्य प्राप्त करके चिकित्सक व्यर्थ किया जा सकता है। जिस राज्य में इन दोनों की जितनी बहुलता हो वह उतना ही निकृष्ट होगा। स्वास्थ की थोड़ी बहुत गड़बड़ी व्यायाम-शिक्षक द्वारा ही खान-पान ठीक करके दूर की जा सकती है।* किंतु ऐसे रोगी जो सदा चिकित्सा का आश्रय लेकर ही जीवित रह सकते हैं और अपना कर्त्तव्य-भार नहीं वहन कर सकते, उनका वध ही कर देना प्लेटो ने उचित समझा, इसी प्रकार वे अपराधी जो शिक्षा द्वारा सुसंकार ग्रहण करने में असमर्थ हैं, वध के पात्र हैं। शिक्षा को इतना महत्व देकर प्लेटो उसे पारिवारिक निरीक्षण तथा निजी व्यवस्था में कैसे छोड़ सकता था। उसने आद्योपान्त शिक्षा को राज्य का उत्तरदायित्व बना दिया था।

शिक्षा का लक्ष्य अन्तःकरण है, जो स्वयं निष्क्रिय तत्व नहीं है कि उसे किसी भी प्रकार ढाला-मोड़ा जा सके। वह स्वतः सक्रिय चेतना है। इसलिये उस पर बहुत सा सांस्कृतिक, ज्ञानात्मक तथा चारित्रिक सामग्री का बना-बनाया, पका-पकाया सामान लाद लेना शिक्षा नहीं कहलायेगा। जीवन तथा अनुभव के विविध-क्षेत्रों में वह स्वयं आगे बढ़कर ज्ञान तथा संस्कार ग्रहण करने के लिये आकुल रहता है। अर्नेस्ट बार्कर के अनुसार प्लेटो के सिद्धान्त से 'मस्तिष्क मानव-मस्तिष्क द्वारा अब तक अर्जित सामग्री के सम्पर्क में आकर विकसित होता है।' चूंकि अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के अतिरिक्त राज्य भी मानव-बुद्धि से ही प्रादुर्भूत है अतएव

*यूनान के व्यायाम-शिक्षक ऐसा किया ही करते थे।

इसका ज्ञान भी सम्पर्क स्थापित कर के ही प्राप्त होता है, और उसके फलस्वरूप उत्क्रान्त होता है। 'प्रत्येक मनुष्य की आत्मा की उत्क्रान्ति में मानव के सम्पूर्ण इतिहास की पुनरावृत्ति होती है।'* ऐसी दशा में, शिक्षा-योजना के विविध चरणों की रूप-रेखा तथा विधि अवस्थाजन्य विशेषताओं के आधार पर बदलती रहेगी।

शिक्षा का कार्य बाह्य आरोपण नहीं है। यह अन्तर्निहित शक्तियों का विकसित करना है। यह बात प्लेटो के दर्शन का तर्कसंगत निष्कर्ष है। प्लेटो का कहना था कि सम्पूर्ण ज्ञान मानव के अन्तरंग में स्थित होता है, केवल उसे स्मरण दिलाने की आवश्यकता है। सीखने की क्रिया वस्तुतः भूली हुई बात को फिर से याद करना है। शिक्षक सिखाता नहीं केवल पथ-प्रदर्शन करता है।

बुद्धि स्वयंग्राही है, इसका एक तात्पर्य और है। बुद्धि की सक्रियता के पीछे कोई न कोई उद्देश्य प्रेरक शक्ति के रूप में काम करता है। वह कभी उद्देश्यहीन कार्य में संलग्न नहीं होती। यह सोद्देश्यता उसकी ज्ञानात्मक क्रिया में भी विद्यमान रहती है। किसी घटना, परिस्थिति अथवा वस्तु को जानने का अर्थ है, उसका हेतु जानना। बुद्धि की यह ज्ञानात्मक वृत्ति विभिन्न स्तरों पर कार्य करती है।

वासनाशील व्यक्ति, भावनाशील व्यक्ति तथा दार्शनिक इन सभी में ज्ञानात्मक वृत्ति अपने-अपने तल पर विभिन्न प्रकार से एक ही वस्तु की सोद्देश्यता देख सकते हैं। शिक्षा विभिन्न वर्गों में उनके कर्त्तव्य के प्रति सोद्देश्यता एवं ज्ञानात्मक दृष्टिकोण स्थापित करती है। यद्यपि सभी वर्ग अपने अपने क्षेत्र में उद्देश्ययुक्त होंगे, किंतु उस परम उद्देश्य का दर्शन, जिसमें अन्य सभी समाहित होंगे, केवल

*अर्नेस्ट बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ १८८।

दार्शनिक को ही प्राप्त होगा। इसी के लिये प्लेटो ने उसकी उच्च शिक्षा की व्यवस्था की। यद्यपि परमशिव का दर्शन केवल दार्शनिक के लिये ही संभव है किन्तु यह उसी का प्रभाव है जो संसार में सर्वत्र सोद्देश्यता दिखाई देती है। परमशिव न केवल सम्पूर्ण क्रियाओं का वरन सम्पूर्ण अस्तित्व का हेतु है। इसकी उपलब्धि उच्च शिक्षा का लक्ष्य है, किंतु शिक्षा की निम्न श्रेणियों के उद्देश्य भी इसी की दिशा में उन्मुख होंगे। प्रथमचरण में कल्पना, भावना आदि की शिक्षा देने में तथा आगे सौंदर्य-भावना एवं आस्वाद के सुसं-करण में वही अन्तिम उद्देश्य ही परिलक्षित होगा।

शिक्षा-काल केवल बाल्य एवं किशोरावस्था तक ही सीमित नहीं रहता। मनुष्य जीवन-पर्यन्त सीखता रहता है। जीवन के पके हुए दिन अन्तर्साधना तथा परमशिव का सान्निध्य प्राप्त करने की चेष्टा में व्यतीत होते हैं। एकान्त मनन और चिन्तन के लिए व्यक्ति नगर के कोलाहल से बाहर निवास करे। नागरिक तथा शासक उससे परामर्श के लिये यदाकदा उस तक जा सकते हैं। एक ओर दार्शनिक की सामाजिक एवं सांसारिक जीवन के प्रति स्वाभाविक विरक्ति दूसरी ओर उससे शासन आदि कार्यों में भाग लेने का आग्रह, प्लेटो का यह ऐसा विरोधाभास है, जिसका समाधान सरल नहीं।

जिस प्रकार अन्तःकरण तथा समाज को प्लेटो ने तीन भागों में बांटा, वैसे ही शिक्षा को भी प्रमुख तीन चरणों में विभक्त किया। इन चरणों में केवल अन्तःकरण की प्रतिकृति मात्र नहीं है, उसमें अवस्थाजन्य विशेषताओं का विकास-क्रम भी है तथा शिक्षा उस क्रम के अनुसार बदलती चलती है। पहली अवस्था में लिखना, पढ़ना, साधारण गणित के अतिरिक्त संगीत तथा साहित्य की प्रधानता रहेगी। उसके साथ व्यायाम तथा स्वास्थ्य-साधना होगी।

इसके उपरान्त अठारह से बीस वर्ष की आयु तक, दो वर्ष सैन्य-शिक्षा का विधान किया गया। अन्त में उच्च शिक्षा के लिये दस वर्ष, अर्थात् बीस से तीस की आयु तक, रक्खे गये। किंतु उच्च शिक्षा का अन्त यहीं नहीं हो जाता, दार्शनिक शासक को पांच वर्ष पुनः गहन दार्शनिक अध्ययन में व्यतीत करने होंगे। पैंतीस से पचास वर्ष की उम्र तक वे राजकीय सेवा में लगेंगे और इस बीच उनकी लगातार परीक्षा होती रहेगी। इनमें खरे उतरने पर यह सर्व-तंत्रस्वतंत्र दार्शनिक शासक होंगे, जो इच्छानुसार चिन्तन अथवा कभी-कभी राज्य-सेवा में अपना समय लगायेंगे।

प्लेटो ने व्यक्ति के पूर्ण उत्कर्ष तथा राजनैतिक जीवन के बीच की विषमता जीवन की अंतिम अवस्था में ही अनुभव की, तथापि वह समाज-सेवा को ही प्रमुखता देता रहा। समाज के उच्चतम दो वर्ग राज्य एवं समाज की सेवा में उत्सर्ग कर दिये गये, तथा समाज के अन्य वर्ग उनकी सुविधा के अनुसार नियंत्रित किये गये। शिक्षा की योजना में केवल उच्च दो वर्गों पर ही प्लेटो ने विचार किया है, अन्य व्यक्तियों को वह शिक्षाहीन रखकर भी सदाचार एवं सामाजिक न्याय की आशा कर सका।

व्यायाम तथा स्वास्थ्यसाधन में प्लेटो ने अपने समय के प्रचलित पहलवानी तथा स्पार्टा के अभ्यास की भर्त्सना की। वह शरीर को बहुत कसरत लगाकर मोटा-तगड़ा बना देने को ही स्वास्थ्य नहीं कहता था। जो शरीर अधिक सहनशील तथा निरोग एवं स्फूर्तिवान है, वस्तुतः वही स्वस्थ है। इसके लिए उसे कहीं दूर जाकर उदाहरण नहीं लाना था, स्वयं उसके गुरु साक्रेटीज का शरीर इन गुणों से युक्त था। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी विचारों में वह पायथागोरसी पद्धतिसे भी प्रभावित था। जिस प्रकार क्रोटन के क्लब में भोजन पर नियंत्रण करके तथा जड़ी-

बूटियों एवं साधना-संयम से शरीर को निरोग और स्वस्थ रखने का यत्न किया जाता था, प्रायः वैसी ही प्रणाली का प्रतिपादन वह अपनी 'रिपब्लिक' में करता पाया जाता है।

यद्यपि उसने शिक्षा को प्रारंभ में दो प्रकार की बताया, शारीरिक शिक्षा तथा बौद्धिक शिक्षा। किंतु आगे चलकर अपने विचारों में सुधार करते हुए उसने कहा कि शरीर की शिक्षा का लक्ष्य भी बुद्धि तथा अंतःकरण ही है। व्यायाम के अनेक अभ्यास, रहन-सहन की कठोरता तथा खान-पान की साधना द्वारा धीरता, साहस और कष्ट झेलने की शक्ति उत्पन्न करना ही ध्येय है। इस प्रकार सम्पूर्ण शिक्षा अन्तःकरण के ही संस्कार के लिये थी। सभी अवस्थाओं में, सभी बौद्धिक स्तरों पर, परमशिव की ही ओर उन्मुख करना यद्यपि प्रयोजन हैं, किंतु शिक्षार्थी की अवस्था एवं योग्यता के विचार से शिक्षा का तात्कालिक लक्ष्य बदलता रहता है। सबसे पहले तो सदाचार, जो किसी न किसी प्रकार का अनुशासन ही है, सभी स्तरों पर साधना का विषय है। बालकों तथा किशोरों के संमुख वह बड़ों के प्रति आदर भाव तथा साथियों के प्रति भ्रातृभाव के रूप में आचरणीय है। दूसरी अवस्था में आत्मसंयम ही सदाचार की प्रमुख बात होती है तथा अन्त में सत्य का आचरण, जब कि स्वविवेक प्रबुद्ध हो जाता है, सदाचार को मुक्त रूप दे देता है। आत्म-नियंत्रण स्वभाव बनकर बाहरी नियंत्रण-विहीनता की अवस्था का अनुभव दिलाने लगता है।

शिक्षा के प्रथम चरण में भावना एवं कल्पना के संस्कार पर अधिक जोर दिया जाता है, क्योंकि उस समय बालक का अंतःकरण अत्यन्त रुपग्राही होता है। इसके लिये कथा-कहानियों का आश्रय लेने की परामर्श प्लेटो ने दी है। किन्तु इस साधन के प्रयोग में बड़ी सतर्कता तथा पौराणिक कथाओं में बड़ी कांट-छांट की

आवश्यकता बताई गई है। इस मामले में प्लेटो ने महाकवि होमर तथा हेसिअड को भी नहीं छोड़ा तथा उनकी अनेक रचनाओं को भ्रष्टाचार फैलानेवाली बताया। इन कवियों ने जो देवताओं के समाज में समाजविरोधी एवं दुराचारपूर्ण अभ्यास का उल्लेख किया है, उसे प्लेटो अनुचित मानता है।

पुराण-गाथाओं के सम्बंध में प्लेटो का मत अत्यन्त मौलिक है। वह नहीं मानता कि देवता वास्तविक हैं, यद्यपि उनकी कथाओं को वह उपयोगी बनाने के पक्ष में है। वह कहता है कि वे असत्य हो कर भी उपयोगी हो सकती हैं। यह बात यूनानी परम्परा तथा आदर्शवादी परम्परा से मेल खाती नहीं दिखाई देती।

जिस प्रकार पुराणों में, वैसे ही साहित्य एवं संगीत में भी वह बड़ी कांट-छांट करके वैविध्य समाप्त कर देने के पक्ष में था। वह स्वीकार करता था कि मानव-चरित्र के निर्माण में काव्य और संगीत प्रबल शक्तियां हैं। वह कहता था 'मुझे किसी देश के लिये काव्य-रचना की अनुमति दे दो, फिर मैं परवाह नहीं करता वहां का कानून कौन गढ़ता है।' किसी समाज का जीवन बनाने वाली शक्ति साहित्य-संगीत में ही प्रधान रूप से है। प्लेटो आत्मा में अनुशीलन गुण को प्रधान मानता था। आत्मा जिस परिस्थिति के सम्पर्क में आती है सहज ही वैसी बन जाना चाहती है। इसलिये समाज-नियंत्रक को साहित्य-संगीत ही नहीं समाज की समस्त परिस्थितियों पर नियंत्रण करना चाहिये। किसी ऐसी वस्तु को समाज में स्थान देना उचित नहीं, जो व्यक्ति का अपने अन्तःकरण पर अधिकार शिथिल कर दे। वह तो बहुत हंसाने या रुलाने वाली बातों को भी अपने आदर्श राज्य से बहिष्कृत कर देता है। सर्वत्र सादगी और सुरुचि ही है, जो मनुष्य के उत्थान में, सदाचरण एवं आत्म-संयम में सहायक हो सकती है।

संगीत में, वह अनेक राग रागनियों को नष्ट कर केवल कुछ, जो महाकाव्य के उदात्त चरित्रों के वर्णन में प्रयुक्त होती हैं, जीवित छोड़ना चाहता है। वाद्य यंत्र भी केवल वही रहें जो गंभीरता उत्पन्न करने वाले हों। स्वयं अपने संवादों में सभी प्रकार के चरित्रों का चित्रण करने वाला प्लेटो केवल उदात्त पात्रों के अंग ही दूसरे कवियों के नाटकों में छोड़ सकता था। प्रहसन तथा 'ट्रेजेडी' तो आदर्श राज्य में वह क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता था*। बहुमुखी प्रतिभायुक्त यदि कोई व्यक्ति उसके राज्य में आता है, तो प्लेटो उसे सादर एवं सम्मानपूर्वक राज्य की सीमा तक पहुंचा आयेगा कि वह किसी अन्य राज्य में चला जाय। आदर्श व्यवस्था में तो काव्य, कला, संगीत सभी एक लक्ष्य की ओर संकेत करने वाले हों, एक ही कोटि की समस्त रचनायें हों। बहुमुखी प्रतिभा को लेकर वह क्या करे, जब व्यक्ति ने 'एक के लिये एक काम' का सिद्धान्त सब प्रकार से वरण कर लिया।

संगीत का एक और भी शैक्षिक महत्व है। प्लेटो, पायथागोरसी अभ्यास की भांति, स्वीकार करता था कि संगीत अन्तःकरण को रुपबद्ध करने में एक समर्थ साधन है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए पायथोगोरसी अनुयायी संगीत का प्रयोग करते थे, जिसके स्वर गणित-सिद्ध तालयुक्त होते थे। प्लेटो इस सम्बन्ध में भी, जैसे दूसरी अनेक बातों में, पायथागोरसी था। संगीत का प्रभाव सीधे आत्मा पर पड़ने के कारण ही इस पर और अधिक नियंत्रण की आवश्यकता दार्शनिक ने अनुभव की। अवश्य ही ललित कलाओं के प्रति घोर शल्य-कर्म जो प्लेटो ने किये, उसके लिये उसे अपना कितना दमन करना पड़ा होगा, क्यों कि वह स्वयं कोई साधारण कलाकार नहीं था।

* नाटकीय प्रहसन की अनुमति 'लॉज' में प्लेटो ने दे दी थी।

उच्च शिक्षा का जो रूप प्लेटो ने प्रस्तुत किया, वह प्रचलित ढंग का ही परिष्करण था। धनाढ्य व्यक्तियों के किशोर साफिस्टों से शिक्षा खरीद लेते थे, किन्तु प्लेटो उसे प्राप्त करने के लिये धन-सम्पन्नता को कोई योग्यता नहीं मानता था। उसकी व्यवस्था में केवल बौद्धिक योग्यतासम्पन्न व्यक्ति ही उच्च शिक्षा में पदार्पण कर सकेंगे जिसका आरंभ गणित से किया जाता है। प्रारंभिक शिक्षा में सभी दिशाओं से व्यक्ति को अधिकतम समाजोपयोगी बनने के लिये प्रोत्साहित किया जाता था। उसे विनयशीलता का मुख्य पाठ पढ़ाया जाता था। अनुशासनहीनता उसका सबसे बड़ा गुनाह था। किंतु उच्च शिक्षा बाह्य नियंत्रणों को शिथिल कर देती है। यहां आत्मोत्थान तथा समाज-सेवा का घोर संघर्ष दिखाई पड़ता है, क्योंकि आत्मोत्थान की आवश्यकता को भी प्लेटो ठुकरा नहीं सका। प्रारंभिक अवस्था में प्लेटो ने राजकीय पदों पर नियुक्ति के लिये बौद्धिक एवं चारित्रिक योग्यता से अधिक देश-प्रेम को महत्व दिया; किन्तु आगे चल कर, उच्च शिक्षा में जब चुनाव करने के लिये उसने नियम निर्धारित किये तो उसमें बौद्धिक सामर्थ्य एवं चारित्रिक महत्ता को प्रधानता दी, वहां देश-प्रेम इन गुणों के प्रभाव में कुछ व्यापक और इसीलिए सूक्ष्म हो गया।

गणित की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन से मस्तिष्क स्थल अस्तित्व से ऊपर उठ कर सूक्ष्म तत्वों के दर्शन का अभ्यास करता है। प्लेटो गणित की शिक्षा को क्या स्थान देता था इसी से प्रगट है कि उसके विद्यालय में केवल वे ही प्रवेश करने की आज्ञा पाते थे जो गणित से परिचित होते थे। अर्नेस्ट बार्कर का कहना है कि यूनान के इतिहास में प्लेटो का युग गणित की उन्नति के लिए विशेष उल्लेखनीय था। 'थेलस से लेकर, जिसने छठी शताब्दी के प्रारंभ में, ज्यामिति की पहली थ्योरेम का अविष्कार

किया, दूसरी शताब्दी में ट्रिगनामिटरी के जन्मदाता हिफारकस तक, गणित का अविच्छिन्न विकास देखा जा सकता है। इन बातों का विचार करके, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सम्पूर्ण उच्च अध्ययन के लिये प्लेटो ने गणित को प्राथमिकता दे दी। इसके अतिरिक्त प्लेटो पायथागोरसी दर्शन के प्रभाव में भी था, जिसके अनुसार सम्पूर्ण अस्तित्व का सार केवल गणित थी।'

उच्च शिक्षा के प्रथम चरण में, बीस से तीस तक की अवस्था के दस वर्ष व्यय करने का परामर्श प्लेटो ने दिया। इसके उपरान्त पांच वर्ष अत्यन्त सूक्ष्म दार्शनिक अध्ययन प्रमाण शास्त्र (डायलैक्टिक) में लगाना चाहिये। अन्त में पन्द्रह वर्ष की राज्य-सेवा करके दार्शनिक एकान्त चिन्तन के लिए मुक्त हो सकता है।

उच्च शिक्षा के दस वर्षीय अध्ययन में गणित की विविध शाखाओं के पृथक-पृथक अध्ययन से पूर्ण सत्य का केवल खण्ड-दर्शन ही संभव हो सकता है। आगामी पांच वर्ष की दार्शनिक शिक्षा में उसका संश्लेषण होगा तथा सत्य की पूर्णता का आभास हो सकेगा। डायलैक्टिक की शिक्षा से दार्शनिक के लिए परमशिव का साक्षात्कार संभव हो सकेगा और वह साधना की आखिरी मंजिल पर खड़ा अपने को पायेगा। इस स्थिति के लोग यद्यपि अपना अधिकांश समय चिन्तन एवं विचार-मंथन में ही व्यय करेंगे, किंतु राज्य की उच्चतम परिषद के सदस्य के रुप में वे राज्य-शासन में भी भाग लेंगे।

आदर्श राज्य का शासन परिषद द्वारा संचालित होकर 'कुलीन-

---

* प्रो० कार्नफोर्ड के अनुसार प्लेटो समस्त संख्या तथा गणित को 'एक ही उद्गम' से निसृत मानता था। देखिये रिपब्लिक का कार्नफोर्ड अनुवाद पृष्ठ २४५।

तंत्र' अथवा किसी दार्शनिक शासक का एकराट्-नियंत्रण होकर 'राजतंत्र' भी कहा जा सकता है। किंतु दोनों ही अवस्थाओं में वह लिपिबद्ध विधान के नियंत्रण से मुक्त होगा। व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की स्वेच्छा का शासन ही आदर्श राज्य पर होगा। किंतु इसे 'स्वेच्छा' कहना न्याय नहीं कहा जा सकता, जब कि शासक शासन सम्हालने से पहले कठोर प्रक्रिया के द्वारा संस्कृत किया जा चुका है तथा देश के कानून का साकार रूप बन चुका है। इसलिये यूनानियों में अत्यन्त अप्रिय तथा बदनाम एकतंत्र-प्रणाली में प्लेटो अपने राज्य की गणना नहीं करना चाहता। उसके आदर्श में विरोधाभास है, जिसे वह भलीभांति जानता है; क्योंकि किसी यूनानी के लिए यह विरोधाभास की ही बात है कि राज्य एकतंत्र में सुशासित हो।

समाजीकरण : किस लिए ?

समाज में न्याय की स्थापना के लिये प्लेटो ने शिक्षा का आयोजन किया। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के अन्तःकरण को ऐसी रुप-रेखा में ढाला गया कि वह आदर्श समाज का सदस्य बन सके। पुनः उसे अपना लक्ष्य पाने में सामाजिक परिस्थितियों के कारण बाधाओं का सामना न करना पड़े, उसका मार्ग अधिक सरल तथा लक्ष्य अधिक सुलभ हो सके, इस विचार से समाजीकरण की व्यवस्था दी गयी। समय का कुछ अंश-मात्र सार्वजनिक जीवन के रूप में व्यतीत किया जाय; शेष पृथक, एकाकी, संकीर्ण एवम् स्वार्थमय घरेलू जीवन में बीते, यह न्याय की अवस्था नहीं हो सकती। न्याय की अवस्था पूर्णतया सम्पन्न हो, इसके लिये व्यक्ति के चारों ओर घिरी हुई कौटुम्बिक परिधि ध्वस्त करना पड़ेगी। प्लेटो में साहस था और उसने इसका प्रस्ताव करने में संकोच नहीं किया; प्रस्ताव का स्वागत होगा यह भी

उसे आशा नहीं थी। उसने निजी संपत्ति ही नहीं, स्त्रियों का भी समाजीकरण किया। इसमें सन्देह नहीं, कामिनी और कांचन के लिये मनुष्य समाज की कितनी अवहेलना नहीं करता। तो सामाजिक विकास के पथ से इन्हें हटा ही क्यों न दिया जाय? यही किया प्लेटो ने समाजीकरण के द्वारा।

दार्शनिक शासक की आवश्यकता 'रिपब्लिक' में पहले ही सिद्ध की जा चुकी है। यदि समाज के उद्धार के लिये ज्ञान की आवश्यकता है तो 'दार्शनिक को शासक बनाइये अथवा शासक ही दार्शनिक हो जांय!' समाज के संचालन-सूत्र ज्ञानवान के हाथ आना चाहिये, तभी यह कहा जा सकेगा कि समाज का जीवन व्यक्ति को पूर्ण उत्कर्ष का अवसर प्रदान करता है। दर्शन द्वारा शासित समाज में यह जानना कठिन न होगा कि पूर्णतया समाजीकृत जीवन ही, व्यक्ति का चरम विकास है। प्रो० नेटिलशिप के शब्दों में, 'उसके (प्लेटो के) विचार से जीवन में सभी दुष्कर्मों का उदय स्वार्थ से होता है। स्वार्थ का अर्थ है अपनी तृप्ति को अनुचित विधि से प्राप्त करने का यत्न करना, अपने स्वभाव के उच्च स्तर पर पाने के बजाय निम्न स्तर पर उसे खोजना।' यही दिशा मानव-अन्तःकरण में संकीर्ण निजत्व की भावना पैदा कर देता है और उस समय व्यक्ति निजी सम्पत्ति, निजी कुटुम्ब तथा जो कुछ निजी है, समाज से पृथक, उस सबके कल्याण की चिन्ता में पड़ जाता है और उस समय उसके संमुख 'निज' समाज से भी बढ़कर हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं मानव-जीवन की यह अधोगति ही है। व्यक्ति की तृप्ति के लिये समाज की बलि हो जाना मानव-कल्याण की बात नहीं कही जा सकती। प्लेटो ने इससे उद्धार पाने का उपाय रक्खा। उसने व्यक्ति को समाज के लिये बलिदान नहीं कर डाला, जैसा बहुधा लोगों की

धारणा हो सकती है। उसने समाज और व्यक्ति के बीच विरोधाभास का ही अन्त कर देने की चेष्टा की। उसके अनुसार व्यक्ति और समाज का कल्याण एक ही दिशा में है। एक के उत्कर्ष में दूसरे का भी उत्थान निहित है। इसीलिये उसका आदर्श समाज वैयक्तिक अन्तःकरण की रचना की प्रतिकृति के रूप में रखा गया। इसीलिये समाज को उत्कृष्ट बनाने के लिए, उत्कृष्ट व्यक्ति के अन्तःकरण की भांति, विवेक द्वारा उसका शासित होना आवश्यक माना गया।

यदि व्यक्ति और समाज में विरोधाभास नहीं, दोनों एक ही पथ के पथिक हैं, तो 'निज' की पृथकता की आवश्यकता ही क्या? विवेक-शासित अन्तःकरण में इसकी कामना नहीं उठती, यह तो समाज की दुर्व्यवस्था है, जिसे पाकर तथा जिससे प्रभावित होकर विवेकवान व्यक्ति 'निज' का हितसाधन पृथक मानने लगते हैं, अन्यथा जीवन में प्रत्येक अंग का पूर्ण समाजीकरण ही उनके स्वभावानुकूल है। समाजीकरण बंधन के रूप में न हो, व्यक्ति के अन्तःकरण तथा उसके व्यक्तित्व का दमन न हो, यह भी एक कारण हो सकता है जिससे प्लेटो ने समाज के वासनाप्रधान वर्ग को समाजीकरण-व्यवस्था से बाहर ही रखा। यह केवल दार्शनिक शासकों तथा रक्षक-वर्ग के ही लिये हैं कि वे कौटुम्बिक जीवन तथा निजी सम्पत्ति से मुक्त होकर किसी प्रकार की कमी, मजबूरी अथवा अन्तःक्षोभ का अनुभव नहीं करेंगे। वे यह समझ सकेंगे कि सबसे उत्तम जीवन समाजीकृत जीवन है। 'समाज में खोकर ही मनुष्य अपने आपको पाता है।'

समाजीकरण न केवल आध्यात्मिक आधार पर स्थित किया गया, व्यवहारिक अनुभव ने भी इसे आवश्यक बताया। प्लेटो ने देखा कि राजनैतिक एवं आर्थिक शक्तियों का मिलन समाज के लिये

सर्वदा घातक हुआ है। अतएव उसने इन दोनों को पृथक करने के विचार से शासक एवं रक्षक-वर्ग के लिये सम्पत्तिहीन जीवन का प्रस्ताव रक्खा। आजकल तो आर्थिक शक्ति को प्रमुखता देकर राजनीति को उसकी अनुचरी माना जाता है; किंतु प्लेटो की दृष्टि में राजनैतिक सत्ता ही प्रधान होना चाहिये, अर्थ-शक्ति उसके संकेत पर चले। इसके पीछे आध्यात्मिक एवं भौतिक दृष्टिकोण छिपे हैं, जो सम्पूर्ण जीवन के प्रति पृथक-पृथक मान्यतायें प्रस्तुत करते हैं।

समाजीकरण : नया नहीं

यूनान के लिये समाजीकरण नई तथा अपरिचित वस्तु नहीं थी। कम से कम साम्पत्तिक समाजीकरण के अनेक उदाहरण मिल सकते थे। एथेंस के निकट ही स्पार्टा में सहभोज प्रणाली तथा उत्तम संतान के लिये अपने पति के अतिरिक्त पुरुष से सहवास की स्वतंत्रता प्रचलित थी ही। वहां मित्रों के घोड़े तथा अन्य उपभोग्य सामग्री का इस्तेमाल निस्संकोचभाव से करने का रिवाज था। इस तरह वहां वैयक्तिक स्वामित्व तथा सामाजिक उपभोग का चलन था, जिसका उल्लेख और प्रशंसा अरिस्टाटिल ने भी की। क्रीट के डोरियाई निवासियों में समाजीकरण और भी अधिक व्यापक था। स्वयं यूनान में ही, स्थिर नागरिक जीवन में प्रवेश करने के बाद भूमि का स्वामित्व सार्वजनिक था। उपज कुटुम्बों में विभक्त हो जाया करती थी। इतिहास के प्रवाह में जब यह स्वामित्व व्यक्तियों के हाथ में चला गया और कहीं कम तथा कहीं ज्यादा जमीन पहुंच गई तो पुनः वितरण के प्रश्न भी उठे। प्लेटो के समय में वैयक्तिक स्वामित्व की प्रथा ही एथेंस में प्रचलित थी। उसके दोषों का नंगनाच वह स्वयं देख रहा था। किंतु वैयक्तिक स्वामित्व के साथ-साथ एथेंस में वैयक्तिक सम्पत्ति पर राजकीय

नियंत्रण भी रहता था। प्लेटो ने केवल उसे अधिक दृढ़ तथा विस्तृत करने की आवश्यकता अनुभव की।

प्लेटो पर पायथागोरसी प्रभाव गहरा था और पायथागोरसी शिक्षा-केन्द्र में समाजीकृत जीवन का प्रचलन था। वहाँ तो यह कहावत ही थी कि 'मित्र की वस्तु सबकी है।' प्रत्येक पायथागोरसी साधक सहभोज तथा सहस्वामित्व का अभ्यास करता था और इस प्रकार अपने आध्यात्मिक परिष्कार की चेष्टा करता था। प्लेटो ने जो जीवन-प्रणाली 'रिपब्लिक' के शासकों तथा रक्षकों के निमित्त निश्चित की वह इससे बहुत मिलती जुलती थी। 'रिपब्लिक' में उसने उपरोक्त पायथागोरसी कहावत का उल्लेख भी किया है।

समाजीकरण की ओर मनुष्य के प्राकृतिक एवं प्रागैतिहासिक जीवन से भी प्लेटो को संकेत मिला होगा। उस अवस्था में विवाह तथा निजीसम्पति की व्यवस्था अत्यन्त शिथिल अथवा नहीं के समान होती है। इस दशा में जीवनयापन करने वाली अनेक अर्धसभ्य एवं असभ्य जातियों का उल्लेख प्राचीन यूनान के इतिहासकारों ने किया है, जिससे अपनी योजना की संभाव्यता पर प्लेटो की आस्था बढ़ी ही होगी।

प्लेटो का समाजीकरण

प्लेटो की समाजीकरण-व्यवस्था केवल प्रथम दो वर्गों के लिये है। तीसरा वर्ग, जिसका सम्बंध धनोपार्जन तथा उत्पादन से है, वह निजी सम्पत्ति रख सकता है और कुटुम्ब भी। इसके अन्तःकरण में 'सोना' और 'चांदी' का अभाव है तो वह बाहरी सोना-चांदी रख ले। किंतु प्रथम दो कोटि के व्यक्ति के भीतर ही यह बहुमूल्य पदार्थ आध्यात्मिक रूपसे विद्यमान हैं। वे साम्प्रदायिक जीवन व्यतीत करें। बैरेकों में रहें, मिले-जुले उनके भण्डार तथा पाकशालायें हों,

जिनकी जिम्मेदारी उत्पादक वर्ग पर रहे। इस प्रकार भरण-पोषण मात्र की साधारण आवश्यकता के लिये शासक लोग अपनी सेवाओं के बदले में समाज से लें। उनके पास केवल एक वर्ष की आवश्यकता के लिये ही भंडार एकत्र हो, अधिक संचय से लोभ बढ़ने की संभावना है। उनके दाम्पत्य संबंध सरकार द्वारा नियंत्रित रहें, तथा सहवास-मात्र के लिये ही स्त्री-सामीप्य हो सके।

योग्यता के आधार पर शासक अथवा रक्षक का कार्य स्त्रियों को भी दिया जा सकता है। उनका जीवन तथा उनकी शिक्षा वैसी ही हो जिस प्रकार पुरुष-शासकों तथा रक्षकों की। प्लेटो स्त्री-पुरुष में कर्त्तव्य की दृष्टि से भेद नहीं मानता। स्त्रियां अपेक्षाकृत केवल निर्बल पुरुष ही हैं। यहां पर प्लेटो, अपने 'विशिष्ट योग्यता' एवं 'श्रम-विभाजन' सिद्धान्त के विरुद्ध कहता जान पड़ता है। वह अपने पक्षमें पशुओं का उदाहरण देता है जिनमें नर-मादा में प्रजनन के अतिरिक्त भेद नहीं रहता। मादा वैसे ही कार्य करती है जैसे नर। किंतु, पशु-समाज में कोई प्लेटो भी तो नहीं जन्मा, जो 'श्रम-विभाजन' तथा 'विशिष्ट योग्यता' के सिद्धान्तों पर अपने वर्ग के उद्धार की बात सोच सकता! अस्तु, कर्त्तव्य-क्षेत्र में प्लेटो नर-नारी के भेद-भाव को वैसे ही निरर्थक मानता है जैसे केश वाले तथा गंजे मोची का अंतर मोची-कर्म की दृष्टि से निरर्थक है। यही उदाहरण है जिससे उसने अपना मत पुष्ट किया। अर्ध-सभ्य व्यक्तियों के जीवन से तथा अगार्थिसियन जाति से प्लेटो को स्त्रियों के समाजीकरण का संकेत मिला। आगार्थिसियन का उल्लेख हेरोडोटस ने किया है जिनमें स्त्रियां पुरुषों से कंधा मिलाकर काम करती हैं। यूनान के भीतर स्पार्टा में ही स्त्रियां दाम्पत्य जीवनकी कठोरता में नहीं बंधी थी। इसके अतिरिक्त गुरु साक्रेटीज भी स्त्रियों तथा पुरुषों के भेद को अधिक गहरा नहीं मानता था। ऐसी

अवस्था में स्त्रियों को, जैसी की यूनान में प्रथा थी, घर की चहारदीवारी में बन्द करके राष्ट्र की पचास प्रतिशत जनशक्ति नष्ट की जा रही थी। प्लेटो ने उसका उद्धार करने के लिये स्त्रियों का समाजीकरण करना चाहा। किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्लेटो स्त्रियों को वंचित समझ कर उनके अधिकारों के लिये आन्दोलित हो उठा था। उसने कर्त्तव्यच्युत स्त्रियों को कर्त्तव्यारुढ़ करना चाहा, उन्हें अकर्मण्यता के जीवन से निकाल घोर कर्ममय जीवन में लाने का यत्न किया। इस प्रकार अर्नेस्ट बार्कर की यह उक्ति बड़ी उपयुक्त है कि प्लेटो ने गृहस्थ जीवन का उन्मूलन नहीं किया, बल्कि उसे विस्तृत कर दिया, जिससे बाहर का स्वच्छ वायु अवरुद्ध वातावरण को शुद्ध करता रहे। इस प्रकार स्त्रियों का समाजीकरण करके प्लेटो ने शासक-रक्षक वर्ग को कामिनी-कांचन मोह से बहुत-कुछ छुटकारा दिलाया। बहुत बड़ी जन-शक्ति राष्ट्र-सेवा के लिये सुलभ कर दी।

इसके अतिरिक्त एक और भी बड़ी बात, प्लेटो ने इससे सिद्ध की। उसका विचार था कि शिक्षा का कार्य गर्भाधान के समय से ही आरंभ हो जाता है। अर्थात् बालक के स्वभाव पर गर्भावस्था से ही नियंत्रण किया जा सकता है। इसके साथ-साथ, जिस प्रकार पशुओं की नस्ल सुधारने के उपाय किये जाते हैं, वैसे ही मनुष्य की नस्ल को भी उचित उपायों द्वारा उन्नत किया जा सकता है। उसने रिपब्लिक में सुझाव दिया है कि उचित ऋतु में स्त्री-पुरुष समागम करें तथा श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा अधिक से अधिक स्त्रियों का गर्भाधान कराया जाय। इसी प्रकार से कई उपाय उसने बताये जिससे श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न की जानी चाहिये। इस पर भी यदि कोई संतान निकृष्ट निकले तो, उसे या तो मौत के घाट उतार दिया जाय अथवा समाज के निम्न वर्ग में उपयुक्त स्थान दे दिया

जाय। इन दो में प्लेटो का अन्तिम मत क्या था, अनिश्चित है। बालकों की जन्म-संख्या भी नियंत्रित करनी थी, जिससे केवल उतने ही बालक रहें जितने शासक-वर्ग को आवश्यक हैं।

बालक राजकीय देख भाल में पाले-पोसे जाय। इसके अतिरिक्त प्रो० नेटिलशिप के शब्दों में 'संगठित षडयंत्र' के द्वारा माता-पिता तथा पुत्र, यह सब एक दूसरे से अपरिचित ही रक्खे जांय, जिससे उनकी राष्ट्रभक्ति का एक भी परमाणु वात्सल्य में न परिणत हो सके। वे अपने संपूर्ण अस्तित्व से समाज की सेवा में लग सकें। दाम्पत्य संबंध तथा वात्सल्य सम्बंध के लिये प्लेटो ने जो भावहीनता एवं कठोरता का उदाहरण दिया है वह उसके जैसे कलाकार के द्वारा बन पड़ना न केवल आश्चर्य की बात है, सराहना की भी बात है कि उसने दार्शनिक एवं तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचने में किस दृढ़ता से काम लिया। यहां पर वह घोर उपयोगितावादी दिखाई पड़ता है। वैसा ही साहसी भी, क्यों कि वह मानव-अन्तःकरण के एक अत्यन्त प्रबल एवं वेगवान अवयव पर निर्णय कर रहा है।

प्लेटो के समाजीकरण के प्रसंग में उसकी आधुनिक समाजवाद से तुलना करना स्वाभाविक ही है। तुलना में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं—

आधुनिक समाजवाद में स्त्रियों के समाजीकरण की व्यवस्था नहीं है।

आधुनिक समाजवाद पूरे समाज पर लागू होता है। प्लेटो की भांति वह केवल शासक-रक्षक वर्ग तक ही सीमित नहीं।

प्लेटो का समाजवाद आध्यात्मिक आवश्यकता से उद्भूत हुआ था। किंतु आधुनिक समाजवाद में इसका प्रश्न नहीं। इसकी समस्या आर्थिक है।

प्लेटो का समाजवाद कर्त्तव्य करने में अधिक सुविधा देने के विचार से बनाया गया था। आधुनिक समाजवाद अर्थ-वितरण की सुविधा के लिए है।

प्लेटो के समाजवाद में सम्पन्न वर्ग को अर्थविहीन करने की योजना थी। आधुनिक समाजवाद अर्थ विहीनों को सम्पन्न करने का यत्न है। पहला तप-प्रधान तथा दूसरा भोग-प्रधान है।

प्लेटो के समाजवाद में राजनैतिक सत्ता को आर्थिक मलिनता से बचाने की कोशिश की गई और पहले को केन्द्रीभूत कर दिया गया, किंतु आधुनिक समाजवाद में दोनों एक साथ ही विकेन्द्रित किये जाते हैं।

प्लेटो के समाजवाद में शासक वर्ग अपनी विशिष्ट योग्यता के कारण शासन का अधिकारी है, किंतु आधुनिक समाजवाद शासन की सार्वभौम सत्ता जनवर्ग के हाथ में देता है, तथा इसके लिए विशिष्ट योग्यता अपेक्षित नहीं मानी जाती।

यद्यपि दोनों समाजवाद राष्ट्र की एकता के लिए उपाय करते हैं, किंतु प्लेटो वर्गगत समाज के द्वारा तथा दूसरा वर्गहीन समाज स्थापित करके।

एक, मनुष्य में प्राकृतिक उच्चता-नीचता स्वीकार करता है तथा दूसरे में समस्त मानव-वर्ग में समानता स्वीकार की जाती है।

यद्यपि दोनों प्रकार के समाजवाद में स्वार्थपूर्ण प्रतिस्पर्धा का विरोध किया गया, किंतु प्लेटो इसे राजनैतिक शक्ति से करना चाहता था जब कि आधुनिक समाजवाद इसे आर्थिक उपायों से करना चाहता है।

दोनों प्रकार के समाजवाद एक ही लक्ष्य लेकर न्याय की स्थापना करना चाहते हैं। आधुनिक समाजवाद का आर्थिक वितरण समाज के प्रत्येक व्यक्ति से अन्ततोगत्वा अपने कर्त्तव्य को शक्ति-

भर पूरा करने की अपेक्षा रखता है, यही प्लेटो का न्याय है, जिसे वह आदि से अन्त तक कहता रहता है।

विवेचन

एक तीक्ष्ण आलोचक के लिये प्लेटो की रचनाओं को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। स्वयं उसके शिष्य में ही वह विद्यमान था। 'पालिटिक्स' की दूसरी पुस्तक में अरिस्टाटिल ने प्लेटो के समाजीकरण की धज्जियां उड़ाने की कोशिश की। सबसे पहले तो उसने एकता का प्रश्न लिया। राज्य का सबसे बड़ा हित एकता में है। प्लेटो ने समाज तथा राज्य में परिवर्तन करने में कहीं हिचक अनुभव नहीं की, यदि वह परिवर्तन राज्य की एकता का संवर्धक उसे जान पड़ा। समाज में विषमता का बहिष्कार करके पूरी-पूरी एकता स्थापित करने के लिए उसने समाज को वर्गों में विभक्त किया और प्रत्येक वर्ग के लिये कठोर नियम तथा शिक्षा की व्यवस्था की। उसने एकता लाने के लिए गृहस्थ जीवन निर्मूल कर डाला और सन्तान के माता-पिता अज्ञात रखने का राष्ट्रीय पैमाने पर 'संगठित षडयंत्र' रचा। इस प्रकार अत्यधिक एकता लाना अरिस्टाटिल को उचित नहीं लगा। वह कहता है, इस तरह से राज्य कुटम्ब में, तथा और अधिक एकता से व्यक्ति में बदल जायगा।

इस संबंध में प्रो० अर्नेस्ट बार्कर कहते हैं कि प्लेटो एक राजनैतिक रहस्यवादी है......। एक रहस्यवादी की ही भांति वह साधक एवं साध्य को एकाकार कर देता है—शासक एवं राज्य को भी, किंतु प्रयास में ही उनकी एकता विलुप्त होने लगती है। ..... अन्ततः एकता साध्य नहीं, साधन ही है। यह गुण सामुहिक जीवन में आवश्यक है जिससे वह अपना लक्ष्य सिद्ध कर सके।* किन्तु राज्य न व्यक्ति है न कुटुम्ब, उसका अपना स्वरूप है। वह सहयोग के सूत्र से निर्मित हुआ है। यह सहयोग विविध रूपात्मक

*अ० बार्करकृत 'ग्रीक पोलिटिकल थ्योरी' पृष्ठ २३७।

अवयवों के बीच होता है। उन्हें एकता में अत्यधिक जकड़ने से राष्ट्रजीवन अवरुद्ध हो कर रह जायगा।

राष्ट्र को एकता की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं होती जितनी आत्मनिर्भरता की और यह नष्ट हो जायगी उस एकता में जिसका विधान प्लेटो ने किया है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्र में कौटुम्बिक एकता लाने के लिये शिशु-पालन की जो व्यवस्था उसने की है, उससे शिशुओं की हानि होगी। जिस बालक के एक हजार पिता होंगे वह केवल १/१००० अंश वात्सल्य पा सकेगा। सभी उसकी उपेक्षा करेंगे, और अपना पूरा स्नेह तथा पूरी चिन्ता उसे कोई भी नहीं दे सकेगा। वस्तुतः प्लेटो के आदर्श राज्य में 'पुत्र होने की अपेक्षा किसी का अपना भतीजा होना अधिक अच्छा है।' स्त्री तथा संतान के समाजीकरण से न केवल राज्य के अन्दर अपराध बहुत अधिक बढ़ जायंगे, इसमें कई दूसरी कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ेगा। अरिस्टाटिल कहता है, सबसे पहले तो माता-पिता की गोपनीयता संभव नहीं हो सकेगी। संतान की मुखाकृति की समानता से माता-पिता का अनुमान बहुत कुछ लग जाया करेगा। इस संदिग्धावस्था से भी उपद्रव होंगे। यदि मुखाकृति के आधार पर पता नहीं भी चलेगा तो दूसरे प्रकार की बीभत्स घटनायें होंगी, क्योंकि प्लेटो ने कामोरविलास पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया। पिता-पुत्र अथवा भाई-भाई के बीच व्यभिचार होने का भय बना रहेगा। योग्यता के आधार पर बालकों का एक सामाजिक वर्ग से दूसरे में भेजना भी कोई सरल बात नहीं। एक तो इसका निश्चय कैसे हो, प्लेटो ने यही नहीं बताया, फिर निश्चय यदि हो भी जाय तो निम्नवर्ग से जो उच्च वर्ग में आयेगा उसके तो माता-पिता तथा सगे-संबंधी अज्ञात नहीं होंगे। इससे प्लेटो की व्यवस्था को धक्का ही पहुंचेगा।

इस सम्बन्ध में प्लेटो के विचारों ने अन्तरतम धारणाओं तथा विश्वासों का स्पर्श करके, विचारकों को एक प्रकार से चौंका सा दिया है। प्रो० नेटिलशिप के मत से स्त्रियों के नियंत्रण जैसे नाजुक काम को सौंपकर किसी का विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रजनन का नियंत्रण जिस प्रकार प्लेटो करना चाहता है, उसमें तो मनुष्य पशुवत् प्रतीत होने लगता है। इसमें सन्देह नहीं, स्त्री-पुरुष के संबंध की उपयोगिता चाहे केवल सन्तानोत्पत्ति मात्र हो, किन्तु प्रकृति ने उसे व्यक्तित्व का इतना प्रभावशाली अंग बना दिया है कि इसका कठोर नियंत्रण न केवल आपत्तियों से भरा हुआ है, बल्कि व्यक्तित्व पर कितने ही ऐसे असर डाल सकता है जो वस्तुतः अवांछनीय एवं घातक ठहरें। इसलिये, अच्छा तो यह होता कि कठोर नियंत्रण के स्थान पर, प्रजनन संबंधी ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार करके इच्छित परिणाम प्राप्त करने की चेष्टा की जाती।

गृहस्थ-जीवन विघटित करके प्लेटो विविध आलोचनाओं का लक्ष्य बना। अरिस्टाटिल के मत से उसने गृहस्थ जीवन को केवल शिशु के पालन-पोषण की ही दृष्टि से देखा। अवश्य ही, यह उसका बड़ा हेतु है। घर तो व्यक्ति के लिये विद्यालय के समान है, जिसमें उसका व्यक्तित्व निखरता है और व्यापक समाज में भाग लेने की तैयारी करता है। इस दृष्टि से प्लेटो ने घर तोड़कर राज्य को हानि पहुंचाई ही। इसके अतिरिक्त उसने उस परम सुख एवं स्निग्ध संबंधों की बलि कर डाली जो दम्पत्ति के बीच उत्पन्न हो जाते हैं। यह समझना उचित नहीं होगा कि दम्पति केवल यौन शान्ति के लिये ही मिलते हैं। उनके बीच प्रगाढ़ मित्रता एवं आध्यात्मिक संबंध स्थापित हो जाते हैं, जिनके अभाव में व्यक्तित्व के विकास में न्यूनता ही रह जाती है।

अरिस्टाटिल के मत से प्लेटो ने समाज के प्रथम दो वर्गों के

जीवन शुष्क एवं रसहीन बना डाले। पर, यदि प्लेटो की दृष्टि से देखा जाय तो रस किसी वस्तु में नहीं, लेने वाले के अन्तःकरण में रुचि के रूप में रहता है। दार्शनिक एवं रक्षक वर्ग स्वभावतः कामिनी-कांचन में रस नहीं लेंगे। प्लेटो की यह बात दार्शनिकों के सम्बन्ध में तो सार्थक प्रतीत होती है क्योंकि उनके ज्ञान-चक्षु खुल जाने पर संसार उन्हें सार-हीन एवं भ्रम हो लगेगा; किन्तु रक्षकों में उच्चकोटि के ज्ञान के अभाव में यह दृष्टिकोण संभव नहीं। उनमें केवल भावात्मक शिक्षा द्वारा ही जीवन के प्रति इतना गहन एवं मौलिक परिवर्तन करने का विचार उचित नहीं प्रतीत होता। समस्त ऐन्द्रिक सुखों की उपेक्षा करके जीवन को उच्च आदर्श के लिए निछावर कर डालने के कार्य भावात्मक आधार पर केवल क्षणिक हो सकते हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि प्लेटो राज्य का ढांचा, युद्ध के समान, स्नायविक तनावों के आधार पर निर्मित करना चाहता है।

शासक तथा रक्षक वर्ग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिये तृतीय वर्ग पर आश्रित होंगे। पहले दो वर्गों का आर्थिक वर्ग से केवल नियंत्रक-नियंत्रित का ही संबंध होगा, अन्यथा इसके जीवन का उन्हें कोई अनुभव न होगा। अरिस्टाटिल ठीक ही कहता है, कि ऐसी दशा में वे न तो आर्थिक वर्ग के प्रति कोई हमदर्दी रख सकेंगे और न नियंत्रण ही रख सकेंगे। उत्पादक एवं व्यवसायी वर्ग उद्दण्ड हो जायगा। क्योंकि वह बहुसंख्यक होगा तथा आर्थिक शक्ति से सम्पन्न होगा। उस समय स्थायी सैनिक शासन, स्पार्टा के ढंग का, आदर्श राज्य का भी हो जायगा। राज्य, जिसकी एकता के लिए प्लेटो ने इतने उपाय किये वह स्पष्टतः दो खण्डों में विभक्त हो जायगा। एक राज्य में दो राज्य होंगे। एक ऐसे लोगों का जो अर्थविहीन होंगे, दूसरा उनका जो अर्थसम्पन्न होंगे और दोनों के बीच होगी विषमता।

अरिस्टाटिल के विचार से, समाज में जो दोष निजी सम्पत्ति एंव कौटुम्बिक जीवन के साथ दिखाई देते हैं, उनके विषय में प्लेटो का यह कहना उचित नहीं कि ये ही उनके कारण हैं। समाज में बहुतेरे दोष तो केवल इस लिये हैं कि अनेक व्यक्ति जो स्वभावतः दुष्ट होते हैं समाज को विकृत बना देते हैं। इस प्रकार की तथा अन्य कारणों से उत्पन्न खराबियों का मूल कारण निजी सम्पत्ति तथा कौटुम्बिक जीवन को जो लोग मान बैठते हैं उसकी वजह है इनका सहअस्तित्व, कार्य-कारण सम्बंध नहीं। बहुधा देखा गया है कि दो घटनायें इस क्रम से घटित हो जाती हैं कि लोग उनमें कार्य-कारण देखने लगते हैं, जब कि होता वह भ्रम ही है। अरिस्टाटिल कहता है कि सम्पत्ति का स्वामित्व निजी ही रहना चाहिये, इस व्यवस्था के अभाव में अर्थ की उपेक्षा होगी और समाज में दरिद्रता बढ़ेगी। पर इसके साथ-साथ सम्पत्ति का उपभोग समाजीकृत रहे। यह व्यवस्था व्यक्ति में उच्च-भावनाएं तथा उदारता बढ़ाने वाली होगी। यह तो सामान्य अनुभव को बात है, कि हम अपने मित्रों के लिए खर्च करने में एक स्वाभाविक आनन्द प्राप्त करते हैं, किंतु समाजीकृति उत्पादन तथा स्वामित्व की दशा में हृदय इस प्रकार की भावनाओं से रिक्त ही रहेगा। मनुष्य का चारित्रिक एवं आध्यात्मिक स्तर नीचा हो जायगा। अतएव उचित प्रचलन एवं नियम की स्थापना के साथ निजी सम्पत्ति एवं कौटुम्बिक जीवन सर्वथा श्रेयस्कर हैं।

यह भी विचित्र बात है कि प्लेटो जिस आधार पर राज्य की श्रेयस्करता सिद्ध करना चाहता है, उस आधार के होते हुए भी निजी सम्पत्ति तथा कौटुम्बिक जीवन को वह विघटित कर देने के लिए तत्पर है। राज्य को वह मनुष्य के लिये स्वाभाविक एवं उसकी प्रकृति में स्थित तथा उसके अन्तःकरण से उद्भूत मानता है। इसलिये राज्य वरेण्य हैं, श्रेयस्कर है। किंतु यह बात तो समाज

की सभी संस्थाओं के विषय में कही जा सकती है। कौटुम्बिक जीवन तथा निजी सम्पत्ति भी मानव बुद्धि से ही उपजे हैं। फिर उन्हें क्यों नहीं, इस आधार पर वह श्रेयस्कर मानना चाहता।

'रिपब्लिक' की समाजीकरण व्यवस्था में नियंत्रण इतना व्यापक हो गया है, कि व्यक्ति के जीवन में कोई भी क्षण ऐसा नहीं मिलता जिसमें वह स्वतंत्र भाव से विचार कर सके तथा स्वेच्छा से अपना कार्य निर्धारित कर सके। राज्य का बहुसंख्यक जन-वर्ग न केवल दास एवं पशु जैसी निम्नावस्था में डाल दिया गया, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन तक ही नियंत्रण सीमित न कर, परम गोपनीय किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली आकर्षणों से सुदृढ़ स्त्री-पुरुष सम्बंध में भी कठोर नियंत्रण करके वस्तुतः मनुष्य को पशु ही बना डाला गया। इससे प्लेटो की रुचि में मनुष्य की अविकसित पुरातन वन्य स्थिति का आभास मिलता है। राज्य में आत्मीयता का अधिक विस्तार करके उसे कौटुम्बिक भावनाओं से ओत-प्रोत कर देने की उसकी अभिलाषा भी कबीले की जिन्दगी की याद दिलाती है, जिसमें सभी सदस्य एक दूसरे के भाई-बिरादरी ही होते हैं।

अनुपयोगी व्यक्तियों, रोगियों तथा नियम विरुद्ध उत्पन्न किये गये बालकों के वध कर डालने की व्यवस्था से प्रगट होता है कि प्लेटो मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था तथा अविकसित जीवन से कितना प्रभावित था। इस प्रभाव के वश में हो जाना ऐतिहासिक प्रवाह की अज्ञता ही प्रगट करता है। विद्वानों का मत है कि प्लेटो ने ऐतिहासिक ज्ञान से लाभ नहीं उठाया। घड़ी की सुई को उसने पीछे ढकेलने की कोशिश की।

आदर्श से पतन

आदर्श राज्य की व्यवहारिकता पर विद्वानों में विवाद हैं। इस विवाद के पक्ष केवल प्लेटो के आदर्श राज्य तक ही नहीं रह जाते।

वे किसी आदर्श के प्रति पृथक-पृथक दृष्टि-कोण की ओर संकेत करते हैं। जहां तक प्लेटो की बात है,प्रतीत होता है, आरम्भ में उसे अपनी रचना की व्यवहारिकता पर दृढ विश्वास था, जैसा कि उसके एक पत्र से भी प्रगट होता है। उस पत्र का कुछ अंश पीछे छठे अध्याय में उद्धृत कर दिया गया है। उसने अपने सिद्धान्तों का आधार जागतिक वास्तविकताओं को बनाया, अपने समय के राज्यों की शासन-प्रणाली का विवेचन तो 'रिपब्लिक' में ही उसने किया। शिक्षा की जो रुप-रेखा उसने अपने महान ग्रंथ में रक्खी, उसका व्यवहार यथासम्भव 'एकेडमी' म किया। यह सब होते हुए भी उसे इस बात पर संदेह नहीं था कि दो ही अवस्थाओं में उसका आदर्श पृथ्वी पर साकार हो सकता है: 'जब दार्शनिक शासक हो जांय, अथवा शासक दार्शनिक बन जांय।' अपने प्रयोगों की असफलताओं तथा वास्तविक कठोरताओं ने जब कल्पनाशील कलाकार प्लेटो को पुनः विचार करने के लिये लाचार किया तो उसने कहा ही कि उसकी 'रिपब्लिक का अस्तित्व केवल शब्दों में है, पृथ्वी पर कदाचित कहीं नहीं है।'

उसका यह कथन जिस प्रकार उसके समय में था, वैसे ही आज तक सच है, किन्तु यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्लेटो की कहीं न होने वाली 'रिपब्लिक' ने राजनैतिक विचारों को जितना अब तक प्रभावित किया है, वास्तविक राज्य नहीं कर सके।

आदर्श राज्य का निर्माण प्लेटो ने मनोवैज्ञानिक आधार पर किया था। उसके निर्माग में अन्तःकरण की अवस्थाओं का अनुसरण किया गया था। जिस प्रकार सबसे सुखी अन्तःकरण वह है जिसमें विवेक की अधीनता अन्य अवयवों ने स्वीकार कर ली हो, वैसे ही आदर्श राज्य में अन्य सभी कोटि के लोग विवेकवान का शासन शिरोधार्य करते हैं। आदर्श राज्य से समाज के पतन के उल्लेख में भी प्लेटो ने मनोवैज्ञानिक क्रम रक्खा है। क्रमशः विवेक की आधीनता स्वीकार

करके साहस स्वयं शासक बन बैठता है, फिर अर्थोपार्जन करने वाले शासक बन जाते हैं तथा प्रथम दो वर्गों को इनकी आधीनता में रहना पड़ता है। पहले को प्लेटो ने निरंकुश सैनिकतंत्र (टिमोक्रेसी) तथा दूसरी अवस्था को निरंकुश कुलीनतंत्र (आलिगार्की) कहा। इसके उपरान्त की दो अवस्थायें जनतंत्र (डिमोक्रेसी) और आततायितंत्र (टिरैनी) वे राजकीय व्यवस्थायें हैं जिनमें निरंकुश कुलीनतंत्र की ही भांति विवेक एवं साहस की प्रधानता नष्ट हो जाती है और लोभ का बोलबाला हो जाता है।

आदर्श से पहला गिराव तब होता है, जब नर-नारियों के संयोग में असावधानी हो जाती है, तथा श्रेष्ठ संतान नहीं उत्पन्न होती। उस समय विवेक की अवहेलना करके साहस और बल अपना शासन स्थापित कर लेते हैं। इस वर्ग में भी पवित्रता नहीं रहने पाती। व्यवसायी वर्ग तथा दार्शनिक वर्ग दोनों के ही अंश इसमें पाये जाते हैं, परिणामतः कुछ लोग समाजीकरण का पक्ष ले लेते हैं तथा कुछ दूसरे सम्पत्ति-बल इकट्ठा करने लगते हैं। इन दोनों वर्गों में संघर्ष छिड़ जाता है, जिसमें लोभी वर्ग ही विजयी होता है। साहस एवं सैन्यबल इस शासनतंत्र के प्रधान लक्षण होते हैं किंतु यह पहले की भांति, विवेक के साथ सहयोग न कर अर्थ लोलुप हो जाते हैं। धनीवर्ग एवं सैनिकवर्ग मिल जाते हैं। इस प्रकार आदर्श से पहला पतन निरंकुश सैनिकतंत्र में होता।

सैनिकतंत्र मिश्रित शासन-प्रणाली है, जिसका और अधिक पतन धनलोलुपता बढ़ने से होता है। सैनिकतंत्र में न्याय तथा विवेक थोड़-बहुत बच रहते हैं, किंतु जब साहस-प्रधान शासक घोर लोभी हो कर व्यापार-व्यवसाय करके धन बटोरने में लग जाते हैं, उस समय पदों के अधिकारी योग्यता पर नहीं, धनसम्पन्नता पर

नियुक्त होने लगते हैं। सैनिकतंत्र में युद्ध प्रियता एवं शौर्य को आदर मिलता है, किंतु धनिकतंत्र में तृष्णा का जोर बढ़ता है। धनवान ही आदर पाते हैं। राजनैतिक शक्ति और आर्थिक शक्ति एक ही हाथ में एकत्र हो जाने के कारण धनी अधिक धनवान तथा दरिद्र अधिक दरिद्र होने लगते हैं। राज्य की एकता में दरार बढ़ जाती है। एक ही राज्य के अन्दर धनी एवं दरिद्र के दो राज्य स्थापित हो जाते हैं। धनी अल्पसंख्यक एवं दरिद्र बहुसंख्यक तथा धनिकों से घृणा करने वाले होते हैं। बाहरी आक्रमण तथा युद्धादि आपत्तियों के समय परिश्रमशील एवं कठोर बहुसंख्यक निर्धनों को धनवानों की कायरता और निर्बलता ज्ञात हो जाती है। यहीं से धनिकतंत्र के विरुद्ध निर्धनों में जाग्रति एवं विरोध सक्रिय हो उठता है, तथा अवसर आने पर जनतंत्र की स्थापना हो जाती है।

जिस प्रकार कुलीनतंत्र का मनोवैज्ञानिक आधार वासना एवं तृष्णा थी उसी प्रकार जनतंत्र का भी यही आधार होती हैं। यहां विवेक का अधिक अभाव हो जाता है। अनुशासन तथा आत्मसंयम पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं, समानता एवं स्वतंत्रता इस तंत्र के नारे हैं। निर्वाचन करने में पांसा फेंकर सबकी पूरी समानता स्वीकार की जाती है, तथा पदों पर नियुक्ति के लिए 'विशिष्ट योग्यता सिद्धान्त' की कोई आवश्यकता नहीं समझता। समाज में स्पष्टतः तीन वर्ग हो जाते हैं। सबसे अधिक संख्या में निम्नकोटिका नर्धन एवं परिश्रमशील वर्ग होता है, इसके ऊपर मध्यम वर्ग, जो श्री सम्पन्न होता है, तथा सभ्यता एवं संस्कृति का रक्षक होता है। तीसरा वर्ग अल्पसंख्यक होकर भी सर्वाधिक राजनैतिक बल से युक्त होता है। यह वर्ग निर्धनों के उद्धारकर्ता के रुप में प्रगट होता है और न्याय-अन्याय का बिना विचार किये, हर तरह से मध्यम वर्ग को लूटता-खसोटता है। लूट का कुछ अंश निर्धन वर्ग को देता है तथा

कुछ अपने लिए रखता है। इस लुटेरे राजनैतिक वर्ग का उद्यम ही राजनीति है। इसी से यह अपनी जीविका पाते हैं। जनतंत्र में राजनैतिक शक्ति उसी के हाथों में सिमटती है, जो अपने को, दलित किन्तु बहुसंख्यक वर्ग का हितू लगातार घोषित करता रहे। बस, यही योग्यता पर्याप्त है। जनतंत्र में न्याय और विवेक की जो दुर्दशा होती है, उसके लिये प्लेटो नेता-वर्ग को ही दोषी ठहराता है, भोली जनता का इसमें दोष नहीं। वह तो स्वयं संगठित नहीं हो सकती। उसे संगठित करने के ही लिये नेता-वर्ग उसे आर्थिक लालच भी देता ह और हमदर्दी की मीठी-मीठी बातें बनाता है। ऋण से मुक्त कर देने तथा करों की छूट देने के वायदे करता है।

पालिटिकस में प्लेटो जनतंत्र की दो अवस्थायें बतलाता है। पहले म विधान तथा नियम जीवित रहते हैं, किन्तु दूसरे में इनकी पूरी समाप्ति हो जाती है। अनुशासनहीनता एवं स्वच्छ-न्दता इतनी बढ़ जाती है कि राज्य में अराजकता की अवस्था फैल जाती है। जिस प्रकार निरंकुश कुलीनतंत्र का जन्मदाता लोभ उसके अन्त का भी कारण बनता है, उसी प्रकार जनतंत्र के अन्त का हेतु स्वतंत्रता एवं समानता होते हैं। जनतंत्र की दुर्बलता क्रूर, साहसी एवं जनता का रक्षक बनने का ढोंग करने वाले आततायी को जन्म देती है। वह आरंभ में तो दूसरों के प्रति सहा-नुभूति तथा अपने सहायकों के प्रति सहृदयता दिखाता है, किंतु जैसे जैसे उसकी शक्ति बढ़ती जाती है, उसकी क्रूरता प्रगट होने लगती है। अपने विरोधियों तथा आलोचकों का दमन करने में उसका हाथ नहीं रुकता। आन्तरिक अशांति की ओर से जनता का ध्यान हटाने के लिये वह लगातार युद्ध की नीति बरतने लगता है। आततायी का चरित्र-चित्रण करते हुए प्लेटो कहता है कि ऐसे व्यक्ति में तृष्णा अपने पूर्ण एवं निर्बाध रुप में प्रगट हो जाती

है। वह अपनी कामनाओं को पूरा करने में कुछ भी उठा नहीं रखता। अन्तःकरण के सभी अवयव अत्यन्त क्षीण होजाते हैं। एकमात्र नृशंस महत्वकांक्षा अपने भयानक सहायकों सहित सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छा जाती ह। ऐसे व्यक्ति के शासन में समानता नहीं रह जाती। वह स्वयं भी मित्रों की भांति दूसरों के साथ कार्य नहीं कर सकता। दो ही दशाएं उसके लिये संभव होती हैं; या तो वह आतंककारी अधिनायक होता है अथवा उसी प्रकार के शासन का भोगने वाला दास। आततायी अधिनायक के आधीन राज्य का पूर्ण पतन समझना चाहिये। इसमें आदर्श राज्य की सभी अवस्थाओं तथा मूल सिद्धान्तों का लोप हो जाता है। प्लेटो आगे चलकर दिखलाता है कि ऐसे राज्य का संचालक जो बाहर से हर तरह से सम्पन्न दिखाई देता है, वस्तुतः अत्यन्त अशान्त एवं आनन्द-हीन जीवन व्यतीत करता है।

प्लेटो ने जिस प्रकार आदर्श राज्य के निर्माण में आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार ग्रहण किया था उसी प्रकार राज्य के के क्रमिक पतन के हेतु भी मनोवैज्ञानिक हैं। मनुष्य का बाहरी जीवन उसके अन्तःकरण का प्रतिविम्ब हैं। पतन की क्रमिक गति में ऐतिहासिकता का आभास है। अरिस्टाटिल ने इसकी आलोचना करते हुए इसे इस दृष्टि से निराधार घोषित किया, फिर भी स्वयं अरिस्टाटिल ने राज्यों के परिवर्तन के वर्णन में जो क्रम दिखाया है, वह इससे अधिक भिन्न नहीं है। अर्नेस्ट बार्कर के शब्द इस प्रसंग में दुहराये जा सकते हैं कि यदि यह इतिहास नहीं है, तो यह इतिहास को स्पष्ट अवश्य ही करता है, किस प्रकार इतिहास में मनुष्य के अन्तःकरण के विविध अंग अपने आंशिक रुप में प्रगट होते एवं तिरोहित होते रहते हैं। इस वर्णन से राजनैतिक एवं सामाजिक सुधारों के लिए दिशा भी मिलती है कि उचित

शिक्षा तथा अभ्यास के द्वारा मानवीय अंतःकरण में परिवर्तन लाकर ही समाज को दोषों से मुक्त किया जा सकता है। मूल अन्तःकरण में ही होती है। पतन के क्रम द्वारा, प्लेटो यह भी प्रदर्शित करता है कि यूनान के प्राचीन न्याय तथा अतिनिषेध के सिद्धान्तों की उपेक्षा से किस प्रकार राज्य को कष्ट भोगना पड़ता है। हम देखते हैं ज्यों-ज्यों राज्य गर्त्तमें गिरता है, उसके आगे आगे जीवन का संतुलन अधिकाधिक नष्ट होता जाता है। संतुलन यूनान के जीवन एवं चिन्तन का मध्य-बिन्दु था।